*Published by*
K. Mittra,
at the Indian Press, Ltd.,
Allahabad

*Printed by*
B. Sajjan,
at the Belvedere Printing Works
Allahabad.

# श्रीकान्त

## द्वितीय पर्व

### पहला परिच्छेद

इस अस्त-व्यस्त जीवन का जो अध्याय उस दिन राजलक्ष्मी के निकट, अन्तिम विदाई के समय, आँसुओं के बीच, समाप्त कर आया था, उसके छिन्न सूत्र को जोड़ने के लिए फिर मेरी पुकार होगी, यह मैंने सोचा न था। किन्तु पुकार जब सचमुच ही पड़ी तब समझ पड़ा कि विस्मय और संकोच मुझे चाहे जितना हो, इस आह्वान को शिरोधार्य करने में रत्ती भर भी इधर-उधर करने से काम नहीं चलेगा।

इसी से आज फिर इस अस्त-व्यस्त जीवन की विशृङ्खल घटना की सैकड़ों जगह से छिन्न गाँठों को और एक बार बाँधने में प्रवृत्त होता हूँ।

आज याद पड़ता है, घर लौट आने के बाद मेरे इस सुख-दुःख-मिश्रित जीवन को किसी ने जैसे अचानक दो हिस्सों में बाँट दिया था। तब जान पड़ा था, मेरे इस जीवन के दुःख का

बोझ जैसे मेरा अपना नहीं है। इस बोझ को लादे वह घूमे जिसे बड़ी गरज़ हो। अर्थात् मैं जो दया करके ज़िन्दा रहूँगा, यह राजलक्ष्मी के लिए सौभाग्य की बात है। आँखों में आकाश का रंग बदल गया, हवा का स्पर्श शरीर में एक दूसरी ही तरह का लगने लगा। जैसे कहीं घर-बार या अपना-पराया नहीं रहा। ऐसे एक प्रकार के अनिर्वचनीय उल्लास से मेरा भीतर और बाहर एकाकार हो उठा कि रोग को रोग, विपत्ति को विपत्ति या अभाव को अभाव मैं नहीं समझने लगा। संसार में कहीं भी जाने या कुछ भी करने मे अब जैसे दुबधा या बाधा का लेश नहीं रह गया।

ये सब बहुत दिन की बातें है। यद्यपि मेरा वह आनन्द अब नहीं है, किन्तु उस दिन के उस एकान्त विश्वास की निश्चिन्त निर्भरता का स्वाद जो जीवन में एक दिन भी पा सका, यही मेरे लिए परम लाभ है। अथच उसे गँवाने का ख्याल करके भी किसी दिन मुझे कुछ भी क्षोभ नहीं होता। केवल यही कभी-कभी ख्याल होता है कि जिस शक्ति ने उस दिन इस हृदय के भीतर से ही जगकर इतनी जल्दी संसार के सम्पूर्ण निरानन्द भाव को हर लिया था वह कैसी विराट् शक्ति थी! और, ख़याल होता है, उस दिन मेरी ही तरह और भी दो दुर्बल, असमर्थ हाथों के ऊपर इतना बड़ा बोझ न रखकर यदि समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड का भार वहन करनेवाले उन दोनों हाथों के ऊपर ही अपने उस दिन के उस अखण्ड विश्वास की

सारी निर्भरता सौंप देता तो आज मुझे काहे की चिन्ता थी? खैर इस बात को जाने दो।

राजलक्ष्मी को घर पहुँचने की खबर देनेवाली जो चिट्ठी मैंने लिखी थी उसका जवाब तो आया, लेकिन बहुत दिनों के बाद आया। मेरे अस्वस्थ शरीर के लिए चिन्ता प्रकट करने के बाद मुझे विवाह करके गृहस्थ बनने का भारी उपदेश उसमें दिया गया था। और, फिर यह कहकर वह संक्षिप्त पत्र उसने समाप्त किया था कि कामकाज के झंझट में वह ठीक समय पर पत्र वगैरह अगर न लिख सके तो भी मैं बीच-बीच में पत्र लिखकर अवश्य ही उसे अपने कुशल-समाचार देता रहूँ और उसे "अपना आदमी" समझूँ।

तथास्तु! इतने दिन बाद राजलक्ष्मी की यह चिट्ठी आई!

आकाश-कुसुम आकाश में ही सूख गया और उसकी जो सूखी-साखी दो-एक पखड़ियाँ हवा में झड़ पड़ीं उन्हें बटोरकर घर में उठा रखने के लिए मैं धरती टटोलता भी नहीं फिरा। आँखों से चाहे दो-एक बूँद जल भले ही गिरा हो, लेकिन उसकी याद मुझे नहीं है हाँ, यह अवश्य स्मरण है कि दिन अब स्वप्न की तरह सहज में और जल्दी बीतना नहीं चाहते थे। तो भी इसी तरह और भी ५-६ महीने बीत गये।

एक दिन सवेरे बाहर निकलने का उपक्रम कर रहा था, इसी समय अचानक एक पत्र आकर उपस्थित हुआ। ऊपर औरतों के-से कच्चे अक्षरों में मेरा नाम और पता-ठिकाना

लिखा हुआ था। खोलते ही पत्र के भीतर से और एक छोटा-सा पत्र ज़मीन पर गिर पड़ा। उठाकर उसके अक्षरों और हस्ताक्षरों को देखते ही सहसा मैं अपनी ही आँखों पर जैसे विश्वास न कर सका।

मेरी जो माता दस साल पहले स्वर्ग सिधार गई थीं उन्हीं के हाथों का लिखा यह पत्र था। पढ़ कर देखा, मा ने अपनी सहेली को, जिसके साथ उन्होंने 'गंगाजल'* सम्बोधन का सम्बन्ध स्थापित किया था, जिस तरह अभय देना चाहिए उसी तरह अभय दिया है।

मामला शायद यह था कि १२-१३ साल पहले इन गंगाजल देवी के अधिक अवस्था में एक कन्या-रत्न उत्पन्न हुआ तब उन्होंने अपने दुःख, दैन्य और दुश्चिन्ता का रोना रोकर मा को एक पत्र लिखा था, और उसी पत्र के उत्तर में मेरी स्वर्गवासिनी जननी ने इस गंगाजल-सुता के विवाह का सारा भार ग्रहण करके जो पत्र लिखा था, वही महा-मूल्य दस्तावेज़ यह छोटा-सा पत्र है।

सामयिक करुणा से विगलित होकर मा ने उपसंहार में लिखा है—सुपात्र अगर और कहीं न मिले तो उनका अपना लड़का तो मौजूद ही है। ठीक है! संसार में सुपात्र का अगर अत्यन्ताभाव हो तो मैं तो हूँ ही।

---

* बंगालियों में यह चाल है कि स्त्रियाँ आपस में मित्रता स्थापित करती हैं, तो गंगाजल, तुलसीपत्र, आँख की किरकिरी आदि किसी भी मनमाने नाम से दोनों दोनों को पुकारती हैं।—अनुवादक

सब पत्र आदि से अन्त तक दो बार पढ़कर देखा, बेशक बाकायदे मुशियाना ढंग से लिखा गया था ! मेरी मा को तो वकील होना चाहिए था। कारण, जितनी तरह की कल्पनायें की जा सकती हैं वे करके वह अपने को और अपने वंशधर पुत्र को इस लड़की के ब्याह की ज़िम्मेदारी में बाँध गई हैं। इस लिखावट में कहीं कुछ भी बचत की राह या कुछ भी त्रुटि वे नहीं रख गई है।

वह चाहे जो हो, मुझे यह मालूम पड़ा कि श्रीमती गंगाजल इस सुदीर्घ तेरह वर्ष के समय तक केवल इस पक्की लिखावट पर ही निर्भर करके निश्चिन्त, निर्भर, नीरव होकर नहीं बैठी रही होंगी। बल्कि जान पड़ा, बहुत कुछ कोशिश करके भी जब धन-जन के अभाव से उन्हें सुपात्र का हाथ लगना एक-दम दुर्घट देख पड़ा और क्वारी कन्या की शारीरिक बढ़ती की ओर दृष्टिपात करके पुलक के मारे कलेजे का ख़ून मग़ज़ में चढ़ने लगा, तभी इस हतभाग्य सुपात्र के ऊपर उन्होंने अपना यह एक-मात्र ब्रह्मास्त्र छोड़ा है।

माता जी अगर ज़िन्दा होतीं तो इस चिट्ठी को लिखने के लिए आज मैं उनसे भिड़ जाता, उनका सिर खा जाता; किन्तु अब जिस ऊँचे स्थान पर बैठकर वे हँस रही हैं वहाँ छलाँग मारकर भी मैं उनके तलवों में ही ठोकर मारकर अपने जी की जलन मिटा सकूँ, यह भी असम्भव है—वह रास्ता भी मेरे लिए बन्द हो गया है।

अतएव मा का कुछ न कर पाकर उनकी गंगाजल का क्या कर सकता हूँ क्या नहीं कर सकता यह जाँचने के लिए मैं एक दिन रात को स्टेशन पर आकर उपस्थित हुआ। रात भर गाड़ी में बिताकर, दूसरे दिन गंगाजल के घर देहात में आकर जब मैं उपस्थित हुआ उस समय दिन का तीसरा पहर था गंगाजल मैया ने पहले तो मुझे पहचाना नहीं। अन्त को परिचय पाकर इन तेरह वर्ष के बाद उस दिन मेरी मा के लिए ऐसा रोईं कि उनकी मृत्यु के समय उनका कोई अपना आदमी आँखों के आगे उन्हे मरते देखकर भी इस तरह शायद न रोया होगा।

बोलीं—लोक-दृष्टि से और धर्म से भी वही इस समय मेरी मा की जगह पर है। इस जिम्मेदारी को अपने ऊपर लेने के परिचय-स्वरूप या प्रथम सोपान-स्वरूप मेरी सांसारिक अवस्था की पुंखानुपुंखरूप से पर्यालोचना करने मे प्रवृत्त हुई, अर्थात् मेरे पिता क्या छोड़ गये है, मेरी मा के कौन-कौन गहने हैं और किसके पास हैं, मैं नौकरी क्यों नहीं करता और अगर नौकरी करूँ तो अंदाजन कितने रुपये माहवारी मिल सकते हैं इत्यादि कोई बात पूछने से उठा नहीं रक्खी।

उनका मुँह देखकर जान पड़ा, इस आलोचना का फल उनके निकट उतना सन्तोष-जनक नहीं हुआ। बोलीं—उनका कोई एक आत्मीय बर्मा मुल्क में नौकरी करके 'लाल' हो गया है, अर्थात् बड़ा मालदार बन गया है। वहाँ राह घाट मे

गली-गली रुपये बरसते हैं, केवल बटोर लाने भर की देर होती है! वहाँ जहाज से उतरते-उतरते बंगालियों को साहब लोग कंधे पर चढ़ाकर ले जाते और नौकरी दे देते हैं। इसी तरह की अनेक बातें वह बक गईं।

पीछे मैंने देखा, यह भ्रान्त विश्वास केवल उन्हीं को न था—इसी विश्वास के वश होकर, इसी माया-मरीचिका में पागल-से होकर अनेक बंगाली निस्सहाय-निस्सम्बल अवस्था में खाली हाथ बर्मा दौड़े गये और उनका जब मोह टूटा तब उन्हें भारत वापस भेजने में हम लोगों को कुछ कम कष्ट नहीं उठाने पड़े।

किन्तु इस समय इस ज़िक्र की ज़रूरत नहीं। गंगाजल-मा का वह बर्मा का विवरण मेरे मन में अंकित हो गया। 'लाल' होने की आशा नहीं, बल्कि मेरे हृदय के भीतर जो घुमक्कड़ कुछ दिन से ऊँघ रहा था वह अपनी तन्द्रा अथवा सुस्ती को दूर करके फौरन उठ खड़ा हुआ। जिस समुद्र को अब से पहले केवल दूर से ही देखकर मैं मुग्ध हो गया था, उसी अनन्त जल-राशि को चीर कर, उसी के ऊपर से, जाऊँगा, इस ख़याल ने मुझे एक-दम अधीर कर दिया। किसी तरह एक बार छुटकारा पा जाऊँ, बस।

आदमी आदमी से जितनी तरह की जिरह कर सकता है उसमें से कोई भी इन नई मा ने बाकी नहीं छोड़ी। सुतराँ अपनी लड़की के भावी वर के पद से उन्होंने मुझे मुक्ति दे दी है, इस बारे में मैं एक तरह से निश्चिन्त ही हो गया था।

किन्तु रात को भोजन के समय उनकी भूमिका का ढंग देखकर उस दिन मैं घबरा उठा। जान पड़ा, वे मुझे एकदम हाथ से निकल जाने देना नहीं चाहतीं। उन्होंने इस प्रकार कहना शुरू किया—लड़की के नसीब में सुख न बदा होने से लड़के के चाहे जितना रुपया-पैसा, घर-द्वार, ज़मीन-जमा, विद्या-बुद्धि देखकर क्यों न व्याह करो, सभी निष्फल होता है। इस सम्बन्ध में नाम-धाम-विवरण आदि सहित अनेक विश्वास-योग्य नज़ीरें भी पेश करके उन्होंने ऐसी विफलता के अनेक प्रमाण दिखा दिये। केवल यही नही, इसके विरुद्ध अनेक ऐसे आदमियों के नामों का भी उल्लेख किया, जो महामूर्ख होकर भी केवल जोरू के भाग्य के ज़ोर से ही इस समय रुपयों की ढेरी पर दिन-रात बैठे रहते हैं।

मैंने उन्हें विनय-पूर्वक जताया कि रुपयों पर मेरी आसक्ति रहने पर भी चौबीसों घंटे उन्हीं पर बैठे रहना मुझे पसंद नहीं, और इसके लिए स्त्री के नसीब को जाँचने का कौतूहल भी मुझे नहीं है। किन्तु इससे कुछ विशेष फल नहीं हुआ। वे निरस्त नहीं हुईं। कारण इतने दिन के बाद, तेरह वर्ष के उपरान्त जो ऐसे पत्र को जुगोकर प्रमाण-स्वरूप उपस्थित कर सकती है वह स्त्री इतने सहज में बहलाई नहीं जा सकती। वह बार बार यही कहने लगी कि इसे तुम्हे मा का ऋण ही स्वीकार करना चाहिए, और जो सन्तान समर्थ होकर भी माता के ऋण को नहीं चुकाता वह—इत्यादि, इत्यादि।

मैं जब अत्यन्त शङ्कित और उद्विग्न हो उठा, तब बातों-ही-बातों में मुझे मालूम हुआ कि निकट के एक गाँव में एक सुपात्र है अवश्य, लेकिन पाँच सौ रुपये से कम में वह हाथ नहीं आने का।

एक क्षीण आशा की किरण देख पड़ी। महीना भर बाद कुछ-न-कुछ इसका उपाय करने का वादा करके दूसरे दिन सबेरे ही मैं वहाँ से चल दिया। किन्तु उपाय किस तरह और क्या करूँगा, यह किसी ओर कुछ सूझ न पड़ा।

मैं अपने को तरह तरह से यह समझाने लगा कि मेरे ऊपर आरोपित यह बन्धन किसी तरह मेरे लिए सत्य का बन्धन नहीं हो सकता; किन्तु तो भी बीच-बीच में माता को इस वादे की फाँसी से छुटकारा दिये बिना चुपचाप खिसक जाने की बात को भी मैं किसी तरह सोच न सका!

जान पड़ता है, एक उपाय था। वह यही कि पियारी से कहूँ। किन्तु इस सम्बन्ध में भी कुछ दिन तक अपने मन को स्थिर नहीं कर सकता। बहुत दिन हुए, उसकी कुछ खबर भी नहीं मिली। वहीं पहुँचने की खबर के सिवा मैंने भी उसे और चिट्ठी नहीं लिखी और उसने भी उसके जवाब के सिवा अन्य पत्र नहीं भेजा। जान पड़ता है, उसकी यह मंसा न थी कि चिट्ठी-पत्री के द्वारा भी हम दोनों में कोई सम्बन्ध रहे। कम से कम उसकी उस चिट्ठी से मैंने ऐसा ही समझा था। तथापि आश्चर्य है कि पराई लड़की के ब्याह के लिए भिक्षा

माँगने के बहाने एक दिन मैं सचमुच पटने में पियारी के यहाँ आकर उपस्थित हो गया।

दरवाज़े के भीतर प्रवेश करके नीचे की बैठक के बरामदे में देखा, वर्दी पहने हुए दो दरबान बैठे हुए हैं। वे एकाएक मुझ-सरीखे एक श्रीहीन अपरिचित आगन्तुक को देखकर इस तरह ताकने लगे कि ऊपर सीधे चढ़ने में मुझे सङ्कोच मालूम पड़ा। इन्हें पहले नहीं देखा था।

उस पुराने वृद्ध दरबान की जगह इन नये नौजवान चुस्त-दुरुस्त पहरेदारों की पियारी को क्यों आवश्यकता हुई, यह मैं समझ न सका। खैर, इनकी पर्वा न करके ऊपर चढ़ जाऊँ या इनसे विनयपूर्वक प्रवेश की अनुमति माँगू—यह ठीक कर ही रहा था कि इतने में देखा, रतन व्यस्तभाव से नीचे उतरा आ रहा है। अकस्मात् मुझे देखकर वह पहले अवाक् हो गया। फिर पैरों के पास सिर टेक कर प्रणाम करने के उपरान्त कहने लगा—कब आये बाबू जी ? यहाँ खड़े क्यों हैं ?

मैंने कहा—अभी आ रहा हूँ रतन। सब खैरियत है न ?

रतन ने सिर हिलाकर कहा—सब कुशल है भैया साहब ! ऊपर जाइए, मै बर्फ खरीद कर अभी आता हूँ।

रतन बाहर जाने को उद्यत हुआ।

मैंने पूछा—तुम्हारी मालकिन तो यही है ?

"है" कह कर तेजी से रतन निकल गया।

ऊपर चढ़ कर बगल ही के कमरे में बैठक थी। उसके

भीतर से एक ज़ोर की हँसी का शब्द और साथ ही अनेक आदमियों की आवाज़ सुनाई पड़ी। कुछ विस्मित हो उठा। किन्तु वैसे ही द्वार के सामने आकर तो मैं दंग रह गया।

पहले जब आया था उस समय इस बैठक को काम में लाते मैंने नहीं देखा था। तरह-तरह के साज-सामान, टेबिल, कुर्सी वग़ैरह बहुत-सी चीज़ें एक कोने में ढेर करके रक्खी रहती थीं; किन्तु कोई इसके भीतर आकर बैठता उठता न था। आज देखा, बैठक भर में पूरी फर्श बिछी है। इधर से उधर तक कार्पेट बिछा हुआ है। उस पर सफेद चादर बिछी है। तकियों पर साफ गिलाफ चढ़ाये गये हैं और उन्हीं में से कई के सहारे कई एक भले आदमी आश्चर्य की दृष्टि से मेरी ओर देख रहे हैं।

उनका पहनावा बङ्गालियों की तरह धोती, कुर्ता, चदरा रहने पर भी सिर पर चिकन की टोपी देखकर बिहारी ही ज्ञान पड़े। एक बॉयें तबले के जोड़े के पास हिन्दुस्तानी तबलची तथा उसी से कुछ फासले पर ख़ुद पियारीबाई विराजमान थी। एक ओर छोटा-सा हारमोनियम रक्खा था। पियारी की पोशाक मुजरेवाली बेशक न थी, लेकिन सजाव-सिंगार की कमी न थी। समझ गया, यह संगीत की बैठक है, दम भर विश्राम हो रहा है।

मुझे देखते ही पियारी के चेहरे में ख़ून का एक बूँद जैसे नहीं रहा। उसके बाद ज़ोर करके जरा हँसकर पियारी ने कहा—यह क्या! श्रीकान्त बाबू हैं! कब आये?

मैंने कहा—आज ही।

पियारी ने कहा—आज ही ? कब ? कहाँ ठहरे हैं ?

क्षण भर के लिए शायद मैं इस प्रश्न से हतबुद्धि हो गया हूँगा, नहीं तो जवाब देने में देर न होती। किन्तु अपने को सँभाल लेने में भी देर नहीं लगी।

मैंने कहा—यहाँ के सभी आदमियों को तो तुम पहचानती नहीं हो, नाम सुनकर पहचान न सकोगी।

जो सज्जन सबसे अधिक ठाट के साथ शान के साथ बैठे थे, वही शायद इस यज्ञ के यजमान थे। उन्होंने कहा—आइए बाबू जी, बैठिए। इतना कह कर उन्होंने तनिक मुसका भी दिया। उन्होंने अपने भाव से यह सूचित किया कि हम दोनों के सम्बन्ध को उन्होंने भाँप लिया है।

उनको एक सम्मान-सूचक प्रणाम करके जूते का फीता खोलने के बहाने सिर झुकाकर तनिक अपनी अवस्था पर मैंने विचार कर लेना चाहा। विचार करने के लिए समय अधिक न था; किन्तु इन्हीं कई सेकिंडों में मैंने यह निश्चय कर लिया कि मेरे भीतर चाहे जो कुछ भाव हो, बाहर के किसी व्यवहार में उसे ज़ाहिर होने देना ठीक न होगा। अपनी बात-चीत, अपनी नज़र या अपने समस्त आचरण में भीतर का रत्ती भर भी क्षोभ या रोष न प्रकट होने दूँगा, यह मैंने तय कर लिया।

क्षण भर बाद भीतर सबके बीच में आकर जब मैं बैठा तब अपना चेहरा अपनी आँखों से न देख पाने पर भी भीतर

यह मैंने ठीक-ठीक अनुभव कर लिया कि उसमें अप्रसन्नता का लेश-मात्र चिह्न नहीं है।

राजलक्ष्मी की ओर देखकर हँसते हुए मैंने कहा—बाई जी, आज परमहंस शुकदेव का पता मालूम होता तो उनको तुम्हारे सामने बिठलाकर एक बार उनके मन का जोर जाँचता। तुमने यह क्या किया? यह तो रूप का दरिया बहा दिया है!

प्रशंसा सुनकर उत्सव के मालिक बाबू साहब अह्लाद से विगलित होकर बारम्बार सिर हिलाने लगे। वह पुनिया-ज़िले के रहनेवाले थे। देखा, बँगला बोल तो नहीं सकते, मगर समझ ख़ूब लेते हैं। किन्तु मेरी उक्ति सुनकर पियारी के कान तक लाल हो उठे। मगर लज्जा से नहीं, क्रोध से, यह मैंने फौरन समझ लिया। लेकिन मैंने उधर ध्यान भी नहीं दिया, उन बाबू को उद्देश्य करके उसी तरह हँसते-हँसते बँगला में मैंने कहा—मेरे आने के कारण अगर आप लोगों के आमोद-प्रमोद मे कुछ भी विघ्न हुआ तो मुझे अत्यन्त दुःख होगा। गाना-बजाना हो न।

बाबू साहब इतने ख़ुश हो उठे कि जोश के मारे मेरी पीठ पर धम से हाथ दे मारकर—अर्थात् मेरी पीठ ठोककर—बोले—बहुत अच्छा बाबू साहब।—पियारी जान, एक कोई बढ़िया गाना गाओ।

'शाम के बाद अब गाना-बजाना होगा, इस वक्त नहीं' कह कर सामने से हारमोनियम ठेलकर पियारीबाई सहसा उठ गई।

अब वे बाबू साहब मेरा परिचय ग्रहण करने के बहाने वास्तव में अपना परिचय देने लगे—उनका नाम है रामचन्द्र-सिंह। वे पुर्नियाज़िले के एक ज़मींदार हैं। दरभंगे के महाराजा उनके भाईबन्द हैं। पियारीबाई को वे ७-८ वर्ष से जानते हैं। वह उनकी पुर्निया की कोठी में ३-४ बार मुजरा कर आई है। वे ख़ुद भी अक्सर यहाँ उसका गाना सुनने आया करते हैं। कभी-कभी १०-१२ दिन तक रहते हैं। लग-भग तीन महीने पहले भी आकर एक सप्ताह रह गये हैं—इत्यादि इत्यादि। अब उन्होंने मेरे बारे मे प्रश्न किया, मैं क्यों आया हूँ ? मेरे उत्तर देने के पहले ही पियारी आकर उपस्थित हो गई।

उसकी ओर देखकर मैंने कहा—बाई जी से पूछिए न, क्यों आया हूँ।

पियारी ने मेरी ओर तीव्र कटाक्ष किया, किन्तु जवाब शान्त सहज स्वर में ही दिया। कहा—ये मेरे ही देश के आदमी है।

मैंने कहा—बाबू जी, शहद होने से ही मक्खियाँ आकर जुट जाती हैं, वे देश-विदेश का कुछ विचार नहीं करतीं।

किन्तु इतना कहने के बाद ही मैंने देखा, मेरी दिल्लगी का मतलब न समझ पाने के कारण पुर्निया ज़िले के ज़मींदार साहब का मुँह फूल गया। इतने मे उनके नौकर ने आकर सूचना दी कि सन्ध्या-आह्निक करने की तैयारी की जा चुकी है। जमींदार साहब फौरन उठ कर चले गये।

तबलची तथा अन्य दो-एक भले आदमी भी उन्हीं के साथ साथ प्रस्थान कर गये। ज़मींदार साहब के मन का भाव अकस्मात् क्यों बिगड़ गया, इसका कुछ भी पता मैं न पा सका।

रतन ने आकर कहा—मा जी, बाबू का बिछौना कहाँ बिछाया जाय?

पियारी ने खीझ के साथ कहा—क्या कोई और कमरा नहीं है? मुझसे बिना पूछे क्या तू रत्ती भर भी अपनी बुद्धि नहीं खर्च कर सकता रतन? जा यहाँ से!

यह कहती हुई रतन के साथ ही पियारी भी चली गई। मैंने अच्छी तरह देख पाया, मेरे आकस्मिक शुभागमन से इस घर का भाव-केन्द्र बहुत अधिक विचलित हो उठा है। किन्तु पियारी ने दम भर बाद लौट आकर मेरे मुँह की ओर कुछ देर ताकते रहने के उपरान्त कहा—इस तरह अचानक कैसे आना हुआ?

मैंने कहा—देश-गाँव का आदमी ठहरा; बहुत दिनों से देख न पाया था, इसी से अत्यन्त व्याकुल हो उठा था बाई जी!

पियारी का मुँह और गम्भीर हो गया। मेरी इस दिल्लगी में कुछ भी शामिल न होकर उसने कहा—आज रात को यहीं रहोगे न?

मैंने कहा—रहने को कहो तो रहूँ।

पियारी ने कहा—मेरा कहना-सुनना क्या है! मगर हाँ,

यहाँ रहने में शायद तुम्हें असुविधा होगी। जिस कमरे में तुम सोते थे उसमें—

मै बीच ही में बोल उठा—बाबू सो रहे हैं? अच्छी बात है, मैं नीचे ही सोऊँगा। तुम्हारे घर के नीचे के कमरे भी तो बहुत बढ़िया है।

पियारी ने कहा—नीचे सोओगे? कहते क्या हो! मन में इतना-सा भी विकार नहीं है—दो दिन में इतने बड़े परमहंस कैसे हो उठे?

मन में कहा—पियारी, तुमने मुझे अभी तक नहीं पहचाना। किन्तु प्रकट मे कहा—मैं इसमें रत्ती भर भी बुरा न मानूँगा। और कष्ट का अगर ख़याल करो तो वह एकदम व्यर्थ है। मै घर से निकलते समय खाने-पीने-सोने वग़ैरह की चिन्ता को वहीं छोड़ आता हूँ। यह तो तुम भी ख़ूब जानती हो। बिछौने अधिक हों तो एक बिछा देने के लिए कह दो; न हो तो कुछ ज़रूरत नहीं—मेरे पास कंबल मौजूद है।

पियारी ने सिर हिलाकर कहा—हाँ, वह तो है, मै जानती हूँ। किन्तु प्रश्न यह है कि इस व्यवस्था से तुम्हारे मन में कुछ दुःख तो न होगा?

मैंने हँसकर कहा—ना। कारण, स्टेशन पर पड़ रहने की अपेक्षा यह व्यवस्था कहीं अच्छी है।

पियारी ने दम भर चुप रहने के बाद कहा—लेकिन मैं अगर तुम्हारी जगह पर होती तो चाहे किसी पेड़

के नीचे पड़ रहती, पर इतना अपमान कभी न बरदाश्त करती !

उसकी उत्तेजना पर लक्ष्य करके मुझसे हँसी रोकी न रुकी। यह मैं बहुत देर से समझ गया था कि पियारी मेरे मुँह से क्या सुनना चाहती है। किन्तु शान्त स्वाभाविक स्वर मे ही मैंने उत्तर दिया—मैं इतना मूर्ख नहीं कि समझ लूँ, तुम जान-बूझकर अपनी इच्छा से नीचे सोने के लिए कहकर मेरा अपमान कर रही हो। तुम्हारी शक्ति होती, या इस समय सम्भव होता, तो तुम उसी दफे की तरह मेरे सोने की व्यवस्था अवश्य ही करती। खैर, इसे छोड़ो, इस तुच्छ बात को लेकर अधिक वाद-विवाद करने की जरूरत नहीं। तुम जाकर रतन को भेज दो, मुझे चलकर नीचे का कमरा बतला दे, मै कम्बल बिछा कर सो रहूँ। बहुत थका हुआ हूँ।

पियारी ने कहा—तुम ज्ञानी आदमी हो, समझदार ठहरे। तुम अगर मेरी ठीक अवस्था को न समझ लोगे तो और कौन समझेगा ? खैर, मेरी जान में जान आई !

यह कहकर एक निकलती हुई लम्बी साँस दबाकर उसने फिर पूछा—

अच्छा, इस एकाएक आने का सत्य कारण क्या न सुन पाऊँगी ?

मैंने कहा—प्रथम कारण न सुन पाओगी; हाँ, दूसरा सुन पाओगी।

पियारी—पहला कारण क्यों न सुन पाऊँगी ?

मैं—अनावश्यक होने के कारण।

पियारी—अच्छा, दूसरा ही सुनूँ।

मैंने कहा—मैं बरमा जा रहा हूँ। शायद फिर कभी भेंट-मुलाक़ात न होगी। कम से कम बहुत दिन तक भेंट न होगी, यह निश्चय है। जाने के पहले एक बार देखने चला आया।

रतन ने बैठक के भीतर प्रवेश करके कहा—बाबू जी, आपका बिस्तरा बिछ गया, आइए।

मैंने ख़ुश होकर कहा—चलो।

पियारी से कहा—मुझे बड़ी नींद लग रही है। घंटे भर के बाद अगर फ़ुरसत मिले तो एक बार नीचे आना, मुझे और भी कुछ कहना है।

यह कहकर रतन के साथ मैं चल दिया।

पियारी के खास अपने सोने के कमरे मे ले आकर रतन ने जब मुझको पलॅग दिखा दिया तब मेरे विस्मय की सीमा न रही।

मैंने कहा—मेरा बिछौना नीचे के कमरे मे न बिछाकर यहाँ क्यों बिछाया गया रतन ?

रतन ने विस्मित होकर कहा—नीचे के कमरे मे ?

मैंने कहा—यही तो ठीक हुआ था।

उसने अवाक् होकर क्षण भर मेरी ओर ताकते रहकर कहा—आपका बिछौना नीचे के कमरे में बिछाया जायगा ? आप भी कैसी दिल्लगी कर रहे हैं बाबू जी !

यों कहकर हँसकर वह चला जा रहा था, मैंने उसे बुलाकर कहा—अच्छा, तुम्हारी मालकिन फिर कहाँ सोवेंगी ?

रतन ने कहा—छोटे बाबू के कमरे में उनके लिए बिछौना बिछा आया हूँ।

पास आकर मैंने देखा, यह राजलक्ष्मी के उस डेढ़ हाथ चौड़े तख़्त पर बिछौना नहीं बिछाया गया था। एक बड़े भारी पलँग पर ख़ूब मोटा गुलगुला गद्दा डालकर यह राजसी शय्या तैयार की गई थी। सिरहाने के पास एक छोटे टेबिल के ऊपर एक सेज के भीतर मोमबत्ती जल रही थी। एक किनारे कई बँगला की किताबे रक्खी थीं, दूसरी तरफ़ एक पात्र में कुछ टटके बेले के फूल रक्खे थे। देखते ही मुझे मालूम पड़ गया कि इसमें से किसी चीज़ में नौकर का हाथ नहीं लगा, जो बहुत चाहती है उसी ने अपने हाथ से सब सजावट की है। ऊपर की चादर तक राजलक्ष्मी अपने हाथ से बिछा गई है, यह जैसे मैंने अपने हृदय के भीतर से अनुभव किया।

आज उस आदमी के सामने मेरे अचिन्तित आगमन से हतबुद्धि होकर पहले राजलक्ष्मी ने चाहे जो व्यवहार किया हो; मेरी निर्विकार उदासीनता से मन ही मन वह शंकित हो उठ रही थी, यह भी मुझसे छिपा नहीं था; और क्या मेरे व्यवहार अथवा वाक्य में थोड़ी-सी भी ईर्ष्या प्रकट होते देखने के लिए इतनी देर से तरह-तरह से मुझे वह आघात कर रही थी, यह भी मैं समझ गया था; किन्तु यह सब जानकर भी जो अपनी

निष्ठुर रूढ़ता को ही पौरुष मानकर उसके अभिमान का कुछ भी मान मैंने नहीं रक्खा, उसके प्रत्येक क्षुद्र आघात को सौ गुना करके फिरा दिया, यही अपना अन्याय अब मेरे मन में सुई की तरह बिधने लगा।

बिछौने पर लेट रहा, पर नींद नहीं आई। मैं निश्चय जानता था, एक बार अवश्य ही आवेगी। अब उसी समय के लिए उत्सुक हो रहा था, मेरे कान उसके पाँवों की आहट सुनने के लिए खड़े थे।

थकान के मारे शायद मैं ज़रा सो गया था। सहसा आँख खुलते ही देखा, पियारी मेरे पैरों पर एक हाथ रक्खे बैठी है। मेरे उठकर बैठते ही उसने कहा—बरमा से जाकर आदमी फिर नहीं लौटता, यह जानते हो?

मैंने कहा—ना, यह तो नही जानता।

उसने कहा—फिर?

मैंने कहा—लौटना ही होगा, इसके लिए किसी के सिर की क़सम तो है नहीं।

उसने कहा—क्यों नहीं है? तुम क्या दुनिया भर के सभी आदमियों के मन का हाल जानते हो?

बात बहुत साधारण थी। किन्तु संसार में यही एक बड़ा भारी आश्चर्य है कि मनुष्य की कमज़ोरी कब किस रास्ते से अपने को ज़ाहिर कर बैठेगी, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। अब से पहले कितने ही असंख्य गुरुतर कारण

पउस्थित होने पर भी मैंने कभी अपने भाव को प्रकट नहीं होने दिया, किन्तु आज राजलक्ष्मी के मुख की यह अत्यन्त सीधी बात मैं सहन नहीं कर सका। मेरे मुँह से सहसा निकल गया—सबके मन की बात तो मैं नहीं जानता राजलक्ष्मी, किन्तु एक आदमी के मन की बात जानता हूँ। अगर वहाँ से कभी लौट कर आऊँगा तो केवल तुम्हारे ही लिए। तुम्हारे सिर की कसम को मैं टाल नहीं सकूँगा।

पियारी मेरे पैरों पर एकदम लोट गई। मैंने इच्छा करके ही पैर नहीं खींच लिये। किन्तु लगभग दस मिनट बीत जाने पर भी जब उसने सिर नहीं उठाया तब उसके सिर पर मेरा दाहिना हाथ रखते ही वह काँप उठी, मगर वैसे ही पड़ी रही। सिर भी नहीं उठाया और न मुँह से ही कुछ कहा।

मैंने कहा—उठकर बैठो लक्ष्मी। इस हालत मे कोई देख लेगा तो उसे बड़ा आश्चर्य होगा।

किन्तु पियारी ने जब मेरी बात का कुछ भी जवाब नहीं दिया तब जोर करके उसे उठाने की चेष्टा मैंने की तो देखा, उसके नीरव आँसुओं से वहाँ की सारी चादर भीग गई है। खींच-खाँच करने पर वह रुँधे हुए स्वर में कह उठी—पहले मेरी दो-तीन बातों का जवाब दो तब मैं उठूँगी।

मैंने कहा—बोलो, किन बातों का जवाब चाहती हो?

उसने कहा—पहले यह बताओ, उस आदमी के यहाँ रहने से तुमने मुझे कुछ बुरा तो नहीं समझ लिया?

मैंने कहा—ना।

पियारी ने फिर तनिक चुप रह कर कहा—लेकिन मेरा चरित्र अच्छा नहीं है, यह तो तुम जानते ही हो, फिर तुम्हें सन्देह क्यों नहीं होता?

प्रश्न बड़ा टेढ़ा था। वह भली औरतों में अब नहीं है, यह भी जानता ही हूँ; किन्तु उसका आचरण बुरा है, यह भी नहीं सोच सकता। लाचार चुप रह गया।

एकाएक आँसू पोंछ कर तेज़ी से वह उठ बैठी और बोली—अच्छा, तुमसे मैं यह पूछती हूँ कि मर्द चाहे जितना बुरा हो जाय, वह अगर भला होना चाहता है तो उसे कोई नहीं मना करता, तो फिर हम लोगों ही के लिए सब रास्ते क्यों बन्द हैं? अज्ञानवश, हाथ की तङ्गी से एक दिन जो कुछ मैं कर बैठी थी वही क्यों मुझे हमेशा करना पड़ेगा? हम लोगों को तुम मर्द लोग अच्छी राह पर क्यों न चलने दोगे?

मैंने कहा—हम लोग तुम्हें कभी मना नहीं करते। और, अगर हम मना भी करें तो यह निश्चित है कि संसार में किसी के भले होने की राह को कोई बन्द नहीं कर सकता।

पियारी बहुत देर तक चुपचाप मेरे मुँह की ओर, ताकती रही। उसके बाद धीरे धीरे उसने कहा—अच्छी बात है! तो फिर तुम भी बन्द नहीं कर सकोगे।

मेरे उत्तर देने के पहले ही दरवाज़े पर रतन के खाँसने का शब्द सुन पड़ा।

पियारी ने कहा—क्या है रतन ?

रतन ने सिर अन्दर करके कहा—मा जी, रात बहुत हो गई है। बाबू जी का ब्यालू का सामान न लाओगी ? रसोइया-महाराज ऊँघते-ऊँघते रसोई-घर मे ही लुढ़क रहे हैं।

"ओह ! अभी तुम लोगों ने भी नहीं खाया-पिया" कह कर लज्जित और व्यस्तभाव से पियारी उठ कर चल दी। मेरे भोजन की थाली वह अपने ही हाथ से लाया करती थी। आज भी उसे लाने के लिए तेज़ी से चली गई।

भोजन समाप्त करके जब मैं पलँग पर लेटा तब रात का एक बज गया था। पियारी फिर आकर मेरे पैरों के पास बैठ गई। बोली—तुम्हारे लिए मैं आज बहुत रात तक जागी हूँ—आज तुमको भी सोने न दूँगी।

यों कहकर मेरी सम्मति की कुछ भी अपेक्षा न करके उसने मेरे पैरों के ओर का तकिया खींच लिया और बायाँ हाथ सिर के नीचे रखकर आड़ी होकर वहीं लेट रही। फिर बोली—मैंने बहुत सोच-विचार कर देखा, तुम्हारा इतनी दूर जाना किसी तरह नहीं हो सकता।

मैंने पूछा—तो फिर और क्या हो सकता है ? इसी तरह घूमते रहना ? पियारी ने इसका जवाब न देकर कहा—इसके सिवा तुम इतनी दूर बरमा मुल्क में क्यों जाना चाहते हो, सुनूँ तो सही ?

मैंने कहा—नौकरी करने के लिए, सैर के लिए नहीं।

मेरी बात सुनकर पियारी उत्तेजना के मारे उठ बैठी और बोली—देखो, दूसरे किसी से चाहे जो कहो; किन्तु मुझे धोखा देने की कोशिश न करना। मुझे धोखा देने से तुम्हारा न यह लोक बनेगा और न परलोक, यह जानते हो ?

मैंने कहा—यह मैं ख़ूब जानता हूँ। अब बताओ, तुम क्या करने को कहती हो ?

मेरी इस स्वीकारोक्ति से पियारी ख़ुश हो गई। उसने हँस-कर कहा—स्त्री की जाति जो सदा कहती रहती है, वही मै भी कहती हूँ ! एक ब्याह करके गृहस्थ बनो—संसार-धर्म का पालन करो।

मैंने प्रश्न किया—क्या सचमुच इससे तुम सुखी होगी ?

उसने सिर हिलाकर कानों के आभूषण को आन्दोलित करके कहा—निश्चय सुखी होऊँगी। एक सौ बार सुखी होऊँगी। इससे मैं न सुखी हूँगी तो भला ससार में और कौन सुखी होगा, तुम्हीं बतलाओ ?

मैंने कहा—सो तो मैं नहीं जानता; किन्तु यह मेरी एक दुर्भावना अवश्य आज दूर हो गई ! वास्तव मे यही ख़बर देने के लिए मैं यहाँ आया था कि इस समय ब्याह किये बिना मेरे लिए और उपाय नहीं है।

पियारी और एक बार कानों के स्वर्णाभूषण को आन्दोलित करके बड़े आनन्द के साथ कह उठी—ऐसा हो तो मै काली-घाट मे जाकर माता की पूजा कर आऊँगी। लेकिन यह कहे देती हूँ कि लड़की मैं ख़ुद देखकर पसन्द करूँगी।

मैंने कहा—इसके लिए तो अब गुंजाइश नहीं रही। लड़की ठीक हो गई है।

मेरे गंभीर स्वर पर शायद पियारी का ध्यान गया। सहसा उसके हँसते हुए चेहरे पर एक मलिन छाया आ पड़ी। उसने कहा—अच्छा तो है, बुरा क्या है! अगर लड़की ठीक हो गई है तो बड़ी ख़ुशी की बात है।

मैंने कहा—ख़ुशी या रंज तो मैं जानता नहीं राजलक्ष्मी, जो ठीक हो गया है वही तुमको सूचित कर रहा हूँ।

पियारी एक-दम खफ़ा हो उठी। बोली—जाओ, चालाकी रहने दो; तुम सब झूठ कह रहे हो।

मैंने कहा—मेरी एक बात भी झूठ नहीं है। चिट्ठी देखकर सब तुम जान लोगी।

यह कहकर कुर्ते की जेब से मैंने अपनी मा का और उनकी बहनेली का, दोनों पत्र निकाले।

"कहाँ है चिट्ठी, देखूँ?" कहकर हाथ बढ़ाकर पियारी ने दोनों चिट्ठियाँ हाथ मे ले तो लीं, किन्तु उसके मुख पर जैसे अन्धकार छा गया। हाथ में दोनों पत्र लिये ही लिये उसने कहा—लेकिन पराई चिट्ठी पढ़ने की जरूरत ही मुझे क्या है!—खैर, कहाँ ब्याह पक्का हुआ है?

मैंने कहा—पढ़कर देख न लो।

पियारी—मैं पराई चिट्ठी नहीं पढ़ती।

मैं—तो फिर पराई खबर जानने की भी तुम्हें जरूरत नहीं है।

"मैं नहीं जानना चाहती" कहकर वह फिर उसी तरह लेट गई। लेकिन वे दोनों चिट्ठियाँ उसकी मुट्ठी ही में थीं। बहुत देर तक उसने कोई बात नहीं की। उसके बाद धीरे-धीरे उठकर जाकर लैंप की रोशनी बढ़ाकर फ़र्श पर दोनों पत्र लेकर स्थिर होकर वह बैठ गई। चिट्ठियों के लेख को, जान पड़ता है, उसने दो-तीन बार पढ़ा। उसके बाद वहाँ से उठ आकर फिर वैसे ही पलँग पर उसी जगह उसी तरह पड़ रही।

बहुत देर तक चुप रहने के बाद उसने कहा—सो गये?

मैंने कहा—नहीं तो।

पियारी ने कहा—इस जगह में किसी तरह तुम्हारा ब्याह न होने दूँगी। वह लड़की अच्छी नहीं है, उसे मैंने बचपन में देखा है।

मैंने कहा—मा की चिट्ठी तुमने पढ़ी?

पियारी ने कहा—हाँ, पढ़ी है। लेकिन चाची की चिट्ठी में ऐसा कुछ लिखा नहीं है कि तुम्हीं को वह लड़की अपने गले बाँधनी होगी। और, वह चाहे अच्छी हो चाहे बुरी, इस लड़की को मैं किसी तरह तुम्हें अपने घर न लाने दूँगी।

मैंने कहा—अच्छा, तुम किस तरह की लड़की घर लाना चाहती हो, यह क्या मैं सुन सकता हूँ?

पियारी ने कहा—सो मैं अभी कैसे कह सकती हूँ? सोचकर देखना होगा।

तनिक देर चुप रहकर हँसकर मैंने कहा—तुम्हारी पसंद

और विवेचना पर निर्भर रहने से तो मुझे अपना क्वाँरापन दूर करने के लिए दूसरा जन्म लेना पड़े तो कुछ आश्चर्य नहीं—इस जन्म मे तो व्याह होता देख नहीं पड़ता ! खैर, यथा-समय तुम्हारी बात मानकर न जाऊँगा, मुझे कुछ जल्दी नहीं है ! किन्तु इस लड़की का ठिकाना तुम लगा देना—पाँच सौ के क़रीब रुपये होने से लड़की का व्याह हो जायगा, यह मैं ने उसकी मा के मुँह से ही सुना है।

पियारी उत्साह के मारे और एक बार उठ बैठी और बोली—कल ही मैं रुपये भेज दूँगी—चाची का वचन मैं झूठा न होने दूँगी।

तनिक रुककर उसने फिर कहा—मैं तुमसे सच कहती हूँ, यह लड़की अच्छी नहीं है, इसी से मुझे आपत्ति है, नहीं तो—

मैंने कहा—नहीं तो क्या ?

पियारी ने कहा—नहीं तो और क्या ! तुम्हारे योग्य लड़की पहले मैं खोज लूँगी तब तुम्हारे इस प्रश्न का उचित उत्तर दूँगी, अभी नहीं।

सिर हिलाकर मैंने कहा—तुम व्यर्थ चेष्टा न करो राज-लक्ष्मी, मेरे योग्य लड़की तुम कभी खोजकर पा नहीं सकोगी।

क्षण भर चुप होकर बैठे रहने के बाद एकाएक राजलक्ष्मी कह उठी—अच्छा, यह मैं माने लेती हूँ कि ऐसी लड़की मैं नहीं खोज सकूँगी। अब यह बताओ कि बरमा जाओगे तो मुझे भी अपने साथ ले चलोगे ?

उसका यह प्रस्ताव सुनकर मै हँस पड़ा। कहा—मेरे साथ जाने की तुम्हारी हिम्मत होगी ?

पियारी ने मेरे मुख पर एक तीखी नजर डालकर कहा—हिम्मत ! यह क्या तुम कोई कठिन बात समझते हो ?

मैंने कहा—मै चाहे जो कुछ समझूँ, लेकिन तुम्हारी यह जो जायदाद, घर-द्वार, सामान वग़ैरह है, इसका क्या होगा ?

पियारी ने कहा—चाहे जो हो। तुम्हें जब नौकरी करने के लिए जाना पड़ा, इतना यह सब रहते भी तुम्हारे कुछ काम न आया, तब मैं इसे लेकर क्या करूँगी ? सब बंकू को दे जाऊँगी।

इस बात का जवाब मैं कुछ न दे सका। खुली खिड़की की राह बाहर अन्धकार को देखता हुआ चुपका बैठ रहा।

पियारी ने फिर कहा—अच्छा, इतनी दूर अगर न जाओ तो क्या काम नहीं चल सकता ? यह सब जायदाद क्या किसी दिन तुम्हारे किसी काम नहीं आ सकती ?

मैंने कहा—ना, कभी नहीं।

पियारी ने गरदन हिलाकर कहा—यह मैं जानती हूँ। अच्छा, मुझे तो अपने साथ ले चलोगे ?

इतना कहकर फिर उसने मेरे पैर पकड़ लिये। एक दिन इसी पियारी ने जब मुझे अपने घर से एक तरह से ज़बरदस्ती करके बिदा कर दिया था उस दिन इसके असाधारण धैर्य और मन के जोर को देखकर मैं अवाक् हो गया था। आज उसी की इतनी बड़ी दुर्बलता, इस करुण-कंठ की कातर विनय देख-

सुनकर मेरा हृदय जैसे फटने लगा। किन्तु उसे साथ ले जाने की हामी किसी तरह भर न सका।

मैंने कहा—तुमको साथ बेशक नहीं ले जा सकता; किन्तु जब तुम मुझे बुलाओगी, तभी वहाँ से लौट आऊँगा। चाहे जहाँ रहूँ, सदा तुम्हारा ही मैं रहूँगा राजलक्ष्मी !

राजलक्ष्मी ने कहा—इस पापिन के होकर हमेशा तुम रहोगे ?

मैं—हाँ, रहूँगा।

राजलक्ष्मी—तब तो यह कहो कि किसी दिन तुम्हारा ब्याह भी न होगा ?

मैं—ना। इसका कारण यही है कि तुम्हारी राय के खिलाफ, तुमको दुःख देकर यह काम करने के लिए कभी मेरी प्रवृत्ति न होगी।

पियारी एकटक कुछ देर तक मेरी ओर ताकती रही। उसके बाद उसकी आँखे सजल हो आईं और बड़े-बड़े आँसू कपोलों पर होकर टपाटप पृथ्वी पर गिरने लगे।

आँसू पोंछकर गाढ़ स्वर में उसने कहा—इस अभागिन के लिए जन्म भर तुम सन्यासी होकर रहोगे !

मैंने कहा—हाँ, सो मैं रहूँगा। तुम्हारे पास जो चीज मैंने पाई है उसके बदले सन्यासी होकर रहने में मेरी कोई हानि नही है। मैं चाहे जहाँ क्यों न रहूँ, मेरी इस बात पर तुम कभी अविश्वास न करना।

पल भर के लिए हम दोनों की चार आँखें हुईं। उसके बाद ही पियारी तकिये में मुँह छिपाकर पट पड़ गई। रुलाई के उच्छ्‌वसित आवेग से उसका सारा शरीर बारंबार काँप-काँपकर फूल उठने लगा।

सिर उठाकर देखा, सारे घर मे गहरी नींद की छाप पड़ी हुई थी, कहीं कोई भी नहीं जागता था। एक बार केवल यह जान पड़ा कि खिड़की के बाहर अँधेरी रात अपने कितने ही उत्सवों की प्रिय सहचरी पियारीबाई जी के इस मर्मभेदी अभिनय को आज जैसे चुपचाप आँखे खोले परम परितृप्ति के साथ देख रही है।

---

## दूसरा परिच्छेद

मैंने देखा है, कोई-कोई बात ऐसी होती है जिसे ज़िन्दगी भर भुलाया नहीं जा सकता। जभी स्मरण हो आता है तभी उसके शब्द कानों मे गूँज उठते है। पियारी के अन्तिम वाक्य भी इसी तरह के थे। आज भी उनकी गूँज मै जैसे सुन पाता हूँ। इस बात का परिचय बचपन से ही अनेक बार उसने दिया था कि वह कितनी बड़ी संयमी है। उसके ऊपर इतने दिनों की इतनी बड़ी यह सांसारिक शिक्षा! उस दफे मेरे बिदा होने के समय किसी तरह वहाँ से भाग जाकर उसने आत्म-रक्षा की थी; किन्तु अब की बिदा के समय किसी तरह वह अपने को सँभाल न सकी, नौकर-चाकरों के सामने ही वह रो पड़ी।

रुँधे हुए स्वर से उसने कह डाला—देखो, मैं मूर्ख नहीं हूँ, मैं जानती हूँ कि अपने पाप का भारी दण्ड मुझे भोगना ही पड़ेगा। सो भी मैं कहती हूँ, हमारा हिन्दू-समाज बड़ा ही निष्ठुर है, बड़ा ही निर्दय है! इसे भी एक दिन इसका दण्ड भोगना ही पड़ेगा! भगवान् इसे इस पाप का दण्ड देंगे—अवश्य ही देंगे!

यही उसके ये अन्तिम वाक्य थे जो अब तक मेरे कानों में गूँजा करते हैं।

समाज को इतना बड़ा शाप पियारी ने क्यों दिया, सो वही जाने और उसके अतर्यामी जानें। मैं भी न जानता होऊँ, यह बात नहीं है, किन्तु उस समय मेरे मुँह से कोई बात न निकली, मै चुप रह गया।

बूढ़े दरवान ने गाड़ी का दरवाजा खोलकर मेरे मुँह की ओर देखा, मैं गाड़ी पर चढ़ने के लिए पैर बढ़ाने का उद्योग कर रहा था। पियारी ने आँसू और हँसी मिला हुई दृष्टि से मेरी ओर देखकर कहा—कहाँ जाते हो—अब शायद फिर भेट न हो—एक भिक्षा दोगे ?

मैंने कहा—दूँगा।

पियारी ने कहा—भगवान् न करें, लेकिन तुम्हारी जीवन-यात्रा का जो ढंग है, उससे—अच्छा, चाहे जहाँ रहो, ऐसे अवसर पर मुझे खबर दोगे ? शरमाओगे तो नही ?

"ना, शरमाऊँगा नहीं—खबर दूँगा," कहकर धीरे-धीरे मैं

गाड़ी पर सवार हो गया। पियारी ने आज पीछे-पीछे आकर अपने आँचल से पोंछकर मेरे पैरों की धूल मस्तक से लगा ली।

"अजी, सुनते हो ?"

सिर उठाकर देखा, पियारी अपने होठों के कम्पन को प्राण-पण से दबाकर कुछ कहने की चेष्टा कर रही है। हम दोनों की आँखे चार होते ही उसकी आँखों से फिर आँसू गिरने लगे। उसने अस्पष्ट रुँधे हुए स्वर में धीरे-धीरे कहा—अच्छा, अगर इतनी दूर न जाओ तो क्या हो ? रहने दो, न जाओ !

चुपचाप उधर से आँखे फेर लीं। गाड़ीवान ने गाड़ी हाँक दी। चाबुक के शपाशप शब्द और पहियों की घरघराहट से वह तीसरे पहर का समय मुखरित हो उठा। किन्तु इन सब शब्दों को दबाकर एक अवरुद्ध कण्ठ का अस्पष्ट रुदन ही मेरे कानों मे गूँज रहा था।

---

## तीसरा परिच्छेद

पाँच-छ. दिन बाद एक दिन सवेरे एक स्टील-ट्रङ्क और एक बिस्तर भर साथ लिये कलकत्ते के कोयलाघाट मे आकर मैं उपस्थित हुआ।

गाड़ी से उतरते ही एक खाकी रङ्ग का कुर्ता पहने कुली ने आकर बिस्तर और ट्रङ्क मेरे हाथ से एक तरह से छीन लिया और पलक न लगते-लगते वह न जाने कहाँ ग़ायब हो गया।

खोजते-खोजते आँखों में आँसू न आने तक उसका कहीं पता न लगा। गाड़ी पर आते समय मैंने देखा था, जेटी और बड़ी सड़क के बीच जितनी जगह थी उसमें भिन्न-भिन्न रङ्गों के पदार्थ जमा थे। लाल, काला, खाकी, गेरुआ तरह-तरह के रङ्ग देख पड़ते थे। उस समय कुछ कोहरा भी पड़ रहा था। जान पड़ा, शायद बछड़ों के झुंड बँधे हैं, बाहर चालान जानेवाला है।

किन्तु पास आकर ध्यान से देखा तो जान पड़ा, चालान जरूर जायगा, लेकिन बछड़ों का नहीं, आदमियों का जायगा। गठरी-मोटरी लेकर, स्त्री-पुत्र वगैरह का हाथ पकड़कर रात भर इसी तरह ओस में ये लोग पड़े रहे हैं, इसलिए कि तड़के सबसे पहले जहाज पर कुछ अच्छी जगह पा जायँगे। अतएव किसकी मजाल है कि बाद को आकर इन्हें नाँघकर जेटी के द्वार पर पहुँच सके। थोड़ी देर बाद यह दल जब सजग होकर उठ खड़ा हुआ, तब मैंने देखा, काबुल के उत्तर से कन्याकुमारी के छोर तक जितनी जातियाँ रहती हैं, उनमें से कोई भी इस कोयला-घाट में अपना प्रतिनिधि भेजना नहीं भूली।

इस भीड़ मे सभी हैं। काली-काली बनयाइनें पहने कुछ चीनी भी मौजूद हैं। मैं भी डेक का यात्री था, अर्थात् उस दर्जे का यात्री, जिसके नीचे और दर्जा नहीं होता। सुनराम् मुझे भी इन लोगों को परास्त करके—अर्थात् धींगामुस्ती करके—अपने लिए बैठने की थोड़ी जगह कर लेनी चाहिए थी। किन्तु इस बात का खयाल मन में लाते ही मेरे होश गुम

हो गये। मगर जब जाना ही होगा और इस जहाज़ के सिवा और कोई गति भी नहीं है, तब चाहे जिस तरह हो, इन्हीं लोगों के अनुसार काम करना उचित है—यह कह कर जितना ही मैं अपने मन को उत्साहित करने लगा उतना ही वह जैसे और भी हाथ-पैर ढीले कर देने लगा।

जहाज कब आकर घाट में लगेगा, यह जहाज़ ही जाने। सहसा आँख उठाकर देखा, इन १४-१५ सौ के लगभग लोगों मे न जाने किस समय हल-चल-सी मच गई है। इसी बीच मे सब भेड़ों के झुण्ड की तरह दल बाँध कर खड़े हो गये थे।

एक पछाहीं से मैने पूछा—भैया, सब जने अच्छी तरह तो मजे से बैठे थे, एकाएक यह क़तार बनाकर खड़े क्यों हो गये?

उसने कहा—डागदरी होगी।

मैने कहा—डागदरी क्या चीज़ है भैया?

उस आदमी ने पीछे से आये हुए एक धक्के को सम्हाल कर खीझ के साथ कहा—अरे पिलेग की डागदरी।

बात और भी दुर्बोध्य हो पड़ी। किन्तु समझूँ चाहे न समझूँ, इतने आदमियों के लिए जो आवश्यक है, वह मुझे भी स्वीकार ही करना होगा। किन्तु किस कौशल से अपने को आदमियों की इस कतार में ठूँस दूँ, यह एक महासमस्या हो उठी।

कहीं कुछ भी फाँक है या नहीं, यह खोजते-खोजते देखा, बहुत दूर पर कुछ खिदिरपुर के मुसलमान संकुचित-भाव से

सिमटे हुए खड़े थे। यह मैंने अपने देश अथवा विदेश में सर्वत्र देखा है कि जो लज्जा की बात है उसमे बङ्गाली लज्जित ही होते हैं। भारत की अन्यान्य जातियों की तरह निस्संकोच होकर वे •धक्कमधक्का या मारपीट नहीं कर सकते। इस तरह खड़े होने को ही एक प्रकार की हीनता समझ कर लज्जा से उनका सिर नीचा हो रहा था।

ये मुसलमान रंगून मे दरज़ी का काम करते हैं—अनेक वार वहाँ से यहाँ आ-जा चुके हैं। मेरे पूछने पर उन्होंने वत-लाया कि वरमा मे अभी तक प्लेग की वीमारी नहीं है, इसी से यह इतनी सावधानी है। डॉक्टर जॉच करके जब पास कर देगा तभी जहाज़ पर चढ़ने को मिलेगा। अर्थात् रंगून जाने के लिए जो लोग तैयार हैं वे प्लेग के रोगी तो नहीं हैं, इसकी जाँच पहले होना ज़रूरी है। ऍगरेजी राज्य में डाक्टरों का प्रवल प्रताप है। सुना है, क़साईख़ाने के यात्रियो (पशुओं) तक को जिवह होने का अधिकार पाने के लिए इनका मुँह ताकना पड़ता है। किन्तु अवस्था की दृष्टि से रंगून के यात्रियों के साथ कसाईख़ाने के यात्रियों का इतना वड़ा सादृश्य था, यह वात उस समय शायद किसी ने न सोची होगी?

क्रमशः 'पिलेग की डागदरी' निकट आ पहुँची। साहव डाक्टर मय अपने चपरासियों के देख पड़ा। उस क़तारवन्दी की हालत मे अच्छी तरह गरदन घुमाकर देखने का सुयोग न था, तथापि आगे की लाइन मे खड़े हुए यात्रियों की परीक्षा का

जो नमूना नज़र आया उससे बेहद चिन्ता हो आई। शरीर का नीचे का हिस्सा नंगा करके देखने से डरनेवाला कायर अवश्य ही एक बङ्गालियों के सिवा और कोई नही था; किन्तु सम्मुखवर्ती उन साहसी, वीर पुरुषों को भी उक्त प्रकार की परीक्षा से चौंक-चौंक उठते देखकर मेरा हृदय शका से परिपूर्ण हो उठा।

यह सबको मालूम है कि प्लेग की बीमारी मे शरीर के स्थान-विशेष के जोड़ फूल उठते हैं। डाक्टर साहब जिस तरह सहज मे, निर्विकार चित्त से उन सब सन्दिग्ध स्थानों मे हाथ डाल-डालकर वरम का अनुभव करने लगे उससे काठ के पुतले को भी आपत्ति हुए बिना नहीं रह सकती, मनुष्य की कौन कहे! किन्तु भारतवासियों की सभ्यता बहुत पुरानी है, इसी कारण वे बेचारे एक ही बार चौंककर स्थिर हो जाते थे, और कोई जाति होती तो उस दिन डाक्टर साहब के हाथ को तोड़ डाले बिना कभी न मानती।

खैर, वह चाहे जो हो, पास होना जब एक ज़रूरी काम है, तब और उपाय ही क्या है! यथासमय आँखें मूँदकर, सब अग संकुचित करके, जान पर खेलकर डाक्टर के हाथ में मैंने अपने को सौंप दिया। पास भी हो गया।

अब इसके बाद जहाज़ पर चढ़ने की बारी आई। किन्तु डेक के यात्रियों की यह सवार होने की क्रिया किस तरह सम्पन्न होती है, इसकी धारणा वही कर सकता है जो कभी

इस दर्जे में सवार हो चुका है। वाहर के आदमी का इस विषय की धारणा करना असाध्य है। हाँ, कल-कारखानों में दाँतवाले पहिये की क्रिया अगर देख रक्खी हो तो अवश्य कुछ-कुछ समझ में आ सकता है। दाँतवाला पहिया जैसे सामने के खिंचाव और पीछे के ठेले से आगे बढ़ता है वैसे ही हमारी यह काबुली-पंजाबी, मारवाड़ी, मदरासी, मराठा-बङ्गाली, चीना-पछाँही. उड़िया आदि जातियों के आदमियों से सुसङ्गठित विपुलवाहिनी.( सेना ) केवल परस्पर के आकर्षण-विकर्षण के वेग से, विना जाने ही, स्थल से जहाज के डेक पर चढ़ आई, और उसकी वह गति कहीं पर नहीं रुक रही। सामने ही देखा, एक गढ़े के मुँह में सीढ़ी लगी हुई है। जहाज़ को खोल अथवा नीचे के खण्ड में जाने की वही राह है। बँधे हुए नाले का मुँह खोल देने से बरसात का जमा हुआ जल जैसे बड़े वेग से नीचे गिरता है, ठीक वैसे ही यह यात्रियों का दल स्थान प्राप्त करने के लिए मरने-जीने का कुछ खयाल न करके उसी राह से नीचे उतरने लगा।

मुझे जहाँ तक स्मरण आता है, मेरी नीचे जाने की इच्छा भी नहीं थी, और न मैं अपने पैरों चलकर ही नीचे गया। क्षण भर के लिए जैसे मैं वेहोश हो गया था। कोई इसमें सन्देह प्रकट करे तो शायद मै क़सम खाकर इस वात को अस्वीकार नहीं कर सकता। मगर होश आने पर देखता क्या हूँ, उसी खोल के भीतर बहुत दूर पर एक कोने मे अकेला

खड़ा हुआ हूँ। नीचे देखा, इसी बीच में जादू के खेल की तरह पल ही भर में लोगों ने अपने-अपने कंवल बिछाकर बक्स-पिटारे वग़ैरह की लाइन बनाकर एक निर्दिष्ट स्थान बना लिया है और बेखटके बैठकर परस्पर एक दूसरे का परिचय प्राप्त कर रहे हैं।

इतनी देर बाद वही नम्बर का बिल्ला लगाये हुए मेरा कुली आकर दिखाई दिया और बोला—आपका बक्स और बिस्तर ऊपर रख आया हूँ। अगर कहिए तो नीचे ले आऊँ।

मैंने कहा—नहीं, नीचे लाने की ज़रूरत नहीं है। बल्कि किसी तरह मुझे भी यहाँ से निकाल कर ऊपर ले चलो।

कारण, दूसरों के बिछौने पर पैर न रखकर, लोगों से हाथापाई की सम्भावना उत्पन्न किये बिना, चल सकूँ, ऐसी ज़रा-सी भी जगह मुझे देख नहीं पड़ती थी। बरसात में ऊपर डेक पर भीगूँ, वह भी अच्छा; लेकिन यहाँ अब एक घड़ी भी ठहरना कठिन था।

कुली ज्यादा मज़दूरी के लोभ से बहुत कोशिश करके बहस-मुबाहसे के बाद लोगों के कंबल-शतरजी वग़ैरह बिस्तरों को जरा-ज़रा उलट-उलट कर मुझे साथ लिये ऊपर किसी तरह पहुँचा और मेरा सामान मुझे दिखाकर इनाम लेकर चला गया।

यहाँ भी वही दृश्य था—कहीं बिछौना बिछाने की ज़रा-सी भी जगह नहीं थी। इसलिए लाचार होकर अपने ट्रङ्क पर

ही अपने बैठने की जगह निकाल कर निविष्ट चित्त से माता भागीरथी के दोनों किनारों की महिमा निरखने लगा।

स्टीमर उस समय चलने लगा था। बहुत देर से प्यास लगी हुई थी। दो घंटे से जो कुछ अपने सिर बीत रही थी, उससे जिनका हृदय सूख न उठे, ऐसे कठिन हृदय के आदमी संसार में थोड़े ही होंगे। साथ के यात्रियों में शायद कोई बङ्गाली कहीं देख पडे तो पानी पीने का कुछ उपाय हो, यह सोच कर मै फिर नीचे उतरा। कारण, मेरे पास न कोई गिलास था और न कोई लोटा ही।

नीचे उतरने के उसी गढ़े के पास पहुँचते ही एक ऐसा कोलाहल सुन पड़ा, जिसके साथ किसी शब्द की तुलना करूँ, ऐसी अभिज्ञता या जानकारी मुझे नहीं है। गोशाला के छप्पर में आग लगने से एक तरह की आवाज़ उठने की बात अवश्य कही जाती है; किन्तु वह भी इस तुमुल कोलाहल की समता नहीं कर सकती। इस कोलाहल के अनुरूप कोलाहल के लिए जितनी बड़ी गोशाला की जरूरत है उतनी बड़ी गोशाला महाभारत के जमाने में राजा विराट के यहाँ रही हो तो रही हो, लेकिन इस कलिकाल में तो उसकी कल्पना करना भी कठिन है।

भयपूर्ण हृदय से दो-एक सीढ़ियाँ उतरकर नीचे झाँक कर देखा, हर एक यात्री ने अपना national या जातीय संगीत गाना शुरू कर दिया है। काबुल से ब्रह्मपुत्र तक और

कन्याकुमारी से चीन की सरहद तक जितने प्रकार के स्वर-ब्रह्म है, उन सबका अनुशीलन जहाज़ के इस बन्द खोल के भीतर बाजों के साथ एक साथ किया जा रहा था। यह महा-संगीत सुनने का सौभाग्य शायद ही कभी प्राप्त होता है। मैंने वहाँ खड़े-खड़े साथ इज्ज़त और अदब के यह स्वीकार कर लिया कि सङ्गीत ही ललित कलाओं मे सर्वश्रेष्ठ है।

किन्तु सबसे बढ़कर विस्मय यह है कि इतने अधिक सङ्गीत-विशारद यहाँ एकत्र कैसे हो गये!

मैं सहसा यह निश्चय न कर सका कि नीचे उतरना चाहिए या नहीं। सुना है, अँगरेज़-महाकवि शेक्सपियर ने एक जगह कहा है कि जो मनुष्य सङ्गीत सुनकर मुग्ध नहीं होता वह ख़ून तक कर सकता है। किन्तु कदाचित् उन्हे ऐसे सङ्गीत की ख़बर न थी, जिसे मिनट भर सुनने से ही मनुष्य के सिर पर ख़ून सवार हो जाता है। यह सङ्गीत ऐसा ही था।

जहाज़ का खोल देवी वीणापाणि का पीठस्थान है या नहीं, यह मैं नहीं जानता। अगर न होता तो काबुली भी गाना गाते है, यह कौन सोच सकता है!

एक तरफ यह अद्भुत लीला चल रही थी और मैं मुँह बाये विस्मय के साथ तमाशा देख रहा था। एकाएक देख पड़ा, एक आदमी उसके पास ही कुछ दूर पर खड़ा प्राणपण से हाथ का इशारा करके मेरी दृष्टि अपनी ओर आकृष्ट करने की चेष्टा कर रहा है।

बड़े कष्ट से, बहुत लोगों की लाल आँखें देखता और कड़ी बातें सुनता हुआ मैं जाकर उस आदमी के पास पहुँचा। मुझे ब्राह्मण जानकर उसने हाथ जोड़े और रंगून का प्रसिद्ध नन्द मिस्त्री कहकर अपना परिचय दिया। उसके पास ही एक विगत-यौवना, स्थूलांगी स्त्री बैठी हुई थी, जो बराबर एकटक मेरी ही ओर ताक रही थी।

मैं उसके मुँह की ओर देखते ही सन्नाटे में आ गया! किसी मनुष्य की इतनी बड़ी भाँटे की तरह गोल-गोल आँखें और इतनी फैली हुई भारी भौंहे मैंने इससे पहले कभी नहीं देखी थीं।

नन्द मिस्त्री ने उस स्त्री का परिचय देते हुए कहा—बाबू साहब, यह मेरी जो—

बात पूरी न होने पाई, वह स्त्री बीच ही में फुफकार मार कर गरज उठी—जोरू है! मेरे साथ सात भाँवर फिरनेवाले भतार कहते हैं, जोरू है! खबरदार, कहे देती हूँ मिस्त्री, हर एक के आगे झूठ बोलकर मुझे बदनाम न करो।

मै तो विस्मय के मारे हतबुद्धि-सा हो गया।

नन्द मिस्त्री अप्रतिभ होकर कहने लगा—आहा! खफा क्यों होती है टगर? जोरू और कहते किसे है? बीस बरस से—

टगर अब की बेहद खफा होकर कहने लगी—बीस बरस होने से क्या होता है! जलेनसीब! जाति-

वैष्णव* की लड़की मैं कैवर्त † की जोरू होऊँगी! क्यों, किसलिए? बीस बरस से तुम्हारे साथ रहती ज़रूर हूँ, लेकिन किसी दिन तुम्हें रसोई में हाथ लगाने दिया है भला? यह बात कोई कह ही नहीं सकता कि मैंने किसी और का छुआ खाया है! टगर वैष्णवी मर जायगी, मगर अपनी जाति न नष्ट होने देगी!

यह कहकर वह जाति-वैष्णव की लड़की जाति के गर्व से मेरी ओर देखकर अपनी भॉटे की तरह गोल-गोल आँखें घुमाने लगी।

नन्द मिस्त्री लज्जित होकर बार-बार कहने लगा—देखा बाबू जी, देख लिया, अब भी इसे अपनी जाति का घमण्ड है! देखा आपने! मै हूँ, सो सहे लेता हूँ, और कोई होता—

किन्तु बीस बरस की आशनाईवाली जोरू के मुँह की ओर एकाएक नजर पड़ते ही मिस्त्री अपनी बात पूरी न कर सका।

मैं किसी बात का उत्तर न देकर मिस्त्री से एक गिलास मॉगकर वहॉ से खिसक आया। ऊपर आकर इस जाति-वैष्णवी की बाते यादकर मैं अपनी हँसी को किसी तरह रोक न सका।

---

* बंगाल में एक वैष्णव जाति ही है, उसे जाति-वैष्णव कहते है। अन्य जाति के जो वैष्णव होते हैं, वे जाति-वैष्णव नहीं कहलाते।

† कैवर्त भी एक जाति होती है।

किन्तु वैसे ही खयाल आया कि यह तो एक साधारण अशिक्षित स्त्री है। देहातों और शहरों में क्या ऐसे पढ़े-लिखे मर्द नहीं हैं, जिनके द्वारा ऐसी ही हास्यकर बातें आज भी नित्य होती रहती हैं? (ऐसे हज़ारों पुरुष हैं, जो पढ़े-लिखे समझदार होकर भी केवल खाने-पीने के बारे में छुआ-छूत बचाकर पाप के आक्रमण से अपने को बचा हुआ समझते हैं, अन्य प्रकार के अनाचार को अनाचार ही नहीं मानते।) हाँ, इस देश के मर्दों को ऐसा कहते या करते देखकर हँसी नहीं आती, केवल किसी स्त्री को ऐसा कहते या करते देखकर हँसी आती है।

आज शाम से ही आकाश में कुछ-कुछ बादल जमा हो रहे थे। रात को एक बजे के बाद मामूली पानी बरसा और हवा चली, जिससे कुछ देर जहाज़ खूब हिलाडुला। दूसरे दिन सवेरे से ही खूब शिष्ट-शान्त-भाव से जहाज चलने लगा।

जिसे समुद्री बीमारी कहते हैं, वह मुझे नहीं हुई। जान पड़ता है, लड़कपन मे ही नाव की यात्रा अधिक करने के कारण यह व्याधि मुझे छुटकारा दे गई थी। अतएव क़य होने के झंझट से मैं एक-दम बच गया।

किन्तु सपरिवार नन्द मिस्त्री की क्या दशा हुई, किस तरह उन दोनों की रात बीती, यह जानने के लिए मैं सवेरे ही नीचे के दर्जे में उनके पास आकर उपस्थित हुआ। कल जो लोग गा रहे थे, उनमें से अधिकांश पट लेटे हुए मुझे देख पड़े।

समझ गया, रात की परेशानी दूर करके अभी तक ये संगीत के लिए तैयार नहीं हो सके।

नन्द मिस्त्री और उसकी बीस बरस की जोरू, दोनों गंभीर भाव से मुँह बनाये बैठे थे। मुझे देखकर दोनों ने हाथ जोड़े।

उनके मुख के भाव से जान पड़ा, थोड़ी देर पहले दोनों में कुछ झपट जरूर हो गई है।

मैंने पूछा—रात को कैसा हाल रहा मिस्त्री ?

नन्द ने कहा—अच्छा ही रहा।

उसकी आशना गरज उठी—अच्छा खाक रहा। मैया रे मैया, कैसी आफत थी !

मैंने कुछ उद्विग्न होकर पूछा—क्या हुआ जी ?

नन्द मिस्त्री ने मेरे मुख की ओर देखकर, एक जम्हाई लेकर, दो बार चुटका बजाकर, अन्त में कहा—ऐसी कोई बात नहीं हुई बाबू जी। आपने कलकत्ते में गलियों के मोड़ पर भुना हुआ 'साढ़े बत्तिस भाजा' बिकते कभी देखा है ? देखा होगा तो हमारी कल रात की दशा का ठीक अनुभव कर पावेंगे। साढ़े बत्तिस भाजा बेचनेवाला जैसे दोनों को कई बार उछाल कर भुने हुए चावल-दाल-मटर-चना-मसूर-चूड़े वग़ैरह सब अन्नों को एक में मिलाकर एकाकार कर देता है, ठीक वैसे ही देवता की कृपा से हम सब लुढ़क-पुढ़क कर एक में मिल गये थे ! अभी तनिक देर हुई, अपने-अपने स्थान को पहचान कर उसमें आकर बैठे हैं।

इसके बाद टगर की ओर देखकर उसने कहा—भैया, भाग्य से जाति-वैष्णव की जाति नहीं जाती, मेरी टगर—

टगर गुस्साये हुए पागल भालू की तरह गरज उठी—फिर ! फिर !—

"ना, अच्छा जाने दो" कहकर नन्द उदासीन भाव धारण कर दूसरी ओर देखने लगा।

साक्षात् गन्दगी की मूर्ति दो काबुली सिर से पैर तक दुनिया भर की गन्दगी लादे हुए अत्यन्त तृप्ति के साथ रोटी-गोश्त खा रहे थे। क्रुद्ध टगर एकटक उन्हीं अभागों की ओर ताकती हुई अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से आग बरसा रही थी।

नन्द ने अपनी जोरू को लक्ष्य करके प्रश्न किया—तो आज खाना-पीना कुछ न होगा, क्यों ?

टगर ने कहा—मरण है, और क्या ! कैसे होगा, ज़रा सुनूँ तो !

मामला कुछ मेरी समझ मे न आया। मैंने कहा—अभी तो सबेरा ही हुआ है। तनिक दिन चढ़ने पर—

नन्द ने मेरे मुँह की ओर देखकर कहा—कलकत्ते से एक हाँड़ी भर रसगुल्ले मैं लेता आया था। जहाज़ मे सवार होने के बाद से मैं कहने लगा था, आ टगर, कुछ खाले, आत्मा को कष्ट न दे। न मानी, रंगून ले जायगी। ( टगर से ) अब रंगून ले जा !

टगर इस क्रुद्ध अभियोग का स्पष्ट प्रतिवाद न करके, केवल एक बार मेरी ओर देखकर, फिर उन्हीं बदनसीब काबुलियों को अपनी आँखों की आग से जलाने लगी।

मैंने धीरे-धीरे पूछा—रसगुल्ले क्या हुए?

नन्द ने टगर के उद्देश से कटाक्ष करके कहा—उनका क्या हुआ, कह नहीं सकता। वह देखिए टूटी हाँड़ी पड़ी है और वह देखिए बिछौने पर सारा रस है। इससे अधिक अगर कुछ जानना चाहें तो इन दोनों हरामज़ादे काबुलियों से पूछिए।

इतना कहकर टगर की दृष्टि का अनुसरण करके वह भी गुस्से की नज़र से उन काबुलियों की ओर देखने लगा।

बड़ी मुश्किल से हँसी रोककर सिर नीचा करके मैंने कहा—खैर जाने दो उन्हें। साथ में चूड़े तो हैं!

नन्द ने कहा—उनका भी ठिकाना लग गया है। टगर, तनिक बाबू को तो दिखा दे।

टगर ने एक छोटा-सी पोटली पैर की ठोकर से दूर हटाकर कहा—तुम्हीं जाकर दिखाओ—

नन्द ने कहा—और चाहे जो कहिए बाबू, इन काबुलियों को नमकहराम नहीं कहा जा सकता। ये लोग जैसे रसगुल्ले खा जाते हैं वैसे ही अपने देश काबुल की रोटी भी बाँध देते हैं बदले में!—इन्हे फेंकना नहीं टगर, रख ले, ठाकुर का भोग मलीदा इनका बन सकता है।

नन्द की यह दिल्लगी सुनकर मैं तो हो-हो करके ज़ोर से हँस पड़ा। किन्तु उसके साथ ही टगर के मुख की ओर देखकर भय के मारे मेरे तो देवता कूच कर गये!

क्रोध के मारे टगर का चेहरा स्याह पड़ गया। मोटे गले से वज्र-कर्कश शब्द से जहाज़ के सब लोगों को चौंका-कर टगर चिल्ला उठी—देखो कहे देती हूँ, जाति के बारे में कुछ न कहना मिस्तरी। नहीं अच्छा न होगा, यह कहे रखती हूँ—

चीत्कार से चौंककर जिन्होंने इस ओर दृष्टिपात किया उनकी विस्मित दृष्टि के सामने नन्द सङ्कुचित हो उठा। टगर को वह ख़ूब अच्छी तरह जानता था। वह जो एक अनायास मुँह से निकल गई असङ्गत दिल्लगी कर बैठा था उससे टगर अत्यन्त कुपित हो उठी थी। अब उसे किसी तरह शान्त कर देने में ही नन्द की कुशल थी।

नन्द लज्जित होकर चटपट कह उठा—तुझे मेरे सिर की क़सम टगर, गुस्सा न कर। मैंने तो दिल्लगी ही की थी।

टगर ने जैसे सुना ही नहीं। उसने आँखों की पुतलियाँ और भौंहें एक बार दहने ओर और एक बार बाईं ओर घुमाकर गले को और एक पर्दा ऊपर चढ़ाकर कहना शुरू किया—दिल्लगी काहे की! जाति-धर्म के बारे में दिल्लगी कैसी! मुसलमान की रोटी से भगवान् का भोग लगेगा? तेरे कैवर्त के मुँह में आग! तुझे दरकार हो तो उठाकर रख ले, अपने बाप को इसी के पिण्ड देना!

डोर टूटने पर धनुष की तरह सीधे खड़े होकर नन्द ने टगर का झोंटा पकड़ लिया और खींचते हुए कहा—हरामजादी, तू बाप-दादे तक पहुँचती है !

टगर भी कमर मे धोती का आँचल लपेटती और हाँफती हुई बोली—हरामजादे, तू जाति तक पहुँचता है !

इतना कहकर कानों तक पूरा मुँह फैलाकर टगर ने नन्द के हाथ में भरपूर काट खाया। पल भर मे ही नन्द मिस्त्री और टगर का मल्ल-युद्ध गहरा हो उठा। देखते ही देखते लोगों की चारों ओर भीड़ जमा हो गई। पछाँहीं लोग समुद्री बीमारी का कष्ट भूल कर ऊँचे स्वर से 'वाह-वाह' कहने लगे, पञ्जाबी लोग छी-छी करने लगे, उड़िया लोग चिल्लाने लगे, सब मिलाकर एक हलचल मच गई। मैं स्तम्भित होकर विवर्ण मुख लिये जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया। इतने साधारण कारण से ऐसा निर्लज्जता का नङ्गा नाच भी संसार में सङ्गठित हो सकता है, यह तो मैं कभी कल्पना भी न कर सकता था। किन्तु वहीं जहाज भर के हजारों यात्रियों के सामने एक बङ्गाली औरत-मर्द के द्वारा होते देखकर मै तो लज्जा से धरती मे गड़ गया।

पास ही एक जौनपुरी दरबान बड़ी खुशी और सन्तोष के साथ यह लीला देख रहा था। उसने मुझे लक्ष्य करके कहा—बाबू जी, बङ्गालिन तो बहुत अच्छी लड़नेवाली है! हटती ही नहीं !

मैं उसकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सका। चुप चाप सिर झुकाये किसी तरह भीड़ को ठेलकर ऊपर भाग गया।

---

## चौथा परिच्छेद

उस दिन फिर नीचे जाने को जी ही न चाहा। अतएव नन्द-टगर के पूर्वोक्त महायुद्ध का अन्त किस तरह हुआ, सुलह-नामे मे कौन-कौन शर्तें रक्खी गईं, यह कुछ नहीं जानता। हाँ, बाद को मैंने देखा है कि शर्त चाहे जो हो, विपत्ति के दिन वह सन्धिपत्र किसी काम नहीं आता। जिसे जब ज़रूरत होती है तभी वह उसे लापरवाही के साथ फाड़कर फेंक देता और दूसरे के व्यूह मे घुस जाता है। ये दोनों प्राणी बीस बरस से यही काम करते आ रहे हैं और आगे भी बीस बरस तक न करते रहेंगे, यह मै क्या, शायद स्वय विधाता भी क़सम खाकर नहीं कह सकते।

दिनभर आकाश मे मेघ-खण्ड बराबर इधर से उधर आते-जाते रहे। इस समय, तीसरे पहर के लगभग, एक ख़ूब काली घटा क्षितिज को चारों ओर से घेर कर ऊपर उठती हुई देख पड़ने लगी। जान पड़ा, सभी खलासियों के चेहरे पर और आँखों में एक घबराहट की छाया पड़ रही है। उनके इधर-उधर चलने-फिरने मे भी एक व्यस्तभाव दिखाई पड़ रहा था, जो अब से पहिले मैंने नहीं देख पाया था।

एक अधेड़ खलासी को बुलाकर मैंने पूछा—क्यों जी जमादार, आज भी रात को क्या कल की तरह आँधी-पानी आने के लक्षण देख पड़ रहे हैं ?

मेरे नम्र भाव को देख कर जमादार साहब प्रसन्न होगये। उसने खड़े होकर कहा—मालिक, नीचे जाओ। कप्तान साहब कहते है, साईक्लोन* के लक्षण देख पड़ते हैं।

लगभग पन्द्रह मिनट के बाद ही मैंने देखा, जमादार अर्थात् वह वृद्ध खलासी झूठ नहीं कहता था। ऊपर के जितने यात्री थे सब को एक तरह से जबरदस्ती खलासी लोग उसी नीचे के दर्जे मे—अर्थात् गढ़े में—उतार देने लगे। दो-चार आदमियों ने आपत्ति की तो सेकिंड आफिसर ने ख़ुद आकर धक्के मार कर उन्हें उठा दिया और उनके बिस्तर-असबाब वग़ैरह को पैरों से समेटने तथा ठुकराने लगा। मेरे ट्रंक और बिस्तर को भी खलासी नीचे ले गये। लेकिन मैं ख़ुद नजर बचा कर दूसरी तरफ खिसक गया। सुना, सबको—अर्थात् जो बदनसीब दस रुपये से अधिक किराया नहीं दे सके उनको—उसी जहाज़ के खोल मे भरकर उस गढ़े

---

*यह एक प्रकार का विकट तूफ़ान होता है। चक्करदार आँधी इसे कहना चाहिए। इसमें पड़ कर जहाज़ तबाह हो जाते हैं। दरख़्त उखड़ जाते हैं। छतें तक उड़ जाती हैं। इसकी भीषणता का अनुमान इसे देखे बिना नहीं किया जा सकता।

का मुँह ऊपर से बन्द कर दिया जायगा। यह उनके भले के लिए और जहाज़ की खैरियत के लिए भी आवश्यक है। ऐसे अवसर पर जहाज़ पर ऐसाही करने का नियम है।

लेकिन मुझे अपने कल्याण के लिए यह व्यवस्था बिलकुल पसन्द नहीं आई। अब से पहले समुद्र में क्यों, स्थल में भी साईक्लोन को नहीं देखा था। यह क्या करती है, इसका रूप क्या अथवा कैसा होता है, मनुष्य का अमंगल करने की शक्ति इसमें कितनी होती है, यह कुछ भी मैं न जानता था। मैंने अपने मन में सोचा, भाग्यवश अगर ऐसी अदृष्टपूर्व वस्तु का आविर्भाव सामने होनेवाला है तो इसे देखे बिना मैं नहीं रहूँगा, फिर भाग्य मे जो कुछ होना हो सो भले ही हो। और, इस आँधी मे अगर जहाज़ डूब ही गया तो इस प्रकार प्लेग के चूहे की तरह पींजड़े में बंद रहकर, सिर ठुकरा-ठुकरा कर, समुद्र का खारी पानी पी-पीकर क्यों मरूँ? जब तक हो सके, हाथ-पैर चलाकर, लहरों के हिंडोले पर चढ़कर, तैरते-तैरते, बहते-बहते, किसी समय ग़ोता खाकर पातालपुरी के राज-भवन में जाकर अतिथि क्यों न बनूँ? किन्तु यह उस समय मुझे मालूम न था कि आगे-पीछे लाखों-करोड़ों मनुष्यभोजी जल-चर अनुचरों की सेना के बिना राजा का जहाज़ काले पानी मे एक पग भी नहीं चलता और उन जल-चर जीवों को मनुष्य का कलेवा करते भी दम भर की देर नहीं होती।

बहुत देर से बूँदें गिर रही थीं। शाम के लगभग हवा

और पानी, दोनों का वेग बढ़ने लगा। इतना वेग बढ़ गया कि इधर से उधर भागना असंभव होगया। चाहे जहाँ हो, किसी जगह आड़ में आश्रय लिये बिना ठहरना कठिन था। सन्ध्या के अन्धकार मे जब छिप कर मैं अपनी पहले की जगह पर लौट आया उस समय ऊपर का डेक जन-शून्य था। मस्तूल के पास से झाँक कर देखा, ठीक सामने ही बुड्ढा कप्तान दूरबीन हाथ में लिये पुल पर इधर से उधर दौड़-धूप कर रहा है। एकाएक उसकी शुभ दृष्टि के सामने पड़कर कहीं इतने कष्ट सहने के बाद भी उसी गढ़े मे जाकर न घुसना पड़े, इस डर से कोई सुविधाजनक जगह ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अचानक एक बहुत ही अच्छी जगह मिल गई, जिसका मुझे स्वप्न में भी खयाल न था।

एक तरफ बहुत-सी भेड़े, मुरग़ी और बत्तखें पींजड़ों मे बन्द रक्खी थीं। उनके पींजड़े एक के ऊपर एक करके रक्खे थे। बस, मै उन्हीं पींजड़ों के ऊपर जाकर बैठ गया। जान पड़ा, ऐसा निरापद स्थान शायद जहाज भर में और नहीं है। किन्तु उस समय भी बहुत बाते जानने को बाक़ी थीं।

वर्षा, आँधी, अंधकार और जहाज़ का हिलना-डुलना सभी धीरे-धीरे बढ़ने लगे। सागर की लहरों की आकृति देखकर जान पड़ा, शायद यही वह साईक्लोन है। किन्तु यह अनुभव करने मे थोड़ी देर और अपेक्षा करनी पड़ी कि वह साईक्लोन इस सागर के मुकाबिले में गोष्पद ( गऊ के पैर के गढ़े ) के समान तुच्छ है।

एकाएक हृदय की भीतरी तह को हिलाता-कँपाता हुआ जहाज़ का भोंपू बज उठा। ऊपर की ओर देखकर जान पड़ा, जैसे जादू के ज़ोर से किसी ने आकाश का चेहरा ही बदल दिया। वह घना बादल अब न था—सब छिन्न-भिन्न होकर ग़ायब होता जा रहा है, सब आकाश साफ़ हो जायगा। किन्तु उसके बाद ही पल भर में समुद्र के उस छोर से आकर एक ऐसा विकट शब्द कानों के पर्दे फाड़ने लगा, जिसके साथ शायद किसी भी शब्द की तुलना नहीं की जा सकती। कम से कम मुझे तो ऐसे किसी शब्द का अनुभव नहीं है, जिसका उल्लेख करके मै पाठकों को इस शब्द का ठीक-ठीक अनुभव कराऊँ।

बचपन में अँधेरी रात को दादी की छाती से लगकर मैं कहानी सुना करता था कि किसी एक राजपुत्र ने एक ग़ोता लगाकर तालाब के भीतर से एक चाँदी की डिबिया निकाली थी; उस डिबिया के भीतर एक सोने : के रूप मे सात सौ राक्षसियों के प्राण बन्द थे; राजपुत्र ने उस भौंरे को हाथ से मसलकर उन राक्षसियों को मार डाला; उस समय वे सब राक्षसियाँ मृत्यु-यंत्रणा से चिल्लाती और पैरों के बोझ से सारी पृथ्वी को तोड़ती-फाड़ती राजकुमार की ओर दौड़ी थीं। आज समुद्र मे भी वैसी ही घटना हुई जान पड़ती थी। जान पड़ता था, कहीं कुछ उलट-पुलट हो रहा है। किन्तु सात सौ राक्षसी नहीं, जैसे शतकोटि दैत्य उन्मत्तभाव से कोलाहल करते हुए जहाज़ पर चढ़ाई करने आरहे थे। आ भी गये;

किन्तु राक्षसी या दैत्य नहीं, साईक्लोन के चक्कर। मगर मैं तो यही कहूँगा, इस साईक्लोन की अपेक्षा उन दैत्यों या राक्षसियों का आना कहीं अच्छा होता।

इस दुर्जय आँधी या तूफ़ान के वेग अथवा शक्ति का वर्णन कर सकना तो बड़ी दूर, समग्र चेतना से उसका अनुभव करना भी जैसे मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर है। ज्ञान और बुद्धि को अभिभूत अथवा बेकार करके केवल इस तरह की एक अस्पष्ट अथच निस्सन्देह धारणा मन में जागती रही कि संसार की आयु समाप्त होने में—प्रलय होने में—अब थोड़ी ही देर है!

मै जहाँ बैठा था वहाँ पास ही एक लोहे का खूँटा था। उसी से अपने को अपनी चादर से ख़ूब कसकर मैंने बाँध दिया। किन्तु हर बार दम दमभर पर यही जान पड़ता था कि यह आँधी इस बन्धन को छिन्न-भिन्न करके मुझे उड़ाकर समुद्र के भीतर डाल देगी।

एकाएक जान पड़ा, जहाज़ के पास का काला-काला जल जैसे भीतर से धक्का खाकर बजबजाता हुआ क्रमशः ऊपर की ओर ऊँचा होता चला आरहा है। दूर पर जो नज़र गई तो फिर मैं उधर से फिर अपनी आँखें नहीं फेर सका। एक बार ख़याल हुआ, यह शायद कोई पहाड़ है; किन्तु वैसे ही जब वह मेरा भ्रम दूर हो गया तब हाथ जोड़ कर मैंने कहा—हे भगवन्! ये दोनों आँखें जैसे तुमने ही दी थीं, वैसे ही आज तुम्हीं ने इन्हें सार्थक कर दिया! इतने दिनों से तो संसार मे सर्वत्र

आँखें खोले घूमता हूँ; किन्तु तुम्हारी इस सृष्टि की तुलना तो और कहीं कभी मुझे नहीं देख पड़ी। जहाँ तक नजर जाती है, यह अचिन्तनीय विराट्काय महातरङ्ग सिर पर रजत-शुभ्र किरीट धारण किये तेज़ी के साथ आगे बढ़ती चली आ रही देख पड़ती है! इतना बड़ा विस्मय जगत् में और है क्या!

समुद्र-यात्रा तो कितने ही लोग करते रहते हैं। मैं ख़ुद भी और कितनी ही बार इसी मार्ग से आया-गया हूँ; किन्तु ऐसा दृश्य फिर कभी देखने को नसीब नहीं हुआ! इसके सिवा आँखों से देखे बिना बड़े से बड़े कवि की कल्पना भी यह अनुमान नहीं कर सकती कि जल की लहर किसी तरह भी इतनी ऊँची और विस्तृत हो सकती है।

मन ही मन मैंने कहा—हे तरंग-सम्राट्! तुम्हारी टक्कर से हमारी जो दशा होगी सो तो मैं अच्छी तरह जानता ही हूँ; किन्तु अभी तुम्हारे यहाँ तक पहुँचने में कम से कम आधे मिनट की देर है, ऐसा हो कि इतनी देर तक मैं अच्छी तरह तुम्हारे कलेवर को, तुम्हारी शोभा को देख ले सकूँ।

किसी वस्तु की बहुत बड़ी ऊँचाई और उससे अधिक विस्तार देखकर ही कुछ यह भाव मन में नहीं आता। कारण, अगर ऐसा हो तो हिमालय के अंग-प्रत्यग अथवा चोटियाँ ही यथेष्ट ऊँची और विस्तृत हैं। किन्तु यह जो विराट् अतिकाय जल-राशि सजीव प्राणी की तरह वेग से दौड़ती चली आ

रही है, उसकी अपरिमेय शक्ति के अनुभव ने ही मुझे विस्मित और अभिभूत कर दिया था।

किन्तु समुद्र जल के टकराने से उसमें फासफोरस आदि जो चीज़ें रह रहकर जल उठती हैं, वे यदि नाना प्रकार की विचित्र रेखाओं के रूप मे इस जलराशि के ऊपर क्रीड़ा न करती होतीं तो इस घोर अन्धकार में इस गहरी और काली जलराशि की ऊँचाई और विस्तार का अनुभव शायद मै अच्छी तरह कभी न कर सकता। इस समय जितनी दूर तक दृष्टि जाती है वहाँ तक इस प्रकाशमाला ने जैसे असंख्य छोटे-छोटे दीपक जलाकर इस भयंकर सुन्दर वस्तु का चेहरा मेरी आँखों के सामने स्पष्ट कर दिया।

जहाज़ का भोंपू उसी तरह असीम वायु के वेग से काँप काँपकर बार-बार बज रहा था और भय-विह्वल खलासी लोग अल्लाहताला के कानों तक अपना आकुल आवेदन पहुँचा देने के लिए गला फाड़ फाड़कर सम्मिलित स्वर से चीत्कार करने लगे।

जिसके शुभागमन के कारण इतना भय, इतनी पुकार, इतना उद्योग-आयोजन हो रहा था, वह महातरङ्ग आकर पहुँच गई! एक भारी उलट-पुलट के बीच मुझे भी पहले जान पड़ा, हम लोग निश्चय ही डूब गये हैं, अतएव अब दुर्गा का नाम लेने से क्या होगा! आस-पास, ऊपर-नीचे, चारों ओर काला काला जल ही जल था! इसमें कोई सन्देह नहीं कि जहाज़

भर के हम सब लोग पाताल के राजभवन में अतिथि होकर दावत खाने चले है। अब चिन्ता केवल यही है कि वहाँ खाना-पीना न जाने किस तरह का होगा।

किन्तु लगभग एक मिनट के बाद देखा गया, नही, हम लोग डूबे नहीं है; मय जहाज़ के फिर जल के ऊपर तैर रहे हैं। इसके बाद लहर के ऊपर लहर आने लगी—लहरों का अन्त ही न देख पड़ता था। हम लोगों के हिंडोला झूलने की समाप्ति भी न होने आती थी।

इतनी देर बाद यह समझ में आया कि कप्तान साहब ने इतने आदमियों को पशुओं की तरह पूर्वोक्त गढ़े के भीतर बंद करके ताला बंद करा दिया था।

डेक के ऊपर से रह रहकर जैसे जल का स्रोत बह जाने लगा। मेरे नीचे की बत्तखे और मुर्गियाँ वग़ैरह कई बार फटफटाकर और भेड़े में-मे करके मृत्यु के मुख मे चली गई! केवल मैं उनके पींजड़ों के ऊपर बैठा हुआ उस लोहे के खूँटे को ज़ोर से पकड़े हुए जीवन की रक्षा करता चला जा रहा था।

किन्तु और एक प्रकार की आफत का सामना करना पड़ा? जल के छींटे ही केवल आकर शरीर मे सुई की तरह चुभने लगे, किन्तु सारे कपड़े और धोती भीग जाने के कारण प्रचंड वायु के झोंके शरीर मे लगने से ऐसा जाड़ा मालूम पड़ने लगा कि दाँत कटाकट बजने लगे, और जूड़ी-सी चढ़ आई।

ख़याल आया कि जल मे डूबने के हाथ से अगर फिलहाल

बच भी जाऊँ तो निमोनिया के हाथ से कैसे बचूँगा ? इसी तरह और भी कुछ देर बैठे रहने पर सचमुच निमोनिया के हाथ से न बच सकूँगा, यह निस्सन्देह मालूम पड़ने लगा। अतएव चाहे जिस तरह हो, इस जगह को छोड़कर ऐसे किसी स्थान में आश्रय लेना चाहिए जहाँ पानी के छींटे बल्लम की नोक की तरह शरीर में न बिधें।

एक बार सोचा, भेंड़ों के पींजड़े के भीतर घुस पड़ूँ तो कैसा हो ? किन्तु वही स्थान कितना निरापद है ? उसके भीतर अगर उसी तरह खारी पानी का स्रोत घुस पड़े तो में-में करके न सही, मा-मा करके, अवश्य ही मुझे मृत्यु के मुँह में जाना पड़ेगा !

केवल एक उपाय है। जहाज़ जब करवट बदलता या पार्श्व-परिवर्तन करता है उसी बीच में दौड़ जाने का थोड़ा-सा अवकाश मिलता है। अतएव इसी समय के भीतर यदि और किसी जगह जाकर घुस सकूँ तो जान बच सकती है। जैसे सोचा वैसे ही उसके अनुसार काम किया। किन्तु पींजड़ों पर से उतर कर तीन बार दौड़कर और तीन बार बैठकर किसी तरह अगर सेकिंड क्लास कैबिन के दरवाजे के पास जाकर उपस्थित हुआ तो दरवाज़ा बंद मिला। लोहे के किवाड़ हज़ार ठेलने पर भी नहीं खुले। इसलिए उतना रास्ता फिर उसी तरह नाँघ-कर फ़र्स्टक्लास के दरवाजे पर पहुँचा। अब की भाग्य-देवता ने सुप्रसन्न होकर एक निर्जन कमरे में आश्रय दे

दिया। रत्ती भर भी दुविधा न करके भीतर से किवाड़ वंद करके मैं झटपट पलँग पर लेट गया।

बारह वजे रात के भतीर ही आँधी-पानी थम गया सही, लेकिन दूसरे दिन सवेरे तक समुद्र का क्रोध कम नहीं हुआ।

मेरे सामान अथवा साथ के यात्रियों की क्या दशा हुई, खासकर मिस्त्री ने स्त्री-सहित किस तरह रात बिताई यह जानने के लिए सवेरे ही नीचे गया। कल नन्द मिस्त्री ने दिल्लगी के तौर पर ही कहा था कि वावूजी, साढ़े वत्तिस भाजा की तरह हम लोग आपस में गड्डवड्ड हो गये थे; अभी-अभी अपने-अपने स्थान में वापस आकर वैठे हैं। आज जो लोग रात भर गड्ड-वड्ड होते रहे उसकी उपमा साढ़े वत्तिस भाजा से दी जा सकती थी या नहीं, यह मैं नहीं जानता; लेकिन यह मैंने अपनी आँखों से देखा कि अभी तक कोई अपनी जगह पर लौटकर नहीं आ सका था।

इन यात्रियों की हालत देखकर सचमुच रुलाई आती थी। इन तीन-चार सौ यात्रियों में कुछ कर सकने के लिए समर्थ होना तो दूर, शायद किसी का भी शरीर घायल होने से नहीं बचा था।

औरतें सिल के ऊपर लोढ़े से जैसे मसाला वाँटती हैं, उसी तरह कल के साईक्लोन ने रात भर इन लोगों को परस्पर रगड़ा है। सब सामान, बक्स, पिटारा वग़ैरह लेकर ये सव लोग रात भर जहाज़ में इधर से उधर लुढ़कते फिरे है। क्रय तथा

अन्य प्रकार के दोनों अपकर्म लोगों ने इतने अधिक किये हैं कि दुर्गन्ध के मारे वहाँ खड़ा होना भी मुश्किल था। इस समय जहाज़ के डाक्टर बाबू मेहतरों और खलासियों की सहायता से इन लोगों की सफाई कराने का प्रबन्ध कर रहे थे।

डाक्टर बाबू ने बार बार सिर से पैर तक देख कर, जान पड़ता है, मुझे सेकिंड क्लास का यात्री समझ लिया था। तथापि अत्यन्त विस्मित होकर उन्होंने कहा—महाशय तो ख़ूब ताज़े देख पड़ रहे है। जान पड़ता है, कोई.... मिल गया था, क्यों न ?

मैंने कहा—कहाँ पाऊँगा महाशय ? पाया था भेड़ों का एक पींजड़ा। इसी से ताज़ा दिखाई पड़ रहा हूँ।

डाक्टर साहब मुँह बाकर मेरी ओर ताकने लगे।

मैंने कहा—डाक्टर साहब, यह अधम भी इसी नरक-कुण्ड का यात्री है; किन्तु दुर्बल होने के कारण इस जगह घुस नहीं सका। शुरू से ही डेक के ऊपर था। कल साईक्लोन के आने की खबर पाकर कुछ समय तक भेड़ों के पींजड़े के ऊपर बैठ कर और बाकी रात फर्स्ट क्लास की एक कोठरी में अनधिकार-प्रवेश करके मैंने आत्म-रक्षा की है। क्यों साहब, कुछ अन्याय तो मैंने नहीं किया ?

सारा इतिहास सुनकर डाक्टर साहब इतने ख़ुश हो गये कि शेष दो दिन अपने कमरे मे बिताने के लिए मुझे सादर निमन्त्रण दे बैठे। यह अवश्य है कि उस निमन्त्रण को मैं

ग्रहण नहीं कर सका, केवल उनकी डेक-कुर्सी भर माँग ली थी।

दोपहर के समय भूख के मारे मुर्दे की तरह इसी कुर्सी पर पड़े-पड़े विश्वब्रह्माण्ड की खाने की सामग्री का ध्यान कर रहा था—कहाँ जाकर क्या कौशल करने से कुछ खाने का सामान मिलेगा, इसी दुश्चिन्ता मे डूबा हुआ था—इसी समय खिदिरपुर के उन्हीं मुसलमान दर्जियो मे से एक ने आकर कहा—बाबू साहब, एक बङ्गाली औरत आपको बुला रही है।

औरत ? मैं समझा, वही टगर होगी। वह क्यों बुला रही है, यह अनुमान करना कुछ कठिन न था। निश्चय ही मिस्त्री के साथ स्वामी और स्त्री का स्वत्व प्रमाणित करने मे फिर दोनों मे कुछ मतभेद उपस्थित हुआ है। किन्तु मुझे क्यों बुलाया ? "Trial by ordeal" के सिवा बाहर के किसी आदमी ने आकर कभी इस मामले का फैसला कर दिया हो, यह तो मन मे लाना भी कठिन है।

मैंने कहा—जाकर कह दो, घटे भर बाद आऊँगा।

उस आदमी ने कुण्ठित भाव से कहा—नहीं बाबू साहब, बहुत ही व्याकुल होकर बुला रही है—

व्याकुल ? किन्तु टगर तो व्याकुल होनेवाली औरत नहीं है ! मैंने पूछा—उसका मर्द क्या कर रहा है ?

उस आदमी ने कहा—उसी की बीमारी की वजह से तो बुला रही है।

बीमार होना कुछ आश्चर्य की बात नहीं। उठना ही पड़ा। वह आदमी मुझे साथ लेकर नीचे पहुँचा। बहुत दूर पर एक कोने मे कुछ रस्सियाँ लपेटी रक्खी थीं। उन्हीं की आड़ मे एक २२-२३ वर्ष की बंगाली औरत बैठी थी। उसे आड़ में रहने के कारण किसी दिन मैंने नहीं देख पाया था। उसके पास ही एक मैली शतरंजी के ऊपर इतनी ही अवस्था का बहुत दुबला-पतला नौ-जवान मुर्दे की तरह आँखें मूँदे पड़ा था। वही बीमार था।

मेरे पास पहुँचते ही उस औरत ने धीरे-धीरे धोती का आँचल सरकाकर सिर ढक लिया; किन्तु मैंने इसका मुख पहले ही देख लिया था।

उस मुख को सुन्दर कहा जाय तो बहस की जा सकती है, लेकिन इसमे तो कोई सन्देह नहीं कि वह अवहेला या उपेक्षा करने की चीज़ न थी। कारण, यह मैं जानता हूँ कि बड़ा कपाल स्त्रियों के सौन्दर्य की सामग्री नहीं समझा जाता, तथापि इस तरुणी के प्रशस्त ललाट के ऊपर बुद्धि और विचार की क्षमता की ऐसी छाप मैंने देख पाई कि वह सचराचर सर्वत्र नहीं देख पड़ती; मैंने भी शायद ही कहीं देखी हो। मेरी अन्नदा दीदी का कपाल भी बड़ा और विशाल था—इस स्त्री का ललाट भी बहुत कुछ वैसा ही था। माँग मे सेन्दुर झलक रहा था; हाथ मे चूड़ियों के सिवा और कोई गहना न था। केवल एक सीधे-सादे ढङ्ग की चौड़ी लाल किनारी की धोती वह पहने थी।

कोई जान-पहचान न रहने पर भी उस स्त्री ने ऐसे सहज भाव से बात-चीत की कि वास्तव में मै विस्मित हो गया। उसने कहा—आपसे डाक्टर बाबू की तो जानपहचान है। ज़रा उन्हें बुला ला सकते हैं ?

मैंने कहा—जान-पहचान आज ही हुई है। हाँ, डाक्टर साहब आदमी अच्छे जान पड़ते हैं; किन्तु प्रयोजन क्या है ?

उस स्त्री ने कहा—बुलाने से अगर फीस देनी पड़े तो फिर बुलाने की ज़रूरत नहीं, न होगा यही कष्ट करके ऊपर उनके पास तक चले जायँगे।

यह कह कर उसने उस रोगी आदमी को दिखा दिया।

मैंने सोच कर कहा—जहाज़ के डाक्टर को बुलाने से शायद कुछ भी देना न होगा। इन्हे हुआ क्या है ?

मैंने सोचा था, यह मनुष्य उस स्त्री का पति है। किन्तु उस स्त्री की बातचीत से मन में एक प्रकार का सन्देह उत्पन्न हो गया। उस आदमी के मुख पर झुककर स्त्री ने पूछा—घर से ही तुम्हे कुछ पेट की बीमारी थी, क्यों न ?

पुरुष के सिर हिलाने पर स्त्री ने सिर उठाकर मुझसे कहा—हाँ, घर से ही इनका पेट गड़बड़ है। कल से बुख़ार भी आ गया है। इस समय बुख़ार बहुत तेज़ देख पड़ता है। कुछ दवा दिये बिना काम नहीं चलेगा।

मैंने ख़ुद भी उस आदमी के शरीर पर हाथ रख कर

देखा, वास्तव मे ज्वर बहुत था। डाक्टर साहब को बुलाने ऊपर चला गया।

डाक्टर ने नीचे आकर रोग की परीक्षा करके दवा देकर कहा—चलिए श्रीकान्त बाबू, ऊपर चलकर कुछ गपशप ही लड़ाई जाय।

डाक्टर बाबू आदमी बड़े अच्छे थे। अपने ही देश के थे। अपनी कोठरी में ले जाकर उन्होंने कहा—चाय तो आप पीते हैं न ?

मैंने कहा—जी हाँ।

फिर पूछा—बिसकुट ?

मैंने कहा—बिसकुट भी खाता हूँ।

डाक्टर ने कहा अच्छा।

खाना-पीना समाप्त होने के बाद हम दोनों जने आमने-सामने दो कुर्सियों पर बैठ गये।

डाक्टर ने कहा—आप कैसे पहुँच गये ?

मैंने कहा—उस औरत ने मुझे बुला भेजा था।

डाक्टर बाबू ने बड़े विज्ञ की तरह सिर हिलाकर कहा—बुला भेजना ही चाहिए था। आपने व्याह-वाह कुछ किया है ?

मैंने कहा—जी नहीं।

डाक्टर साहब ने कहा—तो बस, हाथ से जाने न दीजिएगा, जुट जाइए। कुछ ऐसी बुरी नहीं है। उस आदमी की सूरत

तो आपने देखी ही है। उस पर टाइफाइड-ज्वर के ही लक्षण जान पड़ते हैं। कुछ भी हो, रोगी बहुत दिन तक नहीं जियेगा, यह निश्चित है। इस बीच में तनिक नज़र रखिएगा, और कोई सयाना आकर न भिड़ जाय।

मैंने अवाक् होकर सन्नाटे में आकर, कहा—आप यह सब क्या कह रहे है डॉक्टर बाबू ?

डॉक्टर बाबू ने कुछ भी अप्रतिभ या लज्जित न होकर कहा—अच्छा, यह छोकरा इस औरत को निकाल लाया है या यह औरत ही उसे लेकर भाग आई है ? आपको क्या जान पड़ता है ? औरत ख़ूब (forward) है न ? ख़ूब तेज़ी के साथ निस्संकोच होकर बात-चीत करती है।

मैंने कहा—आपके मन में ऐसा खयाल क्यों पैदा हुआ ?

डॉक्टर ने कहा—मैं हर फेरे में ही देखता हूँ, इस तरह की औरत और मर्द का जोड़ा एक-न-एक रहता ही है। पिछली मर्तबा भी 'बेलबोर' (एक स्थान) की एक ऐसी ही जोड़ी थी। ज़रा बरमा में जाकर पहुँचिए, तब देखिएगा मेरा कहना ठीक है या नहीं।

उनका यह कथन बहुत कुछ सच था, यह पीछे बरमा मे जाकर मैंने अवश्य देखा, लेकिन फिलहाल उनकी बातें सुनकर मेरा मन खीज से भर गया।

डॉक्टर बाबू से बिदा होकर एक बार नन्द मिस्त्री की खबर लेने फिर नीचे गया। सपरिवार मिस्त्री साहब उस समय

फलाहार का आयोजन कर रहे थे। उसने देखते ही प्रणाम करके पहले यही प्रश्न किया—यह औरत कौन है बाबूजी ?

टगर के सिर में दर्द था। उसकी शान्ति के लिए वह सिर में एक कपड़ा पगड़ी की तरह लपेट रही थी। मिस्त्री का प्रश्न सुनते ही वह फुफकार मारकर गरज उठी—तुमको इस खबर की क्या ज़रूरत है, भला सुनूँ तो ?

मिस्त्री ने मुझे मध्यस्थ मानकर कहा—देखा बाबूजी, कैसी ओछी तबीअत की औरत है ? कौन बङ्गाली औरत रंगून जा रही है, यह पता लगाने में भी पाप है कुछ ?

टगर सिर का दर्द भूल कर सिर की पगड़ी फेक कर मेरी ओर देखकर उन दोनों गोल-गोल आँखों को फैलाकर कहने लगी—बाबूजी, टगर वैष्णवी के हाथ से इसके जैसे कितने गुंडे मिस्तरी आदमी बनकर निकल गये हैं। भला कोई मेरी आँखों में धूल झोंक सकता है। अरे तू डॉक्दर है या बैद जो जरा मैं पानी लेने गई कि तू चट उसे देखने दौड़ा गया ? क्यों, वह तेरी कौन है ? कहे देती हूँ मिस्तरी, अच्छा न होगा ! अब फिर अगर उस तरफ जाते देखूँगी तो तुम्हारी और अपनी जान एक कर दूँगी !

नन्द मिस्त्री ने भी गरम पड़कर कहा—तेरा क्या मैं पलाऊ बन्दर हूँ कि तू जिधर जंजीर पकड़ कर मुझे ले जायगी उधर ही जाऊँगा ? मेरा जी चाहेगा तो उस बेचारे बीमार बङ्गाली को जाकर देख ही आऊँगा, तुझसे जो बन पड़े सो कर लेना !

यह कहकर उसने फलाहार में मन लगाया।

टगर केवल "अच्छा" कहकर फिर सिर में कपड़ा लपेटने लगी। मैं भी वहाँ से चल दिया। मैं रास्ते में यही सोचता गया कि इसी तरह इन दोनों ने बीस बरस बिताये हैं। अनेक चर्के उठाकर टगर ने यह समझ लिया है कि जहाँ सत्य का बन्धन नहीं है वहाँ तनिक भी रास ढीली करना ठीक नहीं। ऐसा करने से धोका खाना ही होगा। या तो दिन-रात सतर्क होकर ज़बरदस्ती अपना दख़ल बनाये रक्खो, और या जवानी की तरह नन्द मिस्त्री भी एक दिन अकस्मात् छोड़ जायगा। किन्तु जिस स्त्री को उपलक्ष करके टगर के मन में यह विक्षेप उत्पन्न है, जिसके बारे में डॉक्टर बाबू ने ऐसा तीव्र, कुत्सित कटाक्ष किया, वह कौन है और क्या है ?

टगर ने कहा कि यही काम करके उसने बाल सफेद किये हैं; उसकी आँखों में कोई औरत भला धूल झोंक सकती है ? उधर डॉक्टर ने अपनी राय ज़ाहिर की कि उनकी दिव्य दृष्टि ऐसे मामले बराबर देखती आ रही है। आज अगर वह धोका खा जाय तो वह अपनी आँखे निकाल कर फेंक देने को तैयार है।

ऐसा ही होता है। दूसरे के बारे मे विचार करने बैठकर किसी आदमी को यह कहते कभी नहीं सुना कि वह अन्तर्यामी नहीं है, अथवा उससे भ्रम या प्रमाद कभी होता या हो सकता है। सभी यह कहते हैं कि मनुष्य को पहिचानने में उनका सानी कोई नहीं है, वे एक पक्के जौहरी हैं। लेकिन मैंने

तो वास्तव में ऐसा भी एक आदमी नहीं देखा, जिसने अपने ही मन को अच्छी तरह पहिचान पाया हो।

मगर हाँ, मेरी तरह जिसने अभी कड़ी ठोकर खाई है, चर्का उठाया उसे तो सावधान ही होना पड़ता है। जब संसार मे अन्नदा दीदी भी है तब बुद्धि के अहङ्कार से दूसरे को बुरा सोचकर बुद्धिमान् होने की अपेक्षा समझ कर मूर्ख बनने मे भी कुल मिला कर बुद्धि के दास अधिक ही पाये जाते हैं, यह बात उसको मन ही मन स्वीकार करनी ही पड़ती है।

किन्तु डॉक्टर ने जो कहा था कि औरत बहुत ही Forward है, सो ठीक है। केवल यही बात रह-रह कर मुझे खटकने लगी। बहुत रात गये फिर मेरी पुकार हुई। अब की इस स्त्री का परिचय प्राप्त हुआ। इसका नाम है अभया। उत्तर राढ़ी कायस्थों के घर की है। घर बालूचर के पास है। जो आदमी बीमार हो पड़ा है वह गॉव के रिश्ते का भाई होता है। उसका नाम है रोहिणीसिंह।

दवा से रोहिणी बाबू को बहुत लाभ हुआ, यहाँ से शुरू करके बातचीत करते करते अभया ने बहुत ही थोड़े समय में मुझे अपना आत्मीय बना लिया। अथच यह स्वीकार करना ही होगा कि मेरे मन में, इच्छा न रहने पर भी, एक कठोर समालोचना का भाव बराबर बना हुआ था। तथापि इस स्त्री की सारी बातचीत के भीतर कहीं भी कुछ असंगति या अशोभन प्रगल्भता मैं नहीं पकड़ पाया।

इसमें सन्देह नहीं कि अभया में मनुष्य को वश में करने की अद्भुत शक्ति थी ! इसी बीच में उसने मेरा केवल नाम-धाम ही नहीं जान लिया, किन्तु यह भी मेरे मुँह से कहला लिया कि मैं उसके लापता पति को जिस तरह हो सकेगा, खोज दूँगा। उसका स्वामी आठ बरस पहले बरमा में नौकरी करने आया था। दो साल तक उसकी चिट्ठी-पत्री आती रही, लेकिन इधर छः साल से कोई ख़बर नहीं मिली। देश में आत्मीय-स्वजन और कोई नहीं है। मा थीं, वह भी, महीना भर हुआ, स्वर्ग सिधार गईं। अभिभावक-हीन होकर मायके मे रहना असम्भव हो पड़ने से रोहिणी दादा को राज़ी करके यह बरमा जा रही है।

ज़रा देर चुप रह कर अभया एकाएक कह उठी—अच्छा, अगर इतनी भी चेष्टा न करके किसी तरह देश के घर में ही पड़ी रहती तो क्या अच्छा होता ? इसके सिवा इस अवस्था में बदनामी मोल लेते कितनी देर लगती है ?

मैंने पूछा—कुछ जानती हैं आप, वह क्यों इतने दिन से आपकी ख़बर नहीं लेते ?

अभया ने कहा—ना, मैं तो कुछ नहीं जानती।

मैंने कहा—इसके पहले कहाँ थे, यह आपको मालूम है ?

अभया ने कहा—जानती हूँ। रगून मे ही थे, बरमा-रेलवे में काम करते थे। किन्तु कितनी ही चिट्ठियाँ मैंने भेजीं, कभी किसी का जवाब नहीं मिला। लेकिन एक भी चिट्ठी लौटकर नहीं आई।

अभया के स्वामी ने सभी चिट्ठियाँ पाई हैं, यह निश्चय है। किन्तु उसने क्यों नहीं किसी पत्र का उत्तर दिया, उसका आनुमानिक कारण मैं अभी डॉक्टर बाबू के मुँह से सुन आया था। बहुत से बङ्गाली वहाँ जाकर किसी सुन्दरी बरमी को घर बिठाकर नई गिरिस्ती बसा लेते हैं। ऐसे भी अनेक हैं, जो जीवन भर फिर कभी इस देश मे लौटकर नहीं आते।

मुझे चुप देख कर अभया ने प्रश्न किया—आपको क्या यह जान पड़ता है कि वे अब इस संसार में नहीं हैं ?

मैंने गरदन हिलाकर कहा—ना, बल्कि ठीक इसका उलटा मेरा ख्याल है। मैं क़सम खाकर यह कह सकता हूँ कि वे जीवित हैं।

चट अभया ने मेरे पैर छूकर कहा—आपके मुँह में घी-शक्कर श्रीकान्त बाबू, मैं और कुछ नहीं चाहती। वे ज़िंदा रहें, सुख से रहें, बस।

मैं फिर चुप हो रहा। अभया भी कुछ देर चुप रही, फिर बोली—आप क्या सोच रहे हैं, यह मैं जानती हूँ।

मैंने कहा—जानती हैं ?

अभया ने कहा—जानती नहीं। आप मर्द होकर सोचने लगे और मुझे स्त्री की जाति होकर वह भय नहीं है ? सो वह हो, मैं डरती नहीं। मैं सौत के साथ अच्छी तरह रह सकती हूँ।

मैं फिर भी चुप रहा। लेकिन मेरे मन की बात का अनुमान करते इस बुद्धिमती तरुणी को तनिक भी देर नहीं

लगी। उसने कहा—आप सोच रहे हैं, केवल मेरे ही एक साथ रहने के लिए राज़ी होने से क्या होगा, मेरी सौत भी क्या राज़ी होगी ? यही न ?

वास्तव में मैं तो अवाक् होगया। मैंने कहा—अच्छा, अगर यही हो तो आप क्या करेंगी ?

अब की अभया की आँखों में आँसू भर आये। मेरे मुँह की ओर आँसू-भरी दृष्टि स्थापित करके उसने कहा—उस विपत्ति में आप मेरी थोड़ी सहायता कीजिएगा श्रीकान्त बाबू। मेरे रोहिणी दादा बड़े ही सीधे-सादे आदमी हैं। उस समय इनके द्वारा मेरा कुछ भी उपकार न हो सकेगा।

मैंने राज़ी होकर कहा—भरसक निश्चय ही सहायता करूँगा; किन्तु इन सब मामलों में बाहरी आदमी के द्वारा कुछ भलाई तो होती ही नहीं, उलटे बुराई ही पैदा हो जाती है।

"यह तो आपका कहना सच है" कह कर अभया चुप हो गई और सोचने लगी।

दूसरे दिन ११-१२ बजे के भीतर जहाज़ रंगून पहुँच जायगा। किन्तु सबेरा होते ही लोगों की आँखों में और चेहरे पर एक भय और चंचलता का आभास दिखाई पड़ने लगा। चारों ओर से एक अस्पष्ट शब्द सुनाई पड़ने लगा—"केरेंटिन, केरेंटिन !" पता लगाने से मालूम पड़ा, ठीक शब्द Quarantine है। उन दिनों बरमा की गवर्नमेंट प्लेग के भय से अत्यन्त सावधान थी। शहर से ८-१० मील के फ़ासले पर ;एक रेती में

कॉटेदार तार का घेरा खड़ा करके एक जगह घेर दी गई थी। उसी में बहुत-सी झोपड़ियाँ डाल दी गई थीं। इसी में डेक के यात्रियों को विना किसी विचार के उतार दिया जाता है। दस दिन यहाँ रहने के बाद फिर ये शहर में घुसने पाते हैं। हाँ, अगर किसी का कोई आत्मीय शहर में रहता हो, और वह Port Health officer से किसी कौशल से छोड़-पत्र प्राप्त कर सके तो उसके लिए और बात है।

डॉक्टर ने मुझे अपनी कोठरी में बुलाकर कहा—'श्रीकान्त बाबू, आप सिफारिश की एक चिट्ठी लिखाकर नहीं लाये, यह आपने ठीक नहीं किया। कारंटाइन में ले जाकर ये लोग मनुष्य को इतना कष्ट देते हैं कि क़साईखाने की भेड़-बकरियों को भी इतना कष्ट नहीं सहना पड़ता। मगर हाँ, नीच जाति के लोग किसी तरह उन तकलीफों को बरदाश्त कर लेते हैं। मरण केवल भले आदमियों का है! एक तो यहाँ कोई कुली-मज़दूर नहीं है, अपना सारा सामान अपने कंधे पर लाद कर एक पतली-सी सीढ़ी से चढ़ना-उतरना होता है, उतनी दूर ले जाना पड़ता है, उसके बाद वहाँ जाकर जाँच के समय सब सामान खोलकर इधर-उधर बिखरा कर फेंक दिया जाता है, स्टीम में खौलाकर नष्ट कर डाला जाता है। भैया, इस कड़ी धूप में कष्ट की सीमा नहीं रहती।

मैंने बहुत डर कर कहा—इसका क्या कोई प्रतिकार नहीं है डॉक्टर साहब?

उन्होंने गरदन हिलाकर कहा—जी नहीं। हाँ, यहाँ के डॉक्टर साहब जब जहाज़ पर जाँच के लिए आवेंगे, तब मैं एक बार आपके लिए उनसे कहकर देखूँगा, उनका क्लर्क अगर आपकी ज़िम्मेदारी लेने को राज़ी—

डॉक्टर की बात अच्छी तरह पूरी भी न होने पाई कि एक ऐसी घटना घटित हो गई जिसे याद करके आज भी मैं लज्जा से गड़ जाता हूँ। एक शोर-गुल सुनकर हम दोनों आदमियों ने कोठरी के बाहर आकर देखा, जहाज़ का सेकेंड आफिसर साहब ६-७ खलासियों को करारी बूट की ठोकरे मार रहा है, और वे इधर-उधर जहाँ पाते हैं भागकर जान बचाते हैं। यह अँगरेज़ बड़ा ही उद्धत था, इस कारण जान पड़ता है, डॉक्टर बाबू से अब से पहले किसी दिन कहा-सुनी हो चुकी होगी। आज भी एक झपट हो गई।

डॉक्टर ने क्रुद्ध होकर कहा—तुम्हारा यह व्यवहार बड़ा ही निन्दित है। एक दिन तुमको इसके लिए बहुत पछताना पड़ेगा, यह मैं कहे देता हूँ।

आफिसर घूम कर खड़ा हो गया और बोला—क्यों?

डॉक्टर ने कहा—इस तरह लातें और ठोकरे मारना बड़ा अन्याय है!

आफिसर ने जवाब दिया—मार के बिना ये जानवर सीधे होते हैं?

डॉक्टर बाबू ज़रा 'स्वदेशी' ख़याल के थे, इसी से उत्तेजित

होकर कहने लगे—ये लोग जानवर नहीं, ग़रीब आदमी हैं। हमारे देशी आदमी नम्र और शान्त स्वभाव के होने के कारण कप्तान साहब से जाकर तुम्हारे ख़िलाफ़ शिकायत नहीं करते और तुम भी अत्याचार करने का साहस करते हो।

एकाएक साहब का मुख अकृत्रिम हँसी से उज्ज्वल होगया। डॉक्टर का हाथ पकड़कर उँगली से दिखाकर उसने कहा—Look, Doctor, there's your countryman, you ought to be proud of them. अर्थात् डॉक्टर अपने देसी आदमियों को देखो, जिनके लिए तुम गर्व करते हो।

मैंने देखा, कई ऊँचे पीपों की आड़ में खड़े हुए वे खलासी दाँत निकाले हँसते और शरीर की धूल झाड़ रहे हैं।

साहब ने हँसकर डॉक्टर बाबू के मुँह के पास दोनों हाथ के अँगूठे हिलाकर हिलते-डुलते और सीटी बजाते हुए वहाँ से प्रस्थान किया। विजय का गर्व जैसे उसके सब अंगों से फूटा पड़ रहा था।

डॉक्टर का मुख लज्जा, क्षोभ और अपमान से स्याह पड़ गया। उन्होंने तेज़ी से आगे बढ़कर क्रुद्ध स्वर में उन कुलियों से कहा—साले बेहया, दाँत निकाल कर हँस रहे हो ?

अब तो इतनी देर बाद देसी लोगों का आत्म-सम्मान लौट आया। सभी ने एक साथ हँसना बंद करके चढ़े गले से जवाब दिया—तुम डॉक्टर बाबू, साले और बेहया कहनेवाले कौन हो ? हम क्या किसी से क़र्ज़ लेकर खाकर हँसते हैं ?

मैं डॉक्टर को ज़बरदस्ती खींच कर वहाँ से उनकी कोठरी में ले आया। उन्होंने कुर्सी पर धम से बैठकर केवल इतना ही कहा—ओह!

और दूसरी बात उनके मुँह से नहीं निकली। निकलना भी असंभव था।

ग्यारह बजे के वक़्त क्वारंटाइन के निकट पहुँचने पर एक छोटा-सा स्टीमर आकर हमारे जहाज़ से भिड़ गया। यही सब डेक के यात्रियों को लाद कर उस भयानक स्थान में ले जायगा। सामान बाँधने की धूम पड़ गई। मुझे कुछ जल्दी न थी। कारण, डाक्टर बाबू का आदमी अभी आकर कह गया था कि मुझे उस जगह नहीं जाना होगा। निश्चिन्त होकर यात्रियों और खलासियों का चिल्लाना और दौड़-धूप वग़ैरह बहुत कुछ अन्यमनस्क भाव से देख रहा था।

इतने में एकाएक पीछे पुकारने का शब्द सुनकर देखा, अभया खड़ी हुई है। विस्मित होकर मैंने कहा—आप यहाँ कैसे आईं?

अभया ने कहा—आपने अपना सामान-असबाब नहीं बाँधा!

मैंने कहा—नहीं, मुझे अभी देर है। मैं वहाँ नहीं जाऊँगा, एकदम शहर में ही जाकर उतरूँगा।

अभया ने कहा—नहीं, जल्दी सामान ठीक कर लीजिए।

मैंने कहा—मुझे सामान बाँधने के लिए बहुत समय है।

अभया ने प्रबल वेग से सिर हिला कर कहा—ना, यह न होगा। मुझे छोड़कर आप किसी तरह न जा सकेंगे।

मैंने अवाक् होकर कहा—यह क्या कहती हो! मेरा तो वहाँ जाना हो ही नहीं सकता।

अभया ने कहा—तो फिर मैं भी न उतरूँगी। मैं बल्कि समुद्र मे फाँदकर जान दे दूँगी, लेकिन निराश्रय निस्सहाय होकर वहाँ न जाऊँगी! वहाँ का सब हाल मैं सुन चुकी हूँ।

कहते-कहते उसकी दोनों आँखों में आँसू भर आये।

मै हतबुद्धि होकर जहाँ का तहाँ बैठा रहा। यह कौन है, जो ज़ोर करके अपने जीवन के साथ मुझे धीरे-धीरे लपेटे ले रही है!

उसने आँचल से आँसू पोंछकर कहा—मैं यह नहीं सोच सकती कि आप ऐसे निष्ठुर हो सकते है कि मुझे अकेली छोड़कर यहाँ से चले जायँगे। उठिए, नीचे चलिए। आपके साथ रहे बिना उस रोगी आदमी को लेकर मैं अकेली औरत क्या कर सकूँगी, आप ही बतलाइए?

अपना सामान लेकर मैं जब अभया के साथ उस छोटे स्टीमर पर सवार हो रहा था उस समय डॉक्टर साहब ऊपर डेक पर खड़े थे। एकाएक मुझे इस अवस्था में देखकर उन्होंने चिल्लाकर हाथ हिलाकर कहना शुरू किया—ना, ना, आपको जाना न होगा। लौटिए, लौटिए, आपके लिए हुक्म हो गया है; आप—

मैंने भी हाथ हिलाकर चिल्लाकर कहा—असंख्य धन्यवाद। किन्तु और एक हुक्म ऐसा है जिसके कारण मुझे जाना ही पड़ रहा है।

जान पड़ता है, सहसा उनकी दृष्टि रोहिणी और अभया पर पड़ गई। उन्होंने हँसकर कहा—तो फिर मुझे वेकार कष्ट क्यों दिया?

मैंने कहा—उसके लिए मैं क्षमा-प्रार्थना करता हूँ।

डॉक्टर ने कहा—ना, ना, इसकी जरूरत नहीं है। मैं पहले ही से जानता था। अच्छा, गुडबाई; जाता हूँ।

यह कह कर डॉक्टर वावू हँसते हुए अपनी कोठरी में चले गये।



## पाँचवाँ परिच्छेद

क्यारंटाइन-कारावास का क़ायदा कुलियों के लिए है, भले आदमियों के लिए नहीं और, जिस किसी ने दस रुपये से अधिक भाड़ा नहीं दिया वही कुली है। चाय-बगीचे का आईन क्या कहता है, यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन जहाजी क़ायदा यही है और मालिक या अफसर लोग प्रत्यक्ष देख कर क्या जानते हैं, सो तो वे ही जाने, लेकिन अफसरी की हैसियत से उनके लिए इससे अधिक जानने की रीति नहीं है। अतएव उस यात्रा में हम सभी कुली थे।

साहब लोग यह भी जानते हैं कि कुली की जीवन-यात्रा का साज-सामान ऐसा कुछ नहीं हो सकता, कम-से कम होना भी नहीं चाहिए कि जिसे वह ख़ुद अपने सिर पर लाद कर एक जगह से दूसरी जगह न ले जा सके। अतएव इस उतरने के घाट से क्वारंटाइन तक जानेवाले यात्रियों का सामान ले जाने की यदि कोई व्यवस्था नहीं तो उसके लिए क्षुब्ध होने की कोई बात नहीं।

यह सब सच है, तथापि हम तीन प्राणी जो सिर के ऊपर प्रचण्ड सूर्य की कड़ी धूप और पैरों के नीचे उससे भी अधिक उग्र उत्तप्त बालुका-राशि का उत्ताप सहते हुए, एक अपरिचित नदी के किनारे ढेर की ढेर गठरी-मुटरी सामने रक्खे, किंकर्तव्य-विमूढ़ भाव से आमने-सामने खड़े एक दूसरे का मुँह ताक रहे थे, यह हमारा ही दुर्भाग्य था!

अपने साथी यात्रियों का परिचय पहले ही दे चुका हूँ। वे अपनी-अपनी लोटा-डोर और कम्बल कन्धे पर डाल कर और अपेक्षाकृत भारी बोझा अपनी गृह-लक्ष्मियों के सिर पर लदवा-कर मज़े से अपने गन्तव्य स्थान को चले गये। देखते-देखते 'रोहिणी दादा' एक बिस्तरे की गठरी पर काँपते-काँपते बैठ गये। ज्वर, पेट की बीमारी और हद दर्जे की थकान, सब मिलाकर उनकी अवस्था ऐसी थी कि चलना तो बहुत दूर, बैठना भी उनके लिए असम्भव था—लेट जायँ तो उनकी जान में जान आवे। अभया, वह ठहरी औरत। रह गया केवल मैं और

अपनी तथा परायी छोटी-मोटी गठरियाँ और सामान। मेरी हालत एक बार ध्यान देने के योग्य थी!

एक तो अकारण एक अज्ञात अप्रीतिकर स्थान को जा रहा हूँ, उस पर एक कन्धे पर लदी हुई है एक निस्सम्पर्कीय निरुपाय नारी और दूसरे कन्धे पर झूल रहे हैं वैसे ही अपरिचित एक रोगी पुरुष। गठरी-मुटरी ऊपर से छाता! इन सबके बीच में भयानक कड़ी धूप के बीच कड़ी प्यास से पीड़ित मैं सूखा गला लिये एक अज्ञात स्थान में भौचक्का-सा खड़ा हूँ। इस चित्र की कल्पना करके पाठक के हिसाब से लोगों को यथेष्ट आमोद मालूम हो सकता है, लोग मेरी मूर्खता पर ख़ूब हँस सकते हैं। शायद कोई सहृदय पाठक इस निःस्वार्थ परोपकार-प्रवृत्ति की प्रशंसा भी कर सकते हैं। किन्तु मुझे यह कहने में कुछ लज्जा नहीं कि इस अभागे का मन उस समय विरक्ति और वितृष्णा से एकदम परिपूर्ण हो उठा था।

अपने को सहस्रधिक्कार देकर मन कह रहा था कि इतना बड़ा गधा भला इस दुनिया मे और भी कोई होगा! किन्तु बड़े ही आश्चर्य की बात यह है कि मेरा यह परिचय तो मेरे मत्थे पर लिखा न था। फिर जहाज़ के इतने यात्रियों के बीच अपना भार वहन करने के लिए अभया ने एक घड़ी भर में मुझे ही कैसे छाँट लिया था—मेरी इस कमज़ोरी को उसने कैसे पहचान लिया था।

किन्तु मुझे होश आया अभया के हँसने से। उसने सिर

उठाकर ज़रा हँस दिया। इस हँसी को देखकर मैं केवल चौंक ही नहीं पड़ा, बल्कि उसका भयानक कष्ट भी मुझसे छिपा नहीं रहा। किन्तु सबसे बढ़कर मुझे आश्चर्य हुआ इस देहात की रहनेवाली स्त्री की बात सुन कर। कहाँ तो लज्जा और कृतज्ञता के बोझ से धरती मे गड़ जा कर इसे क्षमा को भिक्षा मॉगनो चाहिए, कहाँ उसने हँसकर कहा—खूब फँसे, यह न समझिएगा। आप अनायास मुझे छोड़कर चले जा सकते थे, पर नहीं गये, इसका नाम है दान। इतना बड़ा दान करने का सुयोग जीवन मे शायद बहुत कम पाइएगा, यह मैं कहे रखती हूँ। किन्तु अब ये बाते जाने दीजिए। सामान सब यहीं पड़ा रहने दीजिए देखिए, ये कहीं छाँह मे लिटाये जा सके तो अच्छा हो।

गठरी-मुटरी की ममता को फिलहाल छोड़कर ही मैं रोहिणी दादा को अपनी पीठ पर लाद-कर क्वारंटाइन की ओर चल खड़ा हुआ। अभया छोटा-सा एक हैंडबैग भर हाथ में लेकर मेरे पीछे चल दी। अन्य सब सामान वहीं पड़ा रह गया। अवश्य वह सब खोया नहीं, दो घंटे के बाद उसे ले आने का प्रबन्ध होगया था।

अधिकांश स्थलों मे देखा जाता है कि वास्तविक विपत्ति कल्पना की अपेक्षा कहीं अधिक सहज और सहने लायक होती है। पहले ही से यह स्मरण रहे तो मनुष्य अनेक दुश्चिन्ताओं के हाथ से छुटकारा पा सकता है। अतएव कुछ-कुछ क्लेश

और असुविधा यद्यपि निश्चय ही हमें भोगनी पड़ी, तथापि यह भी स्वीकार ही करना पड़ेगा कि क्वारंटाइन में रहने के दिन हमारे एक तरह से मज़े में ही बीते। इसके सिवा पैसा खर्च कर सकने से यमराज के यहाँ भी बहनोई का-सा आदर पाया जा सकता है, यह तो क्वारंटाइन ही ठहरा!

जहाज़ के डॉक्टर ने कहा था, यह औरत ख़ूब फार्वर्ड है; किन्तु ज़रूरत पड़ने पर अभया कहाँ तक फार्वर्ड हो सकती है, तेज़ी और चालाकी दिखा सकती है, इसकी शायद वे कल्पना भी नहीं कर सके थे। रोहिणी बाबू को जब पीठ से मैंने उतारा तब अभया ने कहा—बस, अब आपको कुछ भी करना न पड़ेगा श्रीकान्त बाबू! अब आप विश्राम कीजिए, जो कुछ करना है, मैं करूँगी।

विश्राम की सचमुच मुझे बड़ी ही आवश्यकता थी। थकान के मारे मेरे पैर टूटे जा रहे थे, तथापि विस्मित होकर मैंने कहा—आप क्या करेंगी?

अभया ने जवाब दिया—करने को क्या कुछ कम काम है? सामान वहाँ से मँगाना होगा, एक अच्छी-सी झोपड़ी खोजकर उसमें आप दोनों आदमियों का बिस्तरा लगाना होगा, रसोई बनाकर कुछ-न-कुछ आप लोगों को खिलाना-पिलाना होगा, तब जाकर मुझे छुट्टी मिलेगी, तभी मैं ज़रा बैठकर आराम कर सकूँगी।—ना, ना, आपको मेरे सिर की क़सम, उठिएगा नहीं; मैं अभी बात-की-बात में सब ठीक-ठाक किये देती हूँ।

फिर तनिक हँसकर उसने कहा—आप शायद सोच रहे होंगे कि मैं औरत होकर अकेले यह सब कैसे जुटा सकूँगी? अच्छा, आपको किसने ढूँढ़ निकाला था? मैंने या और किसी ने?

यह कहकर हैंडबेग खोलकर उसने कुछ रुपये निकाल आँचल में बाँध लिये और फिर वह कारंटाइन के दफ्तर की ओर चली गई।

वह कुछ कर सके या न कर सके, मुझे तो फिलहाल जो बैठने को मिल गया, यही मेरे लिए बहुत था! आध घंटे के भीतर ही एक चपरासी मुझे बुलाने आया। रोहिणी को लेकर उसके साथ जाकर मैंने देखा, रहने की जगह अच्छी ही है। मेम डॉक्टर खुद खड़ी हुई आदमियों से सब सफाई करा रही हैं, सामान भी सब आ पहुँचा है, दो खाटों के ऊपर बिस्तरे तक बिछा दिये गये हैं। एक किनारे नई हाँड़ी, चावल, दाल, आलू, घी, मैदा, लकड़ी सब सामान मौजूद है। मदरासी डॉक्टरिन के साथ अभया टूटी-फूटी हिन्दी में बात-चीत कर रही थी। मुझे देखते ही उसने कहा—तब तक जाकर तुम लोग लेट न रहो, मैं सिर पर दो लोटे पानी डालकर इस वक्त के लिए थोड़ी खिचड़ी बनाये लेती हूँ। उस वक्त फिर देखा जायगा।

इतना कहकर, गमछा और धोती लेकर, मेम साहबा को सलाम करके, एक खलासी को साथ लेकर, अभया स्नान करने

चली गई। अतएव इसी की अभिभावकता अथवा सरपरस्ती में मेरे यहाँ रहने के दिन अच्छी तरह बीते, यह कहने में कुछ विशेष अत्युक्ति न होगी।

इस अभया में मैंने दो बातें अन्त तक देखी थीं। ऐसी अवस्था में निस्सम्पर्कीय नर-नारियों की घनिष्ठता आप ही तेज़ी के साथ आगे बढ़ जाती है। किन्तु अभया ने ऐसा होने का किसी दिन मौका नहीं दिया। उसके व्यवहार में कुछ ऐसी बात थी जो हर घड़ी यह स्मरण करा देती थी कि हम केवल एक ही स्थान के यात्री-भर हैं। किसी के साथ किसी का कोई यथार्थ सम्बन्ध नहीं है—दो दिन बाद शायद जिन्दगी भर के लिए विच्छेद हो जायगा, फिर किसी से किसी की मुलाकात तक न होगी। दूसरी बात यह कि ऐसे आनन्द के साथ किसी ग़ैर के लिए परिश्रम करते भी मैंने कभी किसी को नहीं देखा। दिन भर हमारी ही सेवा मे लगी रहती थी, सभी काम आपही करना चाहती थी। सहायता करने की चेष्टा करते ही हँसकर कहती थी—यह तो सब मेरा अपना ही काम है। नहीं तो रोहिणी दादा को ही इतना कष्ट करने की क्या आवश्यकता थी और आप ही को इस जेलख़ाने में आने की क्या पड़ी थी? मेरे ही लिए तो आप लोग यह इतना दुःख-कष्ट उठा रहे हैं।

खाने-पीने के बाद हम लोग बात-चीत करते रहते, परन्तु ज्योंही दफ्तर के घंटे मे दो बजते, वह एक-दम उठ कर खड़ी हो

जाती और कहती—जाऊँ, आपके लिए चाय बना लाऊँ, दो बज गये।

मैं मन ही मन कहता—तुम्हारे स्वामी चाहे जितने बड़े नालायक़ और पापी हों, मर्द ही तो हैं! अगर कभी उनसे तुम्हारी मुलाक़ात हो सकी तो वे अवश्य ही तुम्हारे मूल्य को समझेंगे।

इसी तरह एक दिन कारंटाइन में रहने की मियाद पूरी हो गई। रोहिणी दादा भी अच्छे हो गये, और हम लोग भी सरकारी छोड़-पत्र पाकर और एक बार गठरी-मोटरी बाँध कर रंगून चले। निश्चय यह हुआ था कि शहर के मुसाफ़िरख़ाने मे दो-एक दिन ठहर कर इन लोगों के लिए कोई डेरा ठीक करके तब मैं और किसी जगह जाऊँगा, और चाहे जहाँ रहूँ, अभया के स्वामी का पता लगाकर उसे ख़बर देने की प्राणपण से चेष्टा करूँगा।

शहर मे जिस दिन मैं पहुँचा उस दिन बरमी लोगों का कोई पर्व था। और पर्व तो इनके रोज़ ही लगे रहते हैं। झुंड के झुंड बरमी नर-नारी रेशमी पोशाक पहने अपने देव-मन्दिरों को जा रहे थे। यह स्त्री-स्वाधीनता का देश ठहरा, अतएव आनन्द-उत्सव आदि में उन्हीं की संख्या अधिक रहती है। बुढ़िया, युवती, बालिका, सभी अवस्थाओं की स्त्रियाँ अपूर्व पोशाकें पहने हुए हँसती, बातें करती, गाना गाती, सारे मार्ग को गुँजाती हुई चली जा रही थीं। इनमें से अधिकांश का रङ्ग

खूब ही गोरा था। सौ में नव्वे औरतों के बाल बड़े-बड़े मेघ के समान काले और घुटनों के नीचे तक लटके हुए थे। चोटी में फूल, कानों में फूल, गले में फूलों की माला शोभायमान थी। घूँघट का झंझट नहीं था। किसी मर्द को देख कर भाग खड़े होने के आग्रह की अधिकता से ठोकर खाकर गिरने का डर नहीं। दुविधा-संकोच का लेश नहीं। जैसे झरने के मुक्त प्रवाह की तरह स्वच्छन्द अबाध गति से चली जा रही थीं।

प्रथम दृष्टि से देखते ही मैं एक-दम मुग्ध हो गया। अपने देश की स्त्रियों से तुलना करके मन ही मन इन स्त्रियों की विशेष प्रशंसा करके मैंने कहा—यही तो चाहिए! नहीं तो इसके विपरीत पराधीन संकुचित जीवन भी कोई जीवन है! इन स्त्रियों का सौभाग्य देख कर मन में एक तरह की ईर्ष्या होने लगी। मैंने कहा—यह जो चारों ओर आनन्द की सृष्टि करके चली जा रही हैं, यह क्या अवहेलना की वस्तु है? (स्त्रियों को इतनी स्वाधीनता देकर इस देश के पुरुषों ने ऐसा क्या धोखा खाया या हानि उठाई है, और हम लोगों ने स्त्रियों को सब तरह बन्धन में जकड़ कर उनके जीवन को पंगु बना कर ऐसा क्या लाभ उठाया है?) हमारे देश की औरतें भी अगर इसी तरह किसी दिन—

एकाएक ध्यान बँट गया। अचानक शोरग़ुल सुनकर पीछे फिर कर जो कुछ मैंने देखा, वह आज भी उसी तरह

स्पष्टरूप से मेरे मन में अंकित है। घोड़ागाड़ी के भाड़े के लिए झगड़ा उठ खड़ा हुआ था। गाड़ीवान हमारे ही देश का एक हिन्दुस्तानी मुसलमान था। वह कह रहा था कि किराया आठ आने तय हुआ था। और, तीन भले घर की बरमी औरतें, जो गाड़ी पर सवार होकर आई थीं, गाड़ी से उतर कर एक साथ समान स्वर से चीत्कार करके कह रही थीं—ना, पाँच आने का क़रार हुआ है। दो-तीन मिनट बहस और कहा-सुनी होने के बाद ही "बलं बलं बाहु-बलम्" की नौबत आगई। रास्ते में एक तरफ एक आदमी मोटे-मोटे गन्नों की फाँदी खड़ी किये गन्ने बेच रहा था। एकाएक तीनों औरतों ने झपट कर उसमें से एक-एक गन्ना निकाल लिया और उस अभागे गाड़ी-वान पर एक साथ, अल्टिमेटम दिये बिना ही, आक्रमण कर दिया।

वह कैसी भयानक मार थी—एक-दम बेदम प्रहार! बेचारा गाड़ीवान स्त्रियों पर हाथ भी नहीं चला सकता था। केवल आत्मरक्षा करने के लिए इसे रोकता है तो वह धमक देती है और उसे रोकता है तो तीसरी वार कर बैठती है। चारों ओर लोगों की भीड़ जमा हो गई; लेकिन सिर्फ तमाशा देखने के लिए। उस अभागे गाड़ीवान की टोपी और साफा न जाने कहाँ ग़ायब हो गया और हाथ के चाबुक का कहीं पता न था!

जब ज्यादा बरदाश्त न कर सका तब बेचारा गाड़ीवान

जान बचा कर "पुलिस! पुलिस! सिपाही! सिपाही!" चिल्लाता हुआ भागा।

मैं अभी-अभी बङ्गाल से आ रहा था, वह भी देहात से! कलकत्ते में स्त्रियों की स्वाधीनता की बात कान से सुनी है, आँख से नहीं देखी। किन्तु स्वाधीनता पाने से भले घर की 'अबलायें' भी एक जवान मर्द को खुली सड़क पर आक्रमण करके इस तरह ठोक सकती हैं, क्रमशः उनके इतने 'सबला' हो उठने की सम्भावना मेरी कल्पना के बाहर थी।

बहुत देर तक हतबुद्धि की तरह खड़े रह कर मैं अपने काम से चल दिया। मन ही मन कहने लगा—स्त्री-स्वाधीनता भली है या बुरी, इससे समाज में आनन्द की मात्रा घटती है या बढ़ती, यह विचार और एक दिन करूँगा; किन्तु आज अपनी आँख से जो कुछ देखा, उससे तो मैं घबरा ही गया।

---

## छठा परिच्छेद

अभया और रोहिणी दादा को उनके नये डेरे में, नई गृहस्थी में, सुप्रतिष्ठित करके जिस दिन सवेरे अपने लिए आश्रय खोजने को रंगून की सड़क पर निकला, उस दिन इन दोनों आदमियों के सम्बन्ध में मेरे मन मे एक-दम बिलकुल किसी तरह की ग्लानि छू नहीं गई थी, यह बात मैं नहीं कहना चाहता। किन्तु इस अपवित्र चिन्ता को अपने मन से दूर करने में भी मुझे अधिक समय नहीं लगा। कारण, किन्हीं दो खास उमर

के नर-नारियों को किसी विशेष अवस्था में देख पाते ही उनके बीच किसी विशेष सम्बन्ध की कल्पना कर बैठना कितना बड़ा भ्रम है, यह शिक्षा मुझे मिल चुकी थी। और, भविष्य की किसी जटिल समस्या को भविष्य के हाथ में छोड़ देते भी मैं नहीं हिचकता। सुतराम् केवल अपना ही भार अपने कन्धे पर उठाकर उस दिन सवेरे मैं उनके नये डेरे से निकला था।

आज-कल की तरह उन दिनों नये बङ्गाली को बरमा मुल्क में पैर रखते ही पुलिस के गुप्त और प्रकट कर्मचारियों का दल उससे प्रश्न पर प्रश्न करके, व्यंग्य-विद्रूप करके, उसे लाञ्छित करके, डरा-धमका कर बिना अपराध के थाने में घसीट ले जा कर घोर यंत्रणा और कष्ट नहीं देता था। उन दिनों मन में पाप न रहने से परिचित हो या अपरिचित, हर एक नवागत को निर्भय होकर घूमने-फिरने का अधिकार था, और आज-कल की तरह अपने को निर्दोष प्रमाणित करने के लिए अत्यन्त अपमानकर गुरुभार भी उस समय किसी नवागत बङ्गाली के सिर पर लादा नहीं जाता था।

अतएव स्वच्छन्द चित्त से, मौज के साथ, किसी एक आश्रय की खोज में मैं प्रातःकाल से १०-११ बजे तक राह-राह घूमता रहा, यह मुझे अच्छी तरह याद पड़ता है। इतने में एक बङ्गाली से भेंट हुई। वह मजदूर के सिर पर तरकारी वग़ैरह सामान लदाये हुए पसीना पोंछते-पोंछते तेज़ी के साथ चला जा रहा था।

मैंने पूछा—क्यों साहब, नन्द मिस्त्री का घर कहाँ है, आप कुछ बतला सकते हैं ?

वह आदमी रुक कर खड़ा हो गया। बोला—कौन नन्द ? रिबिट-घर के नन्द पागड़ी को आप खोज रहे हैं ?

मैंने कहा—सो तो मैं जानता नहीं महाशय कि वह किस घर के हैं। उन्होंने केवल रंगून का प्रसिद्ध नन्द मिस्त्री कह कर अपना परिचय मुझे दिया था।

उस आदमी ने असम्मान-सूचक एक प्रकार का मुँह बना कर कहा—ओह—मिस्त्री ! इस तरह सभी अपने को मिस्तरी कहा करते हैं महाशय ! मिस्तरी होना कुछ सहज नहीं है ! मार्कट साहब ने जब मुझसे कहा था कि हरिपद, तुम्हारे सिवा मिस्तरी होने लायक़ और आदमी तो मुझे देख नहीं पड़ता तब आप जानते हैं, कितनी बेनामी चिट्ठियाँ उसके पास पहुँची थीं ? एक सौ—पूरी एक सौ ! अरे हथौड़े का जोर रहने से बेनामी चिट्ठियाँ क्या बिगाड़ सकती हैं बाबा ! मैं काट कर जोड़ सकता हूँ, समझे आप ! लेकिन आप जानते हैं महाशय—

देखा, बिना जाने इस आदमी के ऐसे स्थान पर चोट पहुँचाई है कि मीमांसा होना कठिन है। इसी से चटपट रोक कर मैंने कहा—तो आप नन्द नाम के किसी आदमी को नहीं जानते ?

उस आदमी ने कहा—ख़ूब कही ! चालीस साल से रंगून में रहता हूँ—मैं जानता किसे नहीं ? नन्द क्या एक है ? तीन

तीन नन्द यहाँ हैं साहब ! क्या कहा, नन्द मिस्तरी ? आप आ कहाँ से रहे हैं ? शायद बगाल से आ रहे हैं ? ओह, तो यह कहिए कि टगर के मर्द को पूछ रहे हैं ?

सिर हिलाकर मैंने कहा—हाँ, वही—वही।

उस आदमी ने कहा—यह कहिए। परिचय पाये बिना कैसे पहचानता ? आइए मेरे साथ। तकदीर से नन्द पैसा पैदा कर रहा है, मजे में खा-पी रहा है; नहीं तो नन्द पागड़ी भी कोई मिस्तरियों में मिस्तरी है !! आप महाशय कौन ठाकुर हैं ?

ब्राह्मण सुनकर उस आदमी ने सड़क पर ही झुक कर पैर छुए। फिर कहा—वह आपकी नौकरी लगा देगा ? मगर हाँ, साहब से कह-सुनकर कोई नौकरी दिला भी दे सकता है; लेकिन दो महीने की तनख्वाह पेशगी उसे घूँस देनी होगी ! दे सकिएगा ? दे सकिएगा तो अठारह-बीस आने रोज़ की नौकरी दिला भी दे सकता है। इससे अधिक नहीं !

मैंने उसे बतलाया कि फिलहाल नौकरी की आशा से मैं नहीं जा रहा हूँ, रहने के लिए थोड़ी-सी जगह दिलाने की आशा मुझे नन्द मिस्त्री ने जहाज़ के ऊपर ही दी थी। इसी आशा से जा रहा हूँ।

सुनकर उस आदमी अर्थात् हरिपद मिस्त्री को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा—महाशय, आप भले आदमी हैं, भले आदमियों के ही 'मेस' ( एक प्रकार के होटल ) में क्यों नहीं जाते ?

मैंने कहा—ऐसा मेस कहाँ है? मुझे तो कुछ मालूम नहीं।

वह भी नहीं जानता, यह उसने स्वीकार किया। किन्तु तीसरे पहर पता लगाकर बतलाने की आशा देकर उसने कहा—लेकिन इस समय तो नन्द मिस्त्री डेरे पर मिलेगा नहीं, काम पर गया है, टगर किवाड़े बंद किये रहती है। पुकार कर उसकी नींद असमय उचाटने से ख़ैर न होगी महाशय!

यह मैं भी ख़ूब जानता था। अतएव रास्ते में ही मुझे इधर-उधर करते देख कर हिम्मत बँधाते हुए हरिपद ने कहा—वहाँ न जाइएगा तो क्या होगा! ऐसा बढ़िया दादा ठाकुर का वह सामने ही होटल मौजूद है। यहीं नहा-धोकर कुछ खा-पीकर ज़रा लेट रहिए। तीसरे पहर फिर देखा जायगा। चलिए।

हरिपद के साथ बातें करते-करते दादा ठाकुर के होटल में जिस समय मैं आकर उपस्थित हुआ, उस समय होटल के डाइनिंग रूम में १५ के लगभग आदमी भोजन करने बैठे थे।

अँगरेज़ी मे दो शब्द हैं, एक इंस्टिंक्ट (instinct) और दूसरा प्रीजूडिस (prejudice); किन्तु हमारे यहाँ केवल एक ही शब्द है 'संस्कार'। दोनों एक चीज़ नहीं है, यह समझना कठिन नहीं; किन्तु हमारा यह जाति-भेद, खाने-पीने में छुआ-छूत का परहेज़ 'इस्टिंक्ट' के हिसाब से 'संस्कार' नहीं है, यह दादा ठाकुर के इस होटल में आकर आज पहले-पहल मैंने

जाना। और संस्कार होने पर भी यह कितना तुच्छ संस्कार है, इसके बन्धन से छुटकारा पाना कितना सहज है, यह इस होटल में प्रत्यक्ष देख कर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। हमारे देश में जो यह असंख्य जाति-भेद की शृङ्खला है उसे दोनों पैरों में पहनकर झनझनाते हुए घूमने में कितना गौरव अथवा कल्याण विद्यमान है, इसकी आलोचना इस समय यहाँ पर मैं नहीं करूँगा; किन्तु यह बात बिना किसी संशय के कह सकता हूँ कि जो लोग अपने अपने गाँव में अत्यन्त निरापद भाव से बेखटके बैठकर इस जाति-भेद अथवा खान-पान की छुआछूत को पुरुष-परंपरा से प्राप्त पुरातन संस्कार ठीक किये हुए हैं और इसके शासन-पाश को काटने की कठिनता के सम्बन्ध में जिन्हें लेशमात्र अविश्वास नहीं है, उन्होंने एक भ्रम को पाल रक्खा है। वास्तव में जिस किसी देश में खाने-पीने और छूने का विचार प्रचलित नहीं है, वैसे देश में पैर रखते ही अच्छी तरह देखा जाता है कि यह छप्पन पीढ़ी से चली आई हुई खाने-पीने और छूने के विचार की शृङ्खला न जाने किस तरह रातों-रात खुलकर गिर जाती है।

विलायत जाने से जाति जाती है, धर्म नष्ट होता है, इसका मुख्य कारण यही है कि वहाँ निषिद्ध मांस खाना पड़ता है। जो आदमी अपने देश में भी कभी मांस नहीं खाता उसकी भी जाति जाती है। कारण जाति के इजारेदार समाज के मुखिया लोग कहते हैं, और वे जो कहते हैं वह भी यही एक

बात है—अर्थात् चाहे कोई वहाँ निषिद्ध मांस न भी खाय, पर उसका खाना ही माना जायगा। उनका यह कहना एक-दम झूठ नहीं है। बरमा तो केवल तीन ही चार दिन की राह है, लेकिन देखता हूँ, यहाँ आनेवाले पंद्रह आने बंगाली भले आदमी—जान पड़ता है, इनमें ब्राह्मण ही अधिक होंगे; कारण, इस ज़माने में उन्हीं का लोभ सबसे बढ़ गया है—जहाज़ के सस्ते होटल में पेट भर कर खाते हैं। उस होटल मे मुसलमान और गोआ-निवासी बावर्ची क्या रींध कर खिलाते-पिलाते हैं, यह प्रश्न अप्रिय हो सकता है; किन्तु वे हविष्यान्न पकाकर केले के पत्ते में उनके आगे नहीं परोसते, यह अनुमान करना शायद भाटपाड़े के भट्टाचार्यों के लिए भी कठिन नहीं है। मैं तो स्वयं रंगून गया हूँ! मैंने अपनी आँख से सब लीला देखी है! जो लोग बिलकुल ही मांस इत्यादि नहीं खाते वे कम-से-कम चाय, रोटी, फल वग़ैरह निरामिष आहार तो अवश्य ही करते हैं। अथच उसी एक-दम निषिद्ध मांस से लेकर केले तक सब सामान एक ही जगह एक ही में ढेर करके जहाज़ के कोल्डरूम या ठंडे घर में रक्खा जाता है, और यह किसी से छिपा कर रखने का कोई क़ायदा भी जहाज़ के ऊपर मैंने नहीं देखा।

हाँ, आराम यही है कि बरमा-प्रवासी बंगाली आदि हिन्दुओं के जाति-भ्रष्ट होने का कानून, जान पड़ता है, किसी तरह शास्त्रकारों के सिविल कोड की नज़र बचा गया है। नहीं तो शायद फिर दूसरी एक छोटी-मोटी ब्राह्मण-सभा की आवश्यकता

होती। अस्तु, भले आदमियों की चर्चा आज यहीं पर छोड़ता हूँ।

होटल में जो लोग एक लाइन में एक साथ भोजन करने बैठे थे वे उन आदमियों में नहीं थे जिन्हे साधारणतः भला आदमी 'कहा' जाता है। अर्थात् वे शब्दार्थ के अनुसार भले आदमी भले ही हों, लेकिन कम-से-कम हम पढ़े-लिखे लोग उन्हें भला आदमी नहीं कहते। वे सभी कारीगर हैं, वर्कशाप में काम करते हैं। साढ़े दस बजे की छुट्टी में रोटी खाने आये हैं। शहर के छोर पर एक बहुत बड़ा मैदान है, उसके तीन तरफ नाना आकार और प्रकार के कारखाने हैं और एक ओर इस बस्ती के भीतर यह दादा ठाकुर का होटल है। यह एक विचित्र बस्ती है। एक-एक लाइन मे एक से एक सटी हुई जीर्ण-शीर्ण काठ की छोटी-छोटी कोठरीनुमा झोपड़ियाँ बनी हैं। इनमें चीनी रहते है, बरमी रहते हैं, मदरासी रहते हैं, उड़िया रहते हैं, तैलंग रहते हैं, चटगाँव के मुसलमान और हिन्दू रहते हैं, और हमारी अपनी जाति के अनेक बंगाली भी रहते है। इन्हीं लोगों के निकट पहले-पहल मुझे यह शिक्षा प्राप्त हुई है कि छोटी जाति कहकर घृणा के साथ दूर-दूर करने का बुरा अभ्यास छोड़ना बिलकुल ही कठिन काम नहीं है। जो लोग इस अभ्यास को नहीं छोड़ते वे न छोड़ सकने के कारण न छोड़ते हों, यह बात नहीं है; वे जिस कारण उक्त अभ्यास को नहीं छोड़ते, उसे खोलकर कहने से झगड़ा खड़ा हो जायगा।

ख़ैर, दादा ठाकुर—होटल के मालिक—ने आकर मुझे बड़े आदर से ग्रहण किया। एक छोटी-सी कोठरी दिख कर कहा—जब तक आपका जी चाहे, आप मेरे पास रहकर भोजन करते रहिए, नौकरी लग जाने पर मेरे दाम चुका दीजिएगा।

मैंने कहा—मुझे तो तुम जानते-पहचानते नहीं। अगर महीने भर रह कर और खा-पीकर आपके दाम चुकाये बिना मैं चल दूँ तो?

दादा ठाकुर ने अपना कपाल ठोककर हँसते हुए कहा—यह तो आप अपने साथ न ले जा सकेंगे साहब?

मैंने कहा—जी नहीं, इस पर मुझे तनिक भी लोभ नहीं है।

अब की दादा ठाकुर ने सिर हिलाते हुए बड़ी गम्भीरता के साथ कहा—फिर आप ही देखिए। सब तक़दीर है महाशय, तक़दीर! इसके सिवा और राह नहीं है—यही मैं सबसे कहता हूँ। अपनी तक़दीर सबके साथ है; कोई किसी की तक़दीर नहीं ले जा सकता।

वास्तव में यह उनका केवल ज़बानी जमा-खर्च न था। इस सत्य पर वे स्वयं किस तरह अकपट रूप से विश्वास करते थे; यह हाथोहाथ प्रमाणित करने के लिए बाद को चार-पाँच महीने के बाद एक दिन सवेरे बहुतों की धरोहर रुपये-पैसे, अँगूठी, घड़ी-चेन वग़ैरह सामग्री अपने सामान के साथ बाँध कर दादा ठाकुर अपने देश को चले गये और लोगों के ठोस

कपालों को शून्य होटल के फर्श पर जोर से ठोकने के लिए बरमा में ही छोड़ गये !

ख़ैर, वह चाहे जो हो, दादा ठाकुर की बातचीत उस समय सुनने में कुछ बुरी नहीं लगी और मैं भी उनका एक नया गाहक बनकर एक टुटही कोठरी में दख़ल कर बैठा। रात को एक कमसिन बंगाली महरी मेरी कोठरी में भोजन के लिए आसन बिछाने, प्रबन्ध करने आई। पास ही डाइनिंग रूम में बहुत लोग शायद खा-पी रहे थे; क्योंकि उनकी बातचीत और हँसी का शब्द सुनाई पड़ रहा था।

मैंने पूछा—मुझे भी वहीं भोजन के लिए न बुलाकर यहाँ क्यों ला रही हो ?

उसने कहा—ये सब लोहा काटने-पीटनेवाले हैं बाबू, उनके साथ बिठाकर आपको कैसे खिला सकती हूँ ?

अर्थात् वे लोग वर्कमैन—मजदूर—कुली हैं और मैं भला आदमी हूँ। मैंने हँस कर कहा—मुझे भी यहाँ क्या-क्या काटना-पीटना होगा, इसका तो अभी तक कुछ ठीक-ठाक नहीं हुआ। ख़ैर, आज यहाँ खाने को लिये आती हो तो ले आओ, लेकिन कल से मैं भी उसी जगह खाऊँगा—मेरे खाने का भी वहीं प्रबन्ध कर देना।

नौकरानी ने कहा—आप बाम्हन हैं। आपके वहाँ खाने की जरूरत नहीं।

मैंने कहा—क्यों ?

नौकरानी ने स्वर ज़रा धीमा करके कहा—इनमें सभी बंगाली ज़रूर हैं, लेकिन एक जाति का डोम है।

डोम! देश में इस जाति को कोई छूता तक नहीं। अगर किसी तरह स्पर्श हो जाता है तो स्नान करना (compulsory) अनिवार्य है या नहीं, यह मैं नहीं जानता; किन्तु यह जानता हूँ कि लोग कपड़े उतार कर गंगाजल अवश्य सिर पर छिड़क लेते हैं।

मैंने अत्यन्त विस्मित होकर पूछा—और सब लोग?

नौकरानी ने कहा—और सब अच्छी जाति के हैं। कायथ हैं, कैवर्त हैं, सद्गोप हैं, अहीर हैं, लुहार हैं—

मैंने कहा—ये कोई कुछ नहीं कहते?

नौकरानी ने मुसकिराकर कहा—इस परदेस में सात समुद्र पार आकर कहीं इतनी पविताई करने से काम चलता है बाबू? सब लोग कहते हैं, जब देश मे लौटकर जायँगे तब गगा में स्नान करके पराछित्त (प्रायश्चित्त) कर डालेंगे।

शायद ऐसा हो; लेकिन मैं जानता हूँ, जो दो-चार आदमी कभी-कभी विदेश से देश को लौट कर आते हैं, वे राह-चलते कलकत्ते में उतर कर गंगा में गोता चाहे भले ही लगा लेते हों, लेकिन प्रायश्चित्त तो कभी कोई भी नहीं करता-धरता। विदेश की आब-हवा के प्रभाव से वे शायद प्रायश्चित्त से शुद्धि होने के बारे में विश्वास ही नहीं करते।

मैंने देखा, होटल में केवल दो हुक्के हैं, एक ब्राह्मण के

लिए और दूसरा ब्राह्मण-भिन्न अन्य सभी जातियों के व्यवहार के लिए। भोजन कर चुकने के बाद कैवर्त के हाथ से डोम और डोम के हाथ से हजरत लुहार, सभी बिना किसी संकोच के नारियल लेकर तमाखू पीते हैं। किसी तरह की दुबिधा का लेश भी नहीं देख पड़ता। दो-तीन दिन के बाद लुहार महाशय से आलाप-परिचय करके मैंने पूछा—अच्छा, ऐसा भरभंड करने से तुम लोगों की जाति नहीं जाती?

लुहार ने कहा—जाती क्यों नहीं बाबूजी।

मैंने कहा—फिर?

उसने कहा—उन हज़रत ने पहले अपने को डोम थोड़े बतलाया था, कैवर्त कहकर अपना परिचय दिया था। उसके बाद सब भंडा फूट गया।

मैंने कहा—तब तुम लोगों ने कुछ कहा नहीं?

उसने कहा—कहते क्या साहब। काम तो उसने बेशक बुरा किया, यह तो कहना ही पड़ेगा, लेकिन उसे सबके आगे शरमिन्दा होना पड़ेगा, यह ख्याल करके सबने जान कर भी मामले को दबा दिया, कुछ कहा नहीं।

मैंने पूछा—लेकिन देश मे ऐसा होता तो क्या होता?

वह आदमी जैसे कॉप उठा। बोला—तब भला किसी की जान बच सकती थी?

इसके बाद कुछ देर चुप रहकर आप ही आप कहने लगा—मगर बाबूजी, ब्राह्मण की बात तो मैं नहीं कहता; वे सबके गुरु

हैं। उनकी बात अलाहिदा है। ब्राह्मणों को छोड़कर और सब तो मेरी समझ में समान ही हैं। चाहे कोरी हों, चाहे पासी, चाहे नमःशूद्र और चाहे हाड़ीडोम, जाति किसी के मत्थे पर लिखी नहीं रहती। सभी को भगवान् ने सिरजा है, सभी एक हैं, सभी पेट पालने के लिए परदेश में आकर लोहा पीट रहे हैं! और सच तो यह है बाबूजी कि हरि मोडल डोम है तो क्या हुआ, न शराब छूता है, न गाँजा-चरस पीता है। आचार-व्यवहार देखकर किसकी ताकत है कि कहे, वह भले आदमी का लड़का नहीं, डोम है। और वह लछमन भले घर का, कायथ का, लड़का है तो क्या हुआ, उसके आचरण देखिए! दो-दो दफे जेल जाते-जाते बच चुका है। हम सब लोग न होते तो अब तक उसे जेल जाकर मेहतर के हाथ का खाना खाना पड़ता!

लछमन के बारे में मुझे रत्ती भर भी कौतूहल न था, और न हरि मोडल ने अपनी डोम की जाति छिपा कर दूसरी जाति बनकर कितना बड़ा अन्याय किया है, इसकी मीमांसा करने की ही प्रवृत्ति हुई। मैं केवल यही सोचने लगा कि देश में भले आदमी तक अपने जासूस छोड़कर जन्म के पड़ोसी के छिद्र खोजकर उसके बाप की तेरही का ब्रह्मभोज भरभंड करके बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट होते हैं, उसी देश के अशिक्षित 'छोटी जाति' के लोग होकर भी इन लोगों ने एक अपरिचित बंगाली का इतना बड़ा अपराध माफ कर दिया! फिर केवल इतना

ही नहीं, पीछे इस परदेश में उसे लज्जित और हीन होकर न रहना पड़े, इस आशङ्का से इन्होंने उस प्रसङ्ग ही को दबा दिया, फिर नहीं उठाया ! यह असम्भव बात किस तरह से सम्भव हो गई ! विदेशी कोई इसके महत्त्व को बेशक नहीं समझेगा; किन्तु हम स्वदेशी तो यह समझ सकते हैं कि हृदय की कितनी प्रशस्तता और मन की कितनी बड़ी उदारता का होना इसके लिए चाहिए। इसमें मुझे रत्ती भर भी सन्देह नहीं कि यह केवल उनके देश छोड़कर विदेश आने का फल है। ख़याल हुआ कि इस समय हमारे देश के लिए इसी शिक्षा की सबसे बढ़कर आवश्यकता है। यह जो अपने गाँव के भीतर बैठकर ही सारा जीवन बिता देना है, मनुष्य को सभी बातों मे छोटा कर देनेवाला इतना बड़ा शत्रु—शायद अन्य किसी जाति का और नहीं है।

अस्तु। बहुत दिन तक मैं इन लोगों के बीच में रहा। किन्तु मैं कुछ पढ़ा-लिखा हूँ, यह ख़बर जब तक इन लोगों को नहीं मिली तभी तक मुझे इन लोगों के साथ घनिष्ठ भाव से मिलने-जुलने का सुयोग प्राप्त हो सका, इनके सुख-दुख का हिस्सेदार मैं बन सका। उसके बाद जिस घड़ी ये लोग यह जान गये कि मै 'भला आदमी' हूँ, मैं अँगरेज़ी जानता हूँ, उसी घड़ी इन लोगों ने मुझे ग़ैर समझ लिया। यह सच है कि अँगरेज़ी-पढ़े शिक्षित भले आदमियों के पास ये लोग आपत्ति-विपत्ति के समय आते हैं, सलाह-मशविरा भी लेते हैं; लेकिन

यह भी सच है कि भले आदमियों पर विश्वास भी नहीं करते और उन्हें अपना आदमी भी नहीं समझते।

ये लोग अभी तक देश के इस कुसंस्कार को नहीं दूर कर सके कि मैं इन्हें छोटी जाति समझ कर मन ही मन घृणा करता हूँ, पीठ-पीछे उपहास करता हूँ। मैं ऐसा नहीं करता, इस पर इनको विश्वास ही नहीं होता। केवल इसी कारण मेरे कितने अच्छे इरादे इन लोगों के बीच विफल हो गये, इसकी कोई हद नहीं। किन्तु यह चर्चा भी आज न करूँगा।

मैंने देखा, इधर बंगाली औरतों की संख्या भी कुछ कम नहीं है। उनके कुल का परिचय न प्रकाशित करना ही अच्छा है; किन्तु आज वे और दूसरे रूप में परिवर्तित होकर एक-दम खालिस गृहस्थ के घर की बहू-बेटी बन गई हैं। मर्दों के मन में शायद आज भी पुरानी 'जाति' की कुछ-कुछ याद बनी हुई है, किन्तु औरतें न तो देश में आती ही हैं, और न देश के साथ कुछ संसर्ग ही रखती हैं। उनके लड़के-लड़कियों से पूछो तो वे कहते हैं—हम बंगाली हैं; अर्थात् मुसलमान, क्रिश्चयन या बरमी नहीं, बंगाली हिन्दू हैं। इनमें आपस में लड़की-लड़के के ब्याह मजे में जारी हैं, केवल बंगाली होना ही इस सम्बन्ध के लिए यथेष्ट है। चटगाँव की तरफ का बंगाली ब्राह्मण आकर लड़के को लड़की का हाथ पकड़ा दे, बस।

स्त्री के विधवा होने पर विधवा-विवाह की रीति नहीं है। जान पड़ता है, पुरोहित ब्याह के मन्त्र पढ़ने को राजी नहीं

होते, इसी से विधवा-विवाह नहीं होता। किन्तु यहाँ की बंगाली स्त्रियाँ विधवा रहना भी पसन्द नहीं करतीं। दूसरे किसी के घर बैठकर नई गृहस्थी कायम कर लेती हैं। लड़के-वाले भी उनके होते हैं। वे भी कहते हैं—हम बंगाली हैं। फिर उनके ब्याह में वही पुरोहित आकर वैदिक मन्त्र पढ़कर ब्याह करा जाते हैं। लेकिन अब की उन्हे तिल भर भी आपत्ति नहीं होती। स्वामी के अत्यन्त अधिक सताने पर—दुःख-यन्त्रणा देने पर—ये अन्य पुरुष का आश्रय अवश्य ग्रहण करती हैं, किन्तु वह एक अत्यन्त लज्जा की बात समझी जाती है। इसी कारण ऐसा करने के लिए दु.ख-कष्ट का परिमाण भी अत्यन्त अधिक होना जरूरी है। अथच ये लोग यथार्थ ही हिन्दू हैं और दुर्गा-पूजा से लेकर मामूली देवतों की पूजा और व्रत तक इनसे नहीं छूटने पाते।

---

## सातवाँ परिच्छेद

रास्ते मे जिनके सुख-दुःख का हिस्सेदार होते-होते मैं इस विदेश में आकर उपस्थित हुआ, घटनाचक्र से वे रह गये शहर के एक सिरे पर और मुझे आश्रय मिला शहर के दूसरे छोर पर। अतएव पन्द्रह-सोलह दिन तक मैं उधर जा नहीं सका। इसके सिवा दिन भर नौकरी की उम्मेदवारी में घूमकर इतना थक जाता था कि शाम के पहले डेरे में लौटकर फिर इतनी

शक्ति नहीं रहती थी कि और कहीं जाऊँ। क्रमशः जितने ही दिन बीतने लगे उतनी ही मेरे मन में यह धारणा बद्धमूल होने लगी कि यहाँ विदेश में आकर भी नौकरी जुटाना मेरे लिए ठीक अपने देश की तरह ही कठिन है।

अभया का ख़याल आया। जिस आदमी पर भरोसा करके वह स्वामी का पता लगाने की ग़रज़ से गृहत्याग कर आई है, स्वामी का पता अगर न लगा तो उस बेचारी की क्या दशा होगी! घर छोड़कर बाहर निकलने की राह यथेष्ट खुली रहने पर भी लौटने की राह भी ठीक वैसी ही चौड़ी और खुली मिलेगी, बंगाल की आबहवा में इतना बड़ा होने के कारण, इतनी बड़ी आशा को मन में कल्पना करने का भी साहस मुझमें नहीं है।

यह भी अनुमान करना कठिन नहीं कि ये दोनों आदमी अधिक दिन तक अपने निर्वाह के लायक़ धन लेकर घर से नहीं निकले होंगे। बाकी रही केवल वही राह, जो विदेश में आनेवाले पन्द्रह आने बंगालियों का एक-मात्र सहारा है; अर्थात् मासिक वेतन पर दूसरे की नौकरी करके मरणपर्यन्त किसी तरह हाड़-मांस को एकत्र बनाये रखना। रोहिणी बाबू के लिए भी इसके सिवा दूसरी राह नहीं थी, यह कहना ही व्यर्थ है। किन्तु इस रंगून के बाज़ार में केवल अपना पेट पालने भर के लिए काफ़ी नौकरी प्राप्त करने में ही मेरा जब यह हाल हो रहा है, तब एक स्त्री का बोझ कन्धे पर लादकर उस

बेचारे भोले-भाले, सीधे-सादे अभया के रोहिणी दादा की क्या दशा होगी, यह सोच कर मैं तक डर उठा।

मैंने निश्चय किया कि कल चाहे जिस तरह हो, एक बार जाकर अवश्य इन दोनों प्राणियों की खबर लूँगा।

दूसरे दिन तीसरे पहर दो कोस के लगभग रास्ता पैदल चलकर अभया के डेरे पर जाकर उपस्थित हुआ। देखा, बाहर के बरामदे में एक छोटे से मोढ़े के ऊपर रोहिणी दादा विराजमान हैं। उनका मुखमण्डल नव-जलधर-मंडित आषाढस्य प्रथम दिवस के समान गुरु गंभीर भाव धारण किये हुए है।

मुझे देखकर उन्होंने कहा—आइए श्रीकान्त बाबू! अच्छे तो हैं?

मैंने कहा—जी हाँ।

रोहिणी दादा ने कहा—जाइए, भीतर जाकर बैठिए।

मैंने डरते-डरते पूछा—आप लोगों की खबर तो सब अच्छी है!

रोहिणी दादा बोले—भीतर जाइए न। वह घर में ही हैं।

मैंने कहा—हाँ, सो जाता हूँ—आप भी आइए।

रोहिणी दादा ने उत्तर दिया—ना, मैं यहीं ज़रा विश्राम करता हूँ। मेहनत करते-करते तो एक तरह से जान जाने की नौबत आगई है, घड़ी-दो घड़ी ज़रा पैर फैला कर आराम तो कर लूँ।

परिश्रम की अधिकता से वे मृतकल्प हो उठे हैं, यह उनके

चेहरे से प्रकट न होने पर भी मैं मन ही मन कुछ उद्विग्न हो उठा। रोहिणी दादा के भीतर भी इतनी अधिक गंभीरता इतने दिन छिपी हुई थी, यह अपनी ऑख से आज देखे बिना मेरे लिए तो इस पर विश्वास करना ही कठिन था।

लेकिन मामला क्या है ? मैं ख़ुद तो राह-राह नौकरी की तलाश में घूमकर ऊब गया हूँ। मेरे इन रोहिणी दादा का भी क्या—

इसी बीच मे अभया ने किवाड़ों के बीच से हँसता हुआ मुख वाहर निकाल कर चुपचाप इशारे से मुझे भीतर बुलाया।

मैंने दुविधा से भरे भाव से कहा—चलो न रोहिणी दादा, भीतर चलकर तनिक गपशप लड़ावें।

रोहिणी दादा ने जवाव दिया—गपशप !, अब तो मौत आजाय तो मेरी ज़िन्दगी हो जाय श्रीकान्त बाबू, आप यह जानते हैं।

मैं नहीं जानता था, यह स्वीकार करना ही पड़ा।

उन्होंने इसके प्रत्युत्तर में केवल प्रचण्ड निःश्वास छोड़कर कहा—दो दिन बाद ही आप जान जायँगे।

अभया के चुपचाप वुलाने पर बाहर खड़े-खड़े और अधिक बात न बढ़ाकर मैंने भीतर प्रवेश किया। भीतर रसोईघर के अलावा सोने की दो कोठरियाँ थीं। सामने की कोठरी ही बड़ी थी, इसी में रोहिणी बाबू सोते एक किनारे खाट पर उनका बिछौना बिछा हुआ था। प्रवेश करते ही देख पड़ा,

फ़र्श के ऊपर आसन बिछा हुआ है, एक रकाबी में पूरी, तरकारी, थोड़ा-सा हलवा और एक गिलास में पानी रक्खा है। यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि किसी ज्योतिष की गणना से मेरी अवाई जानकर यह तैयारी पहले ही से नहीं कर रक्खी गई थी। अतएव दम भर में ही मुझे स्पष्ट मालूम हो गया कि इन दोनों में कुछ आपस मे कहा-सुनी होगई है। इसी से रोहिणी दादा का मुख अन्धकार हो रहा है—इसी से वह मौत माँग रहे हैं।

चुपचाप जाकर खाट पर बैठ गया। अभया ने थोड़ी ही दूर पर खड़े होकर पूछा—अच्छे तो हैं? इतने दिन बाद ग़रीबों का खयाल आया, यह भी ग़नीमत है।

मैंने वह भोजन का आयोजन दिखाकर कहा—मेरी बात पीछे होगी; किन्तु यह क्या है?

अभया हँस दी। ज़रा चुप रहकर उसने कहा—वह कुछ नहीं है; आप कैसे हैं, बतलाइए।

कैसा हूँ, सो तो ख़ुद ही नहीं जानता, दूसरे को कैसे बतलाऊँ?

तनिक सोचकर कहा—जब तक कोई नौकरी नहीं मिल जाती, तब तक इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। रोहिणी बाबू जो कह रहे थे—

मेरे मुँह की बात मुँह में ही रह गई। रोहिणी दादा अपनी फटी स्लीपर से फटर-फटर का एक अस्वाभाविक शब्द

करते हुए भीतर पधारे और किसी की ओर देखे बिना ही जल का गिलास उठाकर एक साँस में आधा और बाक़ी दो-तीन बार मे पानी पीकर शून्य गिलास काठ के फर्श पर पटक कर यह कहते हुए फिर वाहर चल दिये कि होगा, खाली पानी पीकर ही पेट भर लूँ! मेरा अपना सगा यहाँ और कौन बैठा है, जो भूख लगते ही खाने को बनाकर रख देगा।

मैंने अवाक् होकर अभया के मुख की ओर देखा, उसका मुखमण्डल पल भर के लिए लाल हो उठा; किन्तु पल भर में ही उसने अपने को सँभाल लिया और हँसकर कहा—भूख लगने पर आदमी को जल के गिलास की अपेक्षा भोजन की थाली ही पहले देख पड़ती है।

रोहिणी ने इस बात को जैसे सुना ही नहीं, चले गये। किन्तु आधे मिनट के भीतर ही लौट आकर किवाड़ों के सामने खड़े होकर मुझे सम्बोधन करके उन्होंने कहा—दिन भर आफिस में मरने-खपने के बाद भूख के मारे उस समय सिर घूम रहा था श्रीकान्त बाबू, इसी कारण आपसे अच्छी तरह बातचीत नहीं कर सका, कुछ ख़याल न करिएगा।

मैंने कहा—नहीं।

वे फिर कहने लगे—आप जहाँ रहते हैं, वहाँ मेरे रहने का भी कुछ वंदोबस्त कर दे सकते हैं?

उनके मुँह बनाने का ढंग देखकर मैं हँस पड़ा। मैंने कहा—लेकिन वहाँ पूरी-तरकारी और मोहनभोग का ढंग नहीं है।

रोहिणी बाबू ने कहा—इसकी दरकार क्या है! भूख लगने पर अगर थोड़े से गुड़ के साथ भी कोई पानी पीने को दे दे, तो वही अमृत है। यहाँ वही कौन देता है?

मैंने जिज्ञासु मुख से अभया की ओर देखा। उसने धीरे धीरे कहा—सिर में दर्द था, इसलिए बेवक्त लेट रही थी, यही कारण था कि आज भोजन बनाने में कुछ देर हो गई श्रीकान्त बाबू!

मैंने आश्चर्य के साथ कहा—यही अपराध है?

अभया ने वैसे ही शान्त-भाव से कहा—यह क्या कुछ मामूली अपराध है श्रीकान्त बाबू?

मैंने कहा—मामूली नहीं तो और क्या है?

अभया ने कहा—आपकी समझ में मामूली हो सकता है; लेकिन जो अपने गल-ग्रह को खाने-पीने को देते हैं, वे क्यों इसे माफ करेंगे? मेरे सिर में दर्द होने से उनका काम कैसे चल सकता है?

रोहणी बाबू एक-दम फुफकार कर गरज उठे—तुम गल-ग्रह हो, यह बात मैंने अपने मुँह से भला कभी कही है?

अभया ने कहा—कहोगे क्यों, लेकिन हज़ार तरह से यही भाव दिखा तो रहे हो!

रोहिणी दादा ने कहा—दिखा रहा हूँ! ओह, तुम्हारे मन मे ऐसी पेंच की बातें भरी पड़ी हैं! तुमने मुझसे कहा था कि तुम्हारे सिर में दर्द है?

अभया ने कहा—तुमसे कहने से क्या लाभ ? तुम क्या इस पर विश्वास करते ?

रोहिणी मेरी ओर फिर कर उच्च स्वर से कह उठे—सुनिए श्रीकान्त बाबू, जरा इनकी बातें सुन रखिए ! इनके लिए मैंने देश छोड़ दिया; घर लौटने का रास्ता भी बन्द है—और ये ऐसी बातें कर रही हैं ! ओह—

अभया ने भी अब की ग़ुस्सा होकर जवाब दिया—मेरा जो होना होगा, सो होगा, तुम्हारा जब जी चाहे, देश को लौट जाओ। मेरे लिए तुम इतना कष्ट क्यों सहोगे ? तुम्हारी मैं कौन हूँ ? इस तरह ताने देने की अपेक्षा—

अभया की बात पूरी भी न होने पाई, रोहिणी बीच ही में प्रायः चिल्ला उठे—सुनिए श्रीकान्त बाबू, दो रोटियाँ सेंक देने के लिए—ये बातें आप सुन रखिए ! अच्छा, आज से अगर तुम मेरे लिए कुछ करने को रसोईघर में पैर रक्खो तो तुम्हें बहुत बड़ी......मैं बल्कि होटल में—

कहते-कहते शायद रुलाई के मारे ही बेचारे का गला रुँध आया। वे धोती का खूँट मुँह से लगाकर तेज़ी के साथ बाहर चले गये।

अभया ने अपना विवर्ण मुख नीचे झुका लिया। क्या जाने, आँसू छिपाने के लिए या नहीं। किन्तु मैं तो एक-दम काठ हो गया—सन्नाटे मे आगया।

कुछ दिन से इन दोनों की पटती नहीं, कलह चल रही है, यह

उसे बार-बार अपनी आँख से ही देख चुका हूँ। किन्तु उसके बाद? अब वह अपने स्वामी का पता लगाना चाहती है कि नहीं, अथवा अन्य किसी विपत्ति को अवश्यंभावी जानकर उसने मेरा वर्तमान ठिकाना पूछ लिया है, इसका कुछ आभास तक मैं उसकी इस लिखावट को टटोलकर निकाल न पाया। बातचीत से अनुमान होता है कि रोहिणी ने किसी दफ्तर में नौकरी जुटा ली है। किस तरह जुटाई, यह मैं नहीं जानता, मगर हाँ, यह जान गया कि खाने-पीने की दुश्चिन्ता फिलहाल मेरी तरह इन्हें नहीं है, और खाने के लिए पूरी-हलवा भी मिलता है। तथापि अभया ने किस तरह की विपत्ति की संभावना मुझे सुना रक्खी और इस सुनाने की सार्थकता ही क्या है, यह अभया ही जाने।

उस दूकान से बाहर निकलकर रास्ते भर केवल इन्हीं लोगों के बारे में सोचते-सोचते मैं अपने डेरे में आकर पहुँचा। कुछ भी ठीक न कर सका। केवल यही मेरे मन में स्थिर हो गया कि अभया का स्वामी चाहे जो हो, और चाहे जहाँ चाहे जिस तरह रहता हो, स्त्री की विशेष अनुमति के बिना उसे खोज निकालने का कौतूहल मुझे रोक ही रखना होगा।

दूसरे दिन से फिर अपनी नौकरी की खोज में लग गया; किन्तु हजारों चिन्ताओं में भी अभया की चिन्ता को अपने मन के भीतर से किसी तरह दूर नहीं कर सका।

किन्तु चिन्ता चाहे कितनी ही क्यों न करूँ, दिन पर दिन

एक ही तरह से बीतने लगे। इधर अदृष्टवादी दादा ठाकुर का प्रफुल्ल प्रसन्न मुख भी मेघाच्छन्न—अन्धकार—हो उठने लगा। रोटी के साथ तरकारी पहले परिमाण में और फिर संख्या में कम होने लगी; किन्तु नौकरी महारानी की मुझ पर लेश भर भी कृपादृष्टि नहीं हुई। उन्होंने जिस दृष्टि से पहले दिन मुझे देखा था, ठीक उसी दृष्टि से बराबर देखती रहीं, मालूम नहीं, किसके ऊपर क्रमशः उत्कण्ठित और विरक्त हो उठने लगा। किन्तु उस समय तो मैं यह जानता न था कि नौकरी पाने का यथेष्ट प्रयोजन हुए बिना यह देवी दर्शन नहीं देतीं।

किन्तु यह ज्ञान मुझे एक दिन रास्ते मे रोहिणी बाबू को एकाएक देखकर प्राप्त हुआ। वह बाजार में सड़क के किनारे तरकारी वग़ैरह ख़रीद रहे थे। मैं थोड़ी दूर पर चुपचाप खड़े होकर देखने लगा। यद्यपि उनका कुर्ता, धोती और जूता एक-दम फटा-पुराना हो गया था—जीर्णता की चरम सीमा को पहुँच गया था—कड़ी धूप से बचने के लिए एक छाता तक नहीं था, किन्तु खाने-पीने का सामान वह एक बड़े आदमी की तरह ही खरीद रहे थे। अच्छी बढ़िया चीज़ खोजने और छाँटने पर उनका बेहद ध्यान था। चाहे जितना झंझट हो, चाहे जितना परिश्रम हो, अच्छी चीज़ हथियाने की उनकी हार्दिक चेष्टा देख पड़ती थी।

पल भर मे ही सब मामला मुझे स्पष्ट मालूम पड़ गया। यह सब ख़रीदने के भीतर उनके व्यग्र, व्याकुल स्नेह का केन्द्र

तो मैंने आँखों ही से देख लिया; किन्तु इस अनबन का निगूढ़ कारण एकदम दृष्टि की आड़ में रहने पर भी यह समझने में मुझे कुछ भी देर नहीं लगी कि वह कारण भूख और भोजन बनाने मे देर से बहुत दूर है। इनसे उसका कुछ सम्बन्ध नहीं। तो फिर क्या स्वामी को खोजने आने की बात भी—

उठकर खड़ा होगया। यह नीरवता या सन्नाटा तोड़ने में मुझे स्वयं एक तरह का संकोच मालूम पड़ने लगा। ज़रा इधर-उधर करके अन्त को मैंने कहा—मुझे बहुत दूर जाना है; अच्छा तो अब चलता हूँ

अभया ने सिर उठाकर देखा, कहा—अब फिर कब आइएगा ?

मैंने कहा—बहुत दूर पड़ता है, इसी से—

"अच्छा तो ज़रा ठहर जाइए" कहकर अभया चली गई। पाँच-छः मिनट के बाद लौट आकर मेरे हाथ में एक काग़ज़ का टुकड़ा देकर उसने कहा—जिस लिए मैं यहाँ आई हूँ, वह सब मैंने इसमें संक्षेप में लिख दिया है। इसे पढ़ने के बाद जो अच्छा समझ पड़े वह कीजिएगा। मै आपसे इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहती।

यह कहकर उसने आज गले में आँचल डालकर प्रणाम किया। फिर उठकर खड़े होते ही उसने पूछा—आपका पता क्या है ?

प्रश्न का उत्तर देकर वह छोटा-सा काग़ज़ मुट्ठी मे छिपाये

मैं धीरे-धीरे घर के बाहर निकल आया। बरामदे का वह मोढ़ा इस समय खाली पड़ा था—रोहिणी दादा आस-पास कहीं न देख पड़े।

डेरे तक उस चिट्ठी को पढ़ने का कौतूहल मैं दबा न सका। थोड़ी दूर पर राह के पास ही एक छोटी-सी चाय की दूकान थी। उसी में घुस गया और एक प्याली चाय की लेकर लैम्प की रोशनी में उस काग़ज़ को पढ़ना शुरू कर दिया। पेंसिल की लिखावट थी; किन्तु अक्षर ठीक मर्दों के-से थे! पहले ही अभया ने अपने स्वामी का नाम और उनका पहले का ठिकाना देकर नीचे लिखा है—"आज की लीला देखकर आप जो समझ गये, सो मैं जानती हूं, और विपत्ति के समय मैं आपका कितना भरोसा रखती हूँ, यह भी आप जानते हैं। इसी से आपका ठिकाना मैंने पूछ लिया है।"

अभया के इस लेख को मैंने बार-बार पढ़ा; किन्तु इन कई एक बातों के सिवा इनसे अधिक और एक बात का भी अनुमान न कर सका। आज दोनों के परस्पर के व्यवहार को देखकर कोई भी बाहर का अदमी क्या सोचेगा, यह अभया के समान तीक्ष्ण बुद्धिवाली स्त्री के लिए अनुमान करना कुछ भी कठिन न था। तथापि उसने उसके सत्य या मिथ्या होने के सम्बन्ध में तनिक इशारा भी नहीं किया। उसके स्वामी का नाम और पहले का पता तो मैं पहले भी उसके मुख से सुन चुका था; और विपत्ति के समय मुझ पर भरोसा करते भी

कौन है, किसके लिए इतनी छानबीन करके सब सामान वे खरीद रहे हैं, यह जैसे सूर्य के प्रकाश में स्पष्ट मुझे दिखाई दे गया। क्यों यह और ऐसा अच्छा सामान लेकर उन्हें अवश्य ही घर पहुँचाना चाहिए, क्यों ऐसा सामान खरीदने के लिए उन्हें नौकरी जुटानी ही पड़ी, इस समस्या की मीमांसा करने में मिनट भर की भी देर नहीं लगी। आज मैं समझा कि रोहिणी ने इस परदेश मे क्यों अपने निर्वाह का रास्ता खोज निकाला है और मै क्यों असफल रहा।

यह जो दुबला-पतला आदमी रंगून की सड़क पर एक ढेर भर सामान की मोट हाथ में लटकाये सैकड़ों जगह से फटे-पुराने मैले वस्त्र पहने खुश-खुश घर को चला जा रहा है, उसके परितृप्त मुख की ओर आड़ में खड़े-खड़े मैंने देखा। अपनी ओर दृष्टिपात करने की भी जैसे उसे फ़ुरसत नहीं है। जिस चीज़ से उसका हृदय परिपूर्ण है, वह ऐसी है कि उसके आगे जैसे धोती-कपड़े वग़ैरह का दैन्य बिलकुल ही तुच्छ हो गया है! और मैं? वस्त्रों के साधारण रूप से मैले होने के कारण जैसे पग-पग पर संकोच के मारे सिमटा जा रहा हूँ, राह में जानेवाले अत्यन्त अपरिचित आदमी के आगे पड़कर भी उसकी दृष्टि पडने से जैसे लज्जा से मर जाता हूँ।

रोहिणी बाबू चले गये। मैंने उनको पुकारा नही। देखते ही देखते वे लोगों की भीड़ में अदृश्य हो गये। नहीं जानता क्यों, मेरी आँखों मे आँसू भर आये। चादर के खूँट से आँसू

पोंछते हुए सड़क के किनारे किनारे चल कर मैं डेरे को लौटा, और अपने मन में बार बार कहने लगा—(इस प्रेम से बढ़कर इतनी बड़ी शक्ति या इतना बड़ा शिक्षा देनेवाला संसार में और कोई नहीं है। यह जिसे न कर सकता है, ऐसा दुष्कर कार्य भी शायद दुनिया में कोई न होगा।)

तथापि बहुत युगों का संचित अन्ध-संस्कार मेरे कान में ... कहने लगा—अच्छा नहीं है, यह अच्छा नहीं है! यह पवित्र नहीं है—अन्त तक इसका परिणाम अच्छा न होगा!

डेरे में आकर बड़े लिफाफे में एक पत्र मिला। खोलकर देखा नौकरी की दरखास्त मञ्जूर हो गई है। सागवान की लकड़ी के बहुत बड़े सौदागर के यहाँ की नौकरी है। अर्ज़ियाँ अनेक आई थीं, उनमें इसी ग़रीब को उन्होंने छाँटा है, इसी पर प्रसन्न हुए हैं। भगवान् उनका भला करे।

नौकरी से पुराना परिचय न था। अतएव उसके मिलने पर भी यह सन्देह बना रहा कि वह कायम रहेगी या नहीं। मेरे जो अफ़सर हुए, वह ख़ालिस साहब होने पर भी बँगला अच्छी तरह जानते थे। कारण, कलकत्ते के दफ़्र से बदलकर वह बरमा भेजे गये थे।

दो सप्ताह काम करने के बाद साहब ने मुझे बुलवा कर कहा—श्रीकान्त बाबू, तुम इस टेबिल पर आकर काम करो, तनख्वाह भी अब से लगभग ढाईगुनी पाओगे।

प्रकाश्य रूप से और मन में भी साहब को लाखों आशी-

वाद देकर उस टूटे-फूटे टेबिल को छोड़कर एक-दम सब्ज़ बनात से मढ़े हुए बढ़िया टेबिल पर आकर मैंने फौरन दखल कर लिया। आदमी के सौभाग्य का जब उदय होता है तब यों ही होता है। हमारे होटल के दादा ठाकुर का कहना कुछ बिलकुल झूठ नहीं है।

भाड़े की गाड़ी पर चढ़कर अभया को यह ख़ुशख़बरी सुनाने गया। रोहिणी दादा वैसे ही दफ़्र से लौटकर जलपान करने बैठे थे। किन्तु आज मैंने केवल पानी से उन्हें क्षुधा शान्त करते नहीं देखा। बल्कि जिन पदार्थों से वह पेट भर रहे थे, उनसे पेट भरने मे संसार मे और चाहे जिसे आपत्ति हो, मुझे तो बिलकुल नहीं थी। अतएव अभया के जलपान के प्रस्ताव पर मैंने असम्मति प्रकट नहीं की, यह कहने की आवश्यकता नहीं।

खाना-पीना समाप्त करके ही रोहिणी दादा कपड़े पहनने लगे। अभया ने कुण्ठित कण्ठ से कहा—तुमसे मैं रोज कहती हूँ रोहिणी दादा, इस कमज़ोर शरीर को लेकर तुम इतना परिश्रम न करो। क्या तुम मेरी बात किसी तरह न सुनोगे? अच्छा, अधिक रुपये लेकर हम लोग क्या करेंगे? गुज़र तो इतने ही में बड़े मज़े से हो रही है।

रोहिणी दादा की आँखों से जैसे स्नेह का फ़ुहारा छूटने लगा। उसके बाद तनिक हँसकर उन्होंने कहा—अच्छा, अच्छा, देखा जायगा। रोटी करने के लिए एक महराज तक

तो रखने नहीं पाता। दोनों वक्त सारा काम करने और आग के आगे बैठने से तुम्हारा शरीर जैसे सूखा जा रहा है।—

यह कहकर मुँह में पान रखकर रोहिणी बाबू तेज़ी से चले गये।

अभया एक छोटी-सी साँस दबा गई और ज़बरदस्ती ज़रा हँसकर बोली—इनकी ज़बरदस्ती तो देखिए श्रीकान्त बाबू! दिन भर हाड़-तोड़ मेहनत करने के बाद घर आकर कहाँ कुछ विश्राम करना चाहिए, कहाँ फिर रात के ६ बजे तक लड़कों को पढ़ाने चले गये। मैं इतना कहती हूँ, लेकिन किसी तरह सुनते ही नहीं। हम दो ही तो आदमी खानेवाले हैं। दो आदमियों की रसोई बनाने के लिए रसोइया रखने की क्या ज़रूरत है, आप ही बतलाइए? इनकी सभी बातें जैसे ज्यादती की होती हैं, क्यों न?

इतना कहकर वह दूसरी ओर देखने लगी।

मैं चुप रहकर कुछ मुसकिरा दिया। ना या हाँ कुछ उत्तर देने की शक्ति मुझमे न थी—मेरे पुरुषों में भी थी या नहीं, सन्देह है।

अभया जाकर एक पत्र ले आई और वह उसने मेरे हाथ में रख दिया। मैंने पढ़कर देखा, कई दिन हुए, बरमा-रेल-कंपनी के दफ़्र से यह आया है। कंपनी के बड़े साहब ने दुःख के साथ सूचित किया है कि अभया का स्वामी लगभग दो साल पहले किसी भारी अपराध के कारण कंपनी की नौकरी से

छुटकारा पाकर कहीं चला गया है। उसका पता उन्हे नहीं मालूम।

हम दोनों बहुत देर तक स्तब्ध होकर चुपके से बैठे रहे। अन्त को अभया ही पहले बोली—अब आप क्या उपदेश देते हैं?

मैंने धीरे-धीरे कहा—मैं क्या उपदेश दूँ?

अभया ने सिर हिलाकर कहा—ना, यह न होगा। इस अवस्था में आप ही को मेरा कर्तव्य ठीक कर देना होगा। यह चिट्ठी जब से मुझे मिली है तभी से मैं आपके आने की प्रतीक्षा कर रही हूँ।

अपने मन में मैंने कहा—खूब! यह तो अच्छी कही। मेरी सलाह लेकर क्या घर से तुम आई थीं, जो अब मेरे उपदेश की राह देख रही हो!

बहुत देर चुप रहने के बाद मैंने पूछा—घर लौट जाने के सम्बन्ध में आपकी राय क्या है?

अभया ने कहा—कुछ भी नहीं। आप कहिए तो जा सकती हूँ; लेकिन मेरा अपना या अभिभावक तो कोई वहाँ है नहीं।

मैंने कहा—रोहिणी बाबू क्या कहते है।

अभया ने कहा—वे कहते हैं, कम से कम दस बरस तो उधर मुँह नहीं करेंगे।

फिर बहुत देर तक चुप रह कर मैंने कहा—वे क्या बराबर आपका बोझ उठा सकेंगे?

अभया ने कहा—पराये मन की वात मैं कैसे जान सकती हूँ, आप ही बतलाइए ? इसके सिवा वह ख़ुद ही कैसे जान सकते हैं ?

इतना कहकर क्षण भर चुप रहने के वाद फिर आप ही आप कहने लगी—एक वात और है। मेरे लिए वे विलकुल ही ज़िम्मेदार नहीं हैं। चाहे दोष कहिए चाहे भूल, सब अकेले मेरी ही है।

इतने मे गाड़ीवान ने वाहर से चिल्लाकर कहा—वावू साहव, और कितनी देर है ?

मेरी जैसे जान बच गई। इस अवस्था-संकट से, इस असमञ्जस से परित्राण पाने का कोई उपाय मुझे ढूँढ़े नहीं मिलता था। मेरा मन यह विश्वास अवश्य ही नहीं करना चाहता था कि अभया सचमुच अपार चिन्ता में ग़ोते खा रही है, उसे अपना कर्तव्य नहीं सूझ पड़ रहा है; किन्तु स्त्री-जाति की इतनी तरह की उलटी-पुलटी अवस्थायें मैंने अपनी आँखों से देख रक्खी थीं कि वाहर से इन दोनों आँखों की दृष्टि पर विश्वास करना कितना वड़ा अन्याय है, यह भी निस्संशय रूप से समझ रहा था।

गाड़ीवान के फिर पुकारने पर फिर क्षण भर की देर न करके मैं फौरन उठ खड़ा हुआ और वोला—मै शीघ्र ही और एक दिन आऊँगा।

इतना कह कर ही मैं तेज़ी से वाहर निकल आया।

अभया ने कुछ भी नहीं कहा; निश्चल मूर्ति की तरह पृथ्वी में नज़र गड़ाये बैठी रही।

गाड़ी पर सवार होते ही गाड़ीवान ने घोड़ों को हाँक दिया! किन्तु कोई दस हाथ से अधिक न गया हूँगा कि ख़याल आया, छड़ी वहीं भूल आया हूँ। चटपट गाड़ी को रोककर घर के भीतर घुसते ही मैंने देखा, अभया ठीक दरवाज़े के सामने ही पट पड़ी हुई बाण से बिंधी हुई हरिणी की तरह अव्यक्त यन्त्रणा से तड़प-तड़प कर जैसे प्राण छोड़ रही है।

क्या कहकर उसे सान्त्वना दूँ, यह मुझे सूझ नहीं पड़ा। केवल वज्राहत की तरह स्तब्ध भाव से कुछ देर खड़े रहकर फिर वैसे ही चुपचाप लौट गया। अभया जैसे रो रही थी वैसे ही रोती रही। एक बार उसने जान भी न पाया कि उसकी इस अपरिसीम, आन्तरिक वेदना का एक निर्वाक् साक्षी इस जगत् में विद्यमान रहा।

---

## आठवाँ परिच्छेद

राजलक्ष्मी के अनुरोध को मैं भूला नहीं। जब से रंगून आया तभी से मेरे मन में पटने को एक चिट्ठी भेजने का विचार हो रहा था। (किन्तु एक तो संसार में जितने कठिन काम हैं उनमें चिट्ठी लिखने को मैं किसी से कम कठिन नहीं समझता।) इसके सिवा लिखूँ ही क्या? किन्तु आज अभया का वह रोना मेरे हृदय के लिए ऐसा बोझ हो उठा कि जान

पड़ा, उसका कुछ अंश हृदय से बाहर निकाले बिना साँस लेना भी कठिन होगा।

इसी से डेरे पर पहुँचते ही कागज़, कलम, दावात माँग-मूँगकर बाईजी को पत्र लिखने बैठ गया। इसके सिवा मेरे सुख-दुख में शरीक होनेवाला इस दुनिया में और था ही कौन! दो-तीन घंटे बाद साहित्य-चर्चा समाप्त करके जब मैंने हाथ से कलम रक्खी, उस समय रात के बारह बज गये थे। किन्तु कहीं सवेरे दिन के प्रकाश में यह चिट्ठी भेजने में शर्म न मालूम हो, यह सोचकर ताव गरम रहते ही रात को ही जाकर डाकबक्स में उसे डाल आया।

एक भले घर की स्त्री की दारुण वेदना का गुप्त इतिहास अन्य एक स्त्री के निकट प्रकट करना कर्तव्य है या नहीं, यह सन्देह मुझे था, किन्तु अभया के इस परम और चरम संकट के समय. जिस राजलक्ष्मी ने एक दिन पियारी बाई की मर्मभेदी तृष्णा का दमन किया है, वह क्या हितोपदेश देती है, यह जानने की आकांक्षा ने मुझे एकदम अधीर, अस्थिर कर दिया? किन्तु आश्चर्य यही है कि इस प्रश्न के दूसरे पहलू को एक बार भी मैंने नहीं सोचा। अभया के स्वामी का पता न पाने की समस्या ही बार-बार मन में उठी है; किन्तु उसका पता मिलने पर भी समस्या में जटिलता हो सकती है, उलझन और बढ़ सकती है, यह खयाल एक बार भी मन में नहीं आया।

फिर यही किसने सोचा था कि इस गड़बड़ को आविष्कार

करने का भार मेरे ही ऊपर डाल रक्खा था, यही किसने सोचा था! चार-पाँच दिन बाद एक बरमी क्लर्क मेरे टेबिल के ऊपर एक 'फाइल' रख गया। ऊपर हो नीली पेंसिल से उस पर बड़े साहब का नोट लिखा हुआ था। उन्होंने इस 'केस' का फैसला करने के लिए मुझे हुक्म दिया है। मामले को शुरू से आख़िर तक पढ़ कर मैं सन्नाटे में बैठा रह गया। घटना संक्षेप में यह है—

हमारा प्रोम में जो आफिस है, वहाँ के एक क्लर्क को वहाँ के साहब मैनेजर ने लकड़ी चुराने के अभियोग मे सस्पेंड करके इस आफिस में उसकी रिपोर्ट की है। उक्त क्लर्क का नाम देखते ही मैं जान गया, यही हज़रत अभया के स्वामी हैं! इनकी भी पाँच-चार सफे मे लिखी हुई कैफियत फाइल में नत्थी थी। इसके साथ ही यह भी अनुमान करने में मुझे देर नहीं लगी कि बरमा-रेलवे में कौन भारी अपराध करने के कारण इन हजरत की नौकरी गई थी।

दम भर में उसी क्लर्क ने आकर मुझे सूचित किया कि एक भले आदमी मुझसे मुलाकात करना चाहते हैं। इसके लिए मैं पहले ही से तैयार बैठा था। निश्चय जानता था, प्रोम से अपने केस की तदबीर करने वह हज़रत ख़ुद आवेंगे। सुतराम् कई एक मिनट के बाद ही उन भद्र पुरुष ने जब सशरीर आकर दर्शन दिये तब अनायास ही मैंने पहचान लिया, यही अभया के स्वामी हैं।

उस आदमी की ओर देखते ही घृणा से मेरे सारे शरीर में रोंगटे खड़े हो आये। वह हैट-कोट पहने हुए था; किन्तु वह पोशाक जैसी पुरानी थी, वैसी ही मैली। उसका काला-काला मुँह कड़े बालवाली दाढ़ी और मूँछ से ढका हुआ था। नीचे का होंठ, जान पड़ता है, डेढ़ इंच से कम मोटा न होगा। उसके ऊपर उसने पान इतने अधिक खाये थे कि दोनों चौंहों में पान की पीक जमी हुई थी। बात करने में यह भय होता था कि कहीं छिटककर ऊपर न आ पड़े।

पति ही नारी का इष्ट-देव है, उसका यह लोक और परलोक है, यह सब जानता हूँ। किन्तु इस मूर्तिमान् नीचता और प्रत्यक्ष पाजीपन के पास अभया की कल्पना करते मेरा शरीर और मन संकुचित हो गया। अभया और चाहे जो हो; देखने मे सुश्री है, मार्जित-रुचि भद्र महिला है। किन्तु यह मनुष्य-रूप भैंसा बरमा के किस घने जङ्गल से अकस्मात् निकल आया, यह जिन देवता ने इसे पैदा किया है वही कह सकते हैं।

उसके बैठने का इशारा करके मैंने पूछा—उसके विरुद्ध जो अभियोग है, वह क्या सत्य है? इसके उत्तर में वह आदमी दस मिनट के लगभग अनर्गल बक गया। उसका भावार्थ यही था कि वह एकदम निर्दोष है। उसके रहने से प्रोम-आफिस के मैनेजर साहब दोनों हाथों से लूट नहीं कर सकते; इसी से उस पर उनकी वक्र-दृष्टि है। किसी तरह उसे वहाँ से

हटा कर किसी अपने आदमी को उसकी जगह वह रखना चाहते हैं।

उसकी बातों पर मुझे रत्ती भर भी विश्वास नहीं हुआ। मैंने कहा—यह नौकरी अगर चली ही जायगी तो आपके समान काम काज में होशियार आदमी के लिए बरमा में नौकरी की क्या कमी है ? रेलवे की नौकरी छूट जाने पर आप कितने दिन खाली बैठे रहे थे ?

वह आदमी पहले तो सिटपिटा गया, उसके बाद बोला—आपका कहना कुछ झूठ नहीं है। किन्तु जानते हैं महाशय, गिरस्त आदमी हूँ, बहुत से कच्चे-बच्चे हैं—

मैंने पूछा—आपने क्या किसी बरमी औरत से शादी कर ली है ?

वह आदमी एकाएक बिगड़ उठा। बोला—शायद उसी साले साहब ने रिपोर्ट में यह भी लिख दिया है ? इसी से आप उसकी नाराजी का हाल समझ सकते हैं।

इतना कहकर मेरे मुँह की ओर देखकर कुछ नरम होकर उसने कहा—आप इस पर विश्वास करते हैं ?

मैंने सिर हिलाकर कहा—उसमें दोष ही क्या है ?

वह आदमी उत्साहित होकर कहने लगा—आपने ठीक कहा। मैं तो वही सबसे कहता हूँ कि जो करूँगा उसे ख़ुलासा स्वीकार करूँगा। मेरे भीतर कुछ और बाहर कुछ नहीं है। फिर मर्द ठहरा, समझे कि नहीं ? जो कहूँगा, स्पष्ट कहूँगा। मैं

कुछ छिपाता नहीं। फिर देश में भी तो मेरे कहीं कोई नहीं है। और जब यहीं हमेशा नौकरी करके पेट पालना है—समझे कि नहीं महाशय ?

मैंने सिर हिलाकर जताया कि सब समझ गया।

मैंने प्रश्न किया—देश में आपके क्या कोई नहीं है ?

उस आदमी ने बिना किसी हिचक के कह दिया—जी नहीं, कोई नहीं है। अगर होता तो इतनी दूर, इस 'सूर्य मामा के देश' में कैसे आ सकता ? साहब, आप विश्वास नहीं करेंगे, मैं किसी ऐसे-वैसे खानदान का लड़का नहीं हूँ। हम भी एक ज़मींदार हैं ! अब भी मेरा देश का घर देखिए तो आपके आश्चर्य की सीमा न रहे। लेकिन मैं जब छोटा ही था, तब सब लोग मर-खप गये। मैंने भी कहा—जाने दो, यह सब ज़मीन-जायदाद, घर-द्वार किसके लिए रक्खूँ ? सब अपने जाति-भाइयों को बाँटकर यहाँ बरमा चला आया।

ज़रा देर चुप रहकर मैंने प्रश्न किया—आप अभया को पहचानते हैं ?

अभया का नाम मेरे मुँह से सुनकर वह आदमी चौंक उठा। दम भर चुप रहकर उसने कहा—आपने उसे कैसे जाना ?

मैंने कहा—ऐसा भी तो हो सकता है कि उसने आपका पता लगाकर अपने खाने-पहनने के लिए खर्च दिलाने की इस दफ्तर में दरख्वास्त की हो।

उस आदमी ने अपेक्षाकृत प्रफुल्ल कण्ठ से कहा—ओह, यह कहिए! हाँ, सो मैं स्वीकार करता हूँ, एक समय वह मेरी स्त्री थी सही—

मैंने कहा—अब?

उसने कहा—अब कोई नहीं है। मैं उसे त्याग कर आया हूँ।

मैंने कहा—उसका अपराध?

उस आदमी ने उदास होने का ढोंग करके कहा—आप जानते है, घर की गुप्त बात कहना उचित नहीं। किन्तु आप अपने आत्मीय के बराबर हैं। आपसे कहने में लज्जा नहीं, वह एक बुरे चरित्र की औरत है। इसी कारण तो मन के दुःख और घृणा से देश छोड़कर मैं इतनी दूर चला आया। नहीं तो क्या कोई ख़ुशी से ऐसे देश मे पैर रखता है! आप ही कहिए, यह क्या कम घृणा की बात है!

मैं उत्तर क्या देता, लज्जा के मारे मेरा सिर झुक गया। शुरू से ही इस घोर मिथ्यावादी की एक बात पर भी मैंने विश्वास नहीं किया, किन्तु अब निस्सशय मुझे मालूम हो गया कि यह आदमी जैसा नीच है वैसा ही निष्ठुर भी।

अभया के बारे में मैं विशेष कुछ नहीं जानता; किन्तु तो भी कसम खाकर कह सकता हूँ कि स्वामी होकर इस पापी ने बिना किसी संकोच के अपनी स्त्री को जो अपवाद लगाया वह ग़ैर होकर भी मैं अपने मुँह से नहीं निकाल सकता।

कुछ देर बाद सिर उठाकर मैंने कहा—उसके इस अपराध की बात तो आते समय आप उससे कह नहीं आये थे ! यहाँ आकर भी कुछ दिन तक जब चिट्ठी-पत्री और रुपये आप भेजते रहे, तब भी लिखकर उसे सूचित नहीं किया ?

महापापिष्ठ बिना किसी हिचक के अपने विराट् स्थूल होठों को हँसी से फैला कर बोला—यह भी कोई बात है ! जानते तो हैं महाशय, हम लोग भले आदमी हैं, केवल चुपके-चुपके सब सह सकते हैं, पर छोटी जातिवालों की तरह अपनी स्त्री के कलङ्क का ढिँढोरा नहीं पीट सकते। खैर, रहने दीजिए, ये सब दुःख की बातें छोड़ दीजिए महाशय। ऐसी औरतों का नाम जबान पर लाने से भी पाप होता है।—अच्छा हाँ, तो मेरे केस को तो आप ही डिसपोज करेंगे ? खैर, जान में जान आई। लेकिन यह मैं कहे देता हूँ, इस साले साहब को यों ही न छोड़ा जायगा। अच्छी तरह सबक दे दिया जायगा, जिसमें बचा फिर मेरे साथ न भिड़े, मेरे पीछे न पड़ें। यह समझ जायँ कि मेरे भी मुरब्बी का जोर है। समझे कि नहीं ? अच्छा, मैं कहता हूँ, यह हरामजादा हेड आफिस मे नहीं खींच लाया जा सकता ?

मैंने कहा—नहीं।

इस आदमी ने हँसकर फाइल को जरा मेरे सामने ठेल कर कहा—लीजिए, दिल्लगी रहने दीजिए। बड़े साहब एक-दम आपकी मुट्ठी मे हैं, यह पता लगाये बिना ही थोड़े मैं आपकी

सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। ख़ैर, वह साला जहन्नुम में जाय। और एक बार मेरे साथ भिड़कर उसका मज़ा देख लें। अच्छा, बड़े साहब का हुक्म आज ही हासिल करके क्या मुझे आप नहीं दे सकते? नौ बजे की गाड़ी से ही तो फिर मैं चला जाता, रात को कष्ट न उठाता। आप क्या कहते हैं?

एकाएक मैं कुछ जवाब न दे सका। कारण, ख़ुशामद ऐसी चीज़ है कि सारी दुरभिसन्धि जान-बूझ और समझकर भी ख़ुशामद करनेवाले को कुण्ठित-निराश करते क्लेश मालूम पड़ता है। उसकी आशा के विपरीत बात उसके मुँह पर कहते सङ्कोच मालूम पड़ने लगा। किन्तु उस बाधा को मैंने नहीं माना।

अपने को कड़ा करके मैंने कह ही डाला—बड़े साहब का हुक्म हाथों हाथ हासिल करने से आपको कुछ लाभ न होगा। आप कहीं और नौकरी के लिए कोशिश कीजिए।

दम भर में ही वह एक-दम काठ हो गया। पल भर बाद उसने कहा—इसके माने?

मैंने कहा—इसके माने यह कि मैं आपको डिसमिस करने की राय ही लिखूँगा। मेरे द्वारा आपके लिए कुछ सुविधा न होगी।

वह उठकर खड़ा हो चुका था, मेरी बात सुनकर धम से बैठ गया। उसकी दोनों आँखों मे आँसू भर आये। हाथ जोड़कर बोला—बंगाली होकर बंगाली की जीविका न मारिएगा बाबू साहब। मैं और मेरे बच्चे-बच्चे मर जायँगे!

सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। ख़ैर, वह साला जहन्नुम में जाय। और एक बार मेरे साथ भिड़कर क्या मज़ा देख लें। अच्छा, बड़े साहब का हुक्म आज ही हासिल करके क्या मुझे आप नहीं दे सकते? नौ बजे की गाड़ी से ही तो फिर मैं चला जाता, रात को कष्ट न उठाता। आप क्या कहते हैं?

एकाएक मैं कुछ जवाब न दे सका। कारण, ख़ुशामद ऐसी चीज़ है कि सारी दुरभिसन्धि जान-बूझ और समझकर भी ख़ुशामद करनेवाले को कुण्ठित-निराश करते क्लेश मालूम पड़ता है। उसकी आशा के विपरीत बात उसके मुँह पर कहते सङ्कोच मालूम पड़ने लगा। किन्तु उस बाधा को मैंने नहीं माना।

अपने को कड़ा करके मैंने कह ही डाला—बड़े साहब का हुक्म हाथों हाथ हासिल करने से आपको कुछ लाभ न होगा। आप कहीं और नौकरी के लिए कोशिश कीजिए।

दम भर में ही वह एक-दम काठ हो गया। पल भर बाद उसने कहा—इसके माने?

मैंने कहा—इसके माने यह कि मैं आपको डिसमिस करने की राय ही लिखूँगा। मेरे द्वारा आपके लिए कुछ सुविधा न होगी।

वह उठकर खड़ा हो चुका था, मेरी बात सुनकर धम से बैठ गया। उसकी दोनों आँखों में आँसू भर आये। हाथ जोड़कर बोला—बंगाली होकर बंगाली की जीविका न मारिएगा बाबू साहब। मैं और मेरे बच्चे-बच्चे मर जायँगे!

मैंने कहा—यह देखने का भार मेरे ऊपर नहीं है। इसके सिवा आपको मैं जानता नहीं; आपके साहब के खिलाफ भी मैं कुछ न कर सकूँगा।

उस आदमी ने एकटक मेरे मुँह की ओर ताक कर शायद यह समझने की चेष्टा की कि मैं दिल्लगी तो नहीं कर रहा हूँ। उसके बाद ही अकस्मात् भों-भों करके रो उठा। क्लर्क, दरबान, चपरासी जो जहाँ था, वह वहीं इस अचिन्तनीय व्यापार से अवाक् हो गया। मैं स्वयं भी एक तरह से लज्जित हो उठा। मैंने उससे रुकने के लिए कह कर कहा—अभया आप ही के लिए बरमा में आई है। बदचलन औरत को मैं ग्रहण करने के लिए नहीं कहता; किन्तु आपकी सब बाते सुनकर भी अगर वह माफ कर दे—उससे अगर आप चिट्ठी ला सकें तो मैं आपकी नौकरी बरकरार रखने की चेष्टा करूँगा। ऐसा न हो सके तो फिर मुझसे मिलकर मुझे लज्जित न कीजिएगा। मैं झूठ बात नहीं कहता।

यह मैं जानता था कि ये नीच प्रकृति के लोग बड़े डरपोक होते हैं।

उसने आँसू पोंछकर कहा—वह कहाँ है ?

मैंने कहा—कल इसी समय आइएगा, उसका पता मैं बतला दूँगा।

वह आदमी और कुछ न कहकर एक लंबा सलाम करके चल दिया।

शाम को अभया ने मेरे मुख से चुपचाप सिर झुकाकर सब बातें सुनीं। सुनकर उसने केवल आँचल से आँसू पोंछे और मुख से कुछ नहीं कहा। मेरे क्रोध प्रकट करने का भी उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। बहुत देर बाद फिर मैंने ही पूछा—तुम उसको माफ कर सकोगी?

अभया ने केवल सिर हिलाकर अपनी सम्मति जताई।

मैंने पूछा—तुम्हें अगर वह अपने पास ले जाना चाहे तो जाओगी?

उसने वैसे ही सिर हिलाकर उसका भी उत्तर दिया।

मैंने कहा—बरमी औरतों का स्वभाव कैसा होता है, यह तो तुमको पहले ही दिन मालूम पड़ गया है, तो भी तुम वहाँ जाने की हिम्मत करती हो?

अब की अभया ने सिर उठाया। मैंने देखा, उसकी दोनों आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है। उसने कुछ कहने की चेष्टा की, किन्तु कह न सकी। उसके बाद बार-बार आँचल से आँखें पोंछकर रुँधे हुए स्वर में उसने कहा—न जाऊँ तो मेरे लिए और उपाय क्या है, आप ही बतलाइए?

उसकी यह बात सुनकर मैं यह न सोच पाया कि ख़ुश होऊँ या रोऊँ; किन्तु कुछ उत्तर न दे सका।

उस दिन फिर और कुछ बातचीत नहीं हुई। डेरे को लौटते समय रास्ते भर यही एक ही बात बार-बार अपने से आप ही पूछने लगा, किन्तु किसी ओर देखकर कोई उत्तर न

सूझ पड़ा। केवल हृदय का भीतरी भाग, मालूम नहीं किसके ऊपर, निष्फल क्रोध से जल-जल उठने लगा। दूसरी ओर वैसे ही एक निराश्रय रमणी के उससे भी अधिक निरुपाय (पूर्वोक्त) प्रश्न से मेरा हृदय व्यथित और भारपीड़ित हो रहा।

दूसरे दिन अभया का ठिकाना जानने के लिए जब वह आदमी मेरे सामने आकर खड़ा हुआ तब घृणा के मारे मैं उसकी ओर आँख उठाकर देख तक नहीं सका। मेरे मन के भाव को समझकर आज उसने अधिक बातचीत नहीं की, केवल अभया का पता-ठिकाना लिख लेकर विनीत भाव से चला गया।

किन्तु उसके दूसरे दिन फिर जब भेंट करने आया तब उसके मुख और आँखों का भाव बिलकुल बदला हुआ था। नमस्कार करके अभया के हाथ की लिखी एक पंक्ति मेरे टेबिल के ऊपर रखकर उसने कहा—आपने मेरा कैसा उपकार किया, यह मुँह से कहने से क्या होगा, मेरा जी ही जानता है; जब तक जिऊँगा आपका ग़ुलाम रहूँगा।

अभया के लेख पर दृष्टि रखकर मैंने कहा—आप जाकर काम कीजिए, इस दफे बड़े साहब ने आपको माफ कर दिया है।

उसने हँसते-हँसते जवाब दिया—बड़े साहब की मुझे कुछ फिक्र नहीं, सिर्फ आप माफ कर दें, यही मेरी प्रार्थना है। मैंने आपके श्रीचरणों में बहुत अपराध किये हैं।

इतना कहकर वह फिर बकने लगा—वैसा ही सफ़ेद झूठ

और .खुशामद की बातें शुरू कर दीं। बीच-बीच में रूमाल से आँखें भी पोंछता जाता था।

इतनी बकबक सुनने का धैर्य किसी के नहीं रह सकता; अतएव वे बातें सुनाने का दण्ड मैं अपने पाठकों को न दूँगा। मैं उसकी बकबक का स्थूल तात्पर्य संक्षेप में कहे देता हूँ। वह यही था कि उसने अपनी स्त्री के बारे में जो अपवाद अपनी ज़बान से निकाला था वह एक-दम मिथ्या है। उसने केवल लज्जा के मारे ही ऐसा कह दिया था, नहीं तो दर-असल उसकी स्त्री के समान सती-साध्वी और कहाँ है! और, मन-ही-मन वह अभया को सदा से प्राणों से अधिक प्यार करता है। यहाँ जो एक उपसर्ग जुट गया है, एक व्याधि पीछे लग गई है, उसमें उसका दोष बिलकुल नहीं। उसको कदापि ऐसी इच्छा न थी, केवल बरमी लोगों के भय से प्राण बचाने के लिए ही ( इसमें कुछ सचाई का अंश हो भी सकता है ) उसने यहाँ बरमी स्त्री से शादी कर ली है। किन्तु आज रात ही को जब वह अपने घर की लक्ष्मी लिये जा रहा है, तब उस बरमी औरत को दूर करते कितनी देर लगेगी। और लड़के-बाले? आहा, सालों का जैसा रूपरंग है, वैसा ही स्वभाव! वे सब उसके किस काम आवेंगे? बुढ़ापे में दो रोटियाँ खाने को अथवा एक कपड़ा पहनने को देंगे, या मरने पर उनके हाथ से लोटा भर जल मिलने की आशा है! जाते ही वह सबको कान पकड़कर बिदा कर देगा—इत्यादि इत्यादि।

मैंने पूछा—अभया को क्या आज रात को ही ले जाइएगा ?

उसने विस्मय से अवाक् होने का भाव दिखाकर कहा—ज़रूर ! जब तक आँखों से देखा नहीं तब तक किसी तरह का ख़याल न था; किन्तु आँखों से देखकर क्या फिर उसे मैं क्षण भर भी अकेली अलग छोड़ सकता हूँ ? अकेले इतना कष्ट सहकर वह मेरे ही लिए तो आई है ? ज़रा इस पर ग़ौर तो कीजिए भला !

मैंने पूछा—उसे क्या दूसरी स्त्री के साथ एक ही घर में रखिएगा ?

उसने कहा—जी नहीं। अभी प्रोम के पोस्टमास्टर साहब के घर में ही रक्खूँगा। उनकी औरत के पास बड़े मज़े में रहेगी। लेकिन सिर्फ़ दो दिन, अधिक नहीं। उसके लिए और एक घर ठीक करके घर की लक्ष्मी को घर ले जाऊँगा।

अभया का स्वामी चला गया। मैंने भी अपने काम में मन लगाने के लिए सामने का फ़ाइल उठाया।

नीचे ही अभया के हाथ का लिखा वह पुर्ज़ा नज़र पड़ा। उसके बाद कितनी दफ़े उन्हीं दोनों लाइनों को मैंने पढ़ा, कह नहीं सकता। और भी न जाने कितनी दफ़े पढ़ता; किन्तु इतने मे चपरासी कह उठा—बाबू जी, आज क्या कुछ काग़ज़-पत्र आपके डेरे पर पहुँचाने होंगे ?

चौंककर सिर उठाया, देखा, सामने की घड़ी में साढ़े चार

बजे देर हुई। क्लर्क लोग दिन का काम समाप्त करके अपने-अपने घर चले गये हैं।

---

## नवाँ परिच्छेद

फिर अभया के स्वामी का पत्र मुझे मिला। पहले ही की तरह चिट्ठी भर में कृतज्ञता की भरमार करके अब की वह कैसे संकट में पड़ गया है, यही सम्मान-पूर्वक विस्तार के साथ निवेदन करके उसने मुझसे उपदेश की प्रार्थना की है। मामला संक्षेप में यह है कि उसकी हैसियत और शक्ति न रहने पर भी उसने एक बड़ा मकान किराये पर लिया है। उसमें एक तरफ अपनी बरमी स्त्री और बाल-बच्चों को लाकर रक्खा है। उसी में दूसरी ओर आकर रहने के लिए वह नित्य अभया से अनुनय-विनय करता है, किन्तु किसी तरह उसे राजी नहीं कर पाता। सहधर्मिणी की इस प्रकार की अबाध्यता से; उसके कहने में न होने से, वह अत्यन्त मर्म-पीड़ा भोग रहा है। यह केवल कलि-काल की महिमा है, और सत्ययुग में ऐसा न होता—बड़े बड़े ऋषि-मुनि तक ऐसा लिख गये हैं। दृष्टान्त-समेत इसका बार-बार उल्लेख करके उसने लिखा है—हाय, वे आर्य-ललनायें अब कहाँ हैं? वह सीता, वह सावित्री कहाँ हैं? जो आर्य-नारियाँ स्वामी के चरण-कमल हृदय में धारण करके हँसते-हँसते चिता में जलकर स्वामी के साथ अक्षय स्वर्ग प्राप्त करती थीं, वे अब कहाँ हैं? जो हिन्दू-महिला हँसते-हँसते अपने

कोढ़ी स्वामी देवता को कन्धे पर चढ़ाकर वेश्या के घर तक ले गई थी, वह पतिव्रता रमणी कहाँ है? वह स्वामि-भक्ति अब कहाँ है? हाय भारतवर्ष! तेरा क्या एक-दम अधःपात होगया है! अब फिर क्या हम लोग इन सब बातों को अपनी आँखों से न देखेंगे? और क्या हम लोग—इत्यादि इत्यादि प्रायः बड़े-बड़े दो सफों में विलाप भरा पड़ा था!

किन्तु अभया ने पति-देव को इतनी ही मनोवेदना देकर दम नहीं लिया। और भी उसकी करतूत है। अभया के स्वामी ने लिखा है, उसकी अर्द्धाङ्गिनी केवल अभी तक पराये घर में ही नहीं रह रही है, उसे आज अपने परम मित्र पोस्ट-मास्टर साहब से मालूम हुआ है कि किसी एक रोहिणी नाम के पुरुप ने उसकी स्त्री को पत्र लिखा और रुपये भेजे है। इससे उस बदनसीब की इज्जत को कैसा धक्का लगा है, यह लिखकर जताना असम्भव है।

चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते यद्यपि हँसी रोकना मेरे लिए असम्भव होगया, तथापि उसके साथ ही रोहिणी बाबू के इस व्यवहार पर भी कुछ कम क्रोध नहीं आया। अब अभया को चिट्ठी लिखने की क्या ज़रूरत है? रुपये भेजने की ही क्या आवश्यकता है। अपनी इच्छा से स्वामी के साथ रहने के लिए जिसने इतना दुःख सहना स्वीकार कर लिया है, उसके चित्त को—जानकर हो या बे-जाने—दूसरी ओर भटकने का प्रयोजन क्या है? और, अभया ने ही इस तरह का व्यवहार

क्यों आरम्भ कर दिया है? वह क्या चाहती है? वह क्या यह चाहती है कि उसके स्वामी ने जिस बरमी औरत को स्त्री की तरह ग्रहण किया है, जिसके पेट से उसके कई बाल-बच्चे हो चुके हैं, उसे और उसकी सन्तान को त्याग करके केवल उसी को लेकर वह रहे? क्यों, बरमा की औरत क्या औरत नहीं है? उसके क्या सुख-दुख या मान-अपमान कुछ नहीं है? न्याय-अन्याय का क़ानून क्या उसके लिए अलग बनाया गया है? फिर अगर यही बात थी, ऐसा ही आचरण करना था तो अभया वहाँ गई ही क्यों? सब झंझट यहीं से स्पष्ट कहकर मिटा देने ही से तो काम चल सकता था! वहाँ जाकर बखेड़ा खड़ा करने की क्या आवश्यकता थी?

उसी दिन से आज तक रोहिणी से भेंट करने मैं नहीं गया था। वह व्यर्थ ही क्लेश पा रहा है, यह मन ही मन समझकर ही शायद उधर जाने को मेरा जी नहीं चाहा। आज दफ़्र में छुट्टी होने के पहले ही गाड़ी लाने के लिए चपरासी को भेजकर मैं उठने को कर ही रहा था, इसी समय अभया की चिट्ठी आगई खोलकर देखा, उसमें आदि से अन्त तक रोहिणी का ही जिक्र था। मैं सदा उसको देखता रहूँ, उसका ध्यान रक्खूँ, वह बड़ा दुखी, बड़ा दुर्बल; बड़ा भोला, बड़ा अपटु और बड़ा ही असहाय है, यही एक बात पत्र की प्रत्येक पक्ति और प्रत्येक अक्षर-द्वारा ऐसे मर्मभेदी और व्यथित ढंग से व्यक्त की गई थी कि उसे देखकर अत्यन्त अधिक सरल स्वभ

का आदमी भी शायद उसका ठीक तात्पर्य समझने में ग़लती नहीं कर सकता—मुझे तो यही जान पड़ा। अपने सुख-दु ख की चर्चा अभया ने उस पत्र में प्रायः कुछ भी नहीं की थी। हाँ, पत्र में पीछे उसने अवश्य यह जताया था कि अनेक कारणों से वह अभी तक उसी जगह है; जहाँ आकर पहले उतरी थी।

पति ही सती स्त्री का एक-मात्र इष्टदेव है या नहीं, इस विषय में अपना मतामत छापे के अक्षरों मे प्रकट करने का दुस्साहस मै नहीं कर सकता और उसकी आवश्यकता भी नहीं देखता। किन्तु सर्वाङ्गीण सतीधर्म की एक अपूर्वता, दुस्सह दुःख और अत्यन्त अन्याय-अत्याचार के बीच भी उसकी आकाश को छूनेवाली विराट् महिमा—जो मेरी अन्नदा दीदी की स्मृति के साथ चिर दिन मेरे मन मे बसी रहेगी और आँख से देखे विना जिसके असह्य सौन्दर्य की धारणा की ही नहीं जा सकती—जिसने एक साथ ही नारी को अत्यन्त क्षुद्र और अत्यन्त बृहत्, महत् कर दिया है—मेरी वही अव्यक्त उपलब्धि आज अभया की इस चिट्ठी से फिर अलोड़ित, मथित हो उठी।

यह मैं जानता हूँ कि सभी स्त्रियाँ अन्नदा दीदी नहीं हैं और न हो ही सकती हैं। उस कल्पनातीत निष्ठुर धैर्य को हृदय मे धारण करने की शक्ति रखनेवाली इतनी बड़ी छाती भी सब स्त्रियों की नहीं हो सकती। और, जो नहीं है, उसके लिए रोज़ रोज़ शोक प्रकट करना किसी ग्रन्थकार का कर्तव्य है कि नहीं, वह भी मैंने सोचकर ठीक नहीं कर रक्खा। किन्तु तो

भी मेरा हृदय वेदना से परिपूर्ण होगया। गुस्सा करके ही मैं गाड़ी पर सवार हुआ, और उस निकम्मे, पराई स्त्री पर आसक्त रोहिणी को अच्छी तरह दो-चार कड़ी बातें सुना आऊँगा, यही मन में सोचता हुआ उसके डेरे की ओर रवाना हुआ।

यथास्थान पहुँचकर गाड़ी से उतरकर किवाड़े ठेलकर जब मैंने भीतर प्रवेश किया तब कहीं-कहीं चिराग़ जल गये थे, और कहीं अब भी नहीं जले थे, अर्थात् ऐसा समय था, जब दिन का प्रकाश समाप्त हो जाता है और सन्ध्या का अन्धकार पृथ्वी पर उतर आ रहा होता है।

वह न 'माह भादर' था, न 'भरा बादर' ही था; किन्तु 'शून्य मन्दिर' ❀ का रूप यदि कुछ हो सकता है, तो उस दिन प्रकाश और अन्धकार की सन्धि में जो मैंने देखा, वह उसके सिवा और क्या हो सकता है, यह आज भी मुझे नहीं मालूम हो सका। सब घर में जैसे सन्नाटा छाया हुआ था, केवल रसोई-घर की एक खिड़की से धुआँ बाहर निकल रहा था। दाहनी ओर ज़रा आगे बढ़कर झाँककर देखा, चूल्हा जल-जल कर प्रायः बुझ जाने को है और थोड़ी दूर पर, फ़र्श पर, रोहिणी एक बैगन की दो फाँकें छुरी से करके चुपचाप बैठा हुआ है। मेरे पैरों की आहट उसके कानों तक नहीं पहुँची।

---

❀ वियोग-वर्णन में महाकवि विद्यापति का यह पद बंगाल में बहुत प्रसिद्ध है—

"माह भादर भरा बादर शून्य मन्दिर मोर।"

कारण, कर्णेन्द्रिय का मालिक जो मन है वह उस समय और चाहे जहाँ हो, वैगन पर एकाग्र नहीं हो रहा था, यह मैं निस्सन्देह कह सकता हूँ।

और भी एक बात मैं निःसंशय होकर कह सकता हूँ। किन्तु चुपचाप लौट जाकर जब एक-एक करके दोनों सोने की कोठरियों मे जाकर खड़ा हुआ तब आँखों के आगे मैंने स्पष्ट देख पाया कि समस्त समाज, समस्त धर्म-अधर्म, समस्त पाप-पुण्य से परे एक उत्कट वेदना-विद्ध रोदन सारे घर में व्याप्त होकर जैसे दाँत से दाँत दबाये स्थिर हो रहा था।

बाहर आकर बरामदे के मोढ़े पर बैठ गया। बहुत देर बाद शायद रोशनी करने के लिए ही रोहिणी बाहर निकला और मुझे अन्धकार में बैठा देखकर उसने डरकर पूछा—कौन है ?

मैंने कहा—मैं हूँ श्रीकान्त।

"श्रीकान्त बाबू ? ओह—" कहकर वह तेजी के साथ मेरे पास आया और घर में रोशनी करके मुझे भीतर ले जाकर बिठाया। उसके बाद मेरे या उसके मुख से कोई बात नहीं निकली—दोनों चुपचाप थे।

दमभर बाद मैं ही पहले बोला। मैंने कहा—रोहिणी दादा, अब यहाँ क्यों पड़े हो ? मेरे साथ चलो।

रोहिणी ने पूछा—क्यों ?

मैंने कहा—यहाँ आपको कष्ट हो रहा है, इसी से कहता हूँ।

उन्होंने कहा—महाशय, कहानियों में सुनता हूँ कि पहले के ज़माने में कामरू ( कामरूप देश ) की औरतें मर्दों को भेड़ा बनाकर पकड़ रखती थीं। क्या जाने, उस समय की औरतें क्या करती थीं, किन्तु इस ज़माने में बरमी औरतों की क्षमता उससे एक तिल भी कम नहीं है, यह मैंने अच्छी तरह अनुभव कर लिया है।

और भी अनेक बातें कहकर उन्होंने अपने छोटे भाई का उद्धार करने के कार्य में मेरी सहायता चाही। मैंने उनको वचन दिया कि उनके इस साधु उद्देश्य को सफल करने में मैं कमर बाँधकर जुट जाऊँगा। यह वादा करने के बाद दूसरे ही दिन सवेरे पता लगाकर मैं उन महाशय के साथ उनके छोटे भाई की ससुराल—उस बरमी औरत के घर—जाकर उपस्थित हुआ। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने देश के आदमी की सहायता विदेश में करना सभी का कर्तव्य समझ कर ही मैंने इस कार्य का भार अपने ऊपर लिया था। वह सज्जन, जिनके छोटे भाई के पास मैं गया था, आड़ में सड़क पर टहलते रहे।

छोटा भाई घर में मौजूद न था, साइकिल पर चढ़कर सवेरे की हवा खाने निकल गया था। घर में उसकी सास या ससुर न था, केवल उसकी स्त्री अपनी छोटी बहन और दो नौकरानियों के साथ रहती थी। इन लोगों की जीविका बरमा-चुरुट बनाना है। उस समय सब मिलकर यही काम कर रही थीं।

मुझे बंगाली देखकर, शायद अपने स्वामी का कोई दोस्त समझ कर, उस महिला ने बड़े आदर से मेरा स्वागत किया। बरमा की औरतें बड़ी ही मेहनती होती है। किन्तु मर्द वैसे ही आलसी होते हैं। घर के काम-काज से लेकर बाहर का रोज़गार तक सभी औरते करती हैं। इसी से वे सब लिखी-पढ़ी होती हैं। इसके बिना उनका काम नहीं चल सकता। लेकिन मर्दों की बात दूसरी है। वे पढ़ें-लिखे तो अच्छा ही है, लेकिन अगर न पढ़े-लिखें तो वह उनके लिए कुछ लज्जा की बात नहीं। वहाँ बेकार निकम्मा मर्द अगर स्त्री की कमाई से खा-पहन कर बाहर उसी के पैसे से अगर बाबू बनकर घूमता है तो यह देखकर लोगों को आश्चर्य नहीं होता। स्त्रियाँ भी छी-छी करके, बक-झककर, रो-धोकर ऐसे मर्दों के नाक में दम करने की आवश्यकता नहीं समझतीं। बल्कि यही उनके समाज मे एक प्रकार से स्वाभाविक आचार मान लिया गया है।

लगभग दस मिनट के भीतर ही 'बाबू साहब' साइकिल पर लौट आये। उनके सारे शरीर मे अँगरेजी पोशाक, हाथ में दो-तीन अँगूठियाँ और घड़ी-चेन डटी हुई थी। काम-काज कुछ नहीं करना पड़ता, लेकिन हालत बहुत अच्छी थी।

उनकी उस बरमी औरत ने हाथ का काम छोड़ दिया, उठकर खड़ी होगई। उनकी टोपी और छड़ी उनके हाथ से लेकर यथास्थान रख दी। छोटी बहन ने चुरुट और दिया-

रोहिणी ने चुप रहकर कुछ देर बाद कहा—नहीं, कष्ट क्या है !

ठीक है ! ऐसा ही होगा ! ऐसी बातों में बहस तो की नहीं जा सकती। घर से न जाने क्या-क्या सोचता आया था कि यों तिरस्कार करूँगा, यों सत्परामर्श दूँगा, यह कहूँगा, वह कहूँगा; लेकिन यहाँ आकर सब मनसूबे जहाँ के तहाँ दब रहे। नीति-शास्त्र का इतना अधिक अध्ययन मैंने नहीं किया कि इतने बड़े प्यार का अपमान कर सकूँ। न जाने कहाँ मेरा क्रोध चला गया, न जाने कहाँ वह मेरा विद्वेष का भाव जाता रहा ! मेरे सब साधु-संकल्प सिर झुकाये रह गये, उनका पता भी न चला।

रोहिणी ने कहा, उसने प्राइवेट ट्यूशन ( लड़कों को पढ़ाना ) छोड़ दिया है। कारण, उससे तन्दुरुस्ती ख़राब हुई जा रही थी। उसका यह आफिस भी अच्छा नहीं है—बड़ी कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। नहीं तो और कोई कष्ट नहीं है।

चुप हो रहा। कारण, इसी रोहिणी के मुख से कुछ दिन पहले ठीक इससे उलटी बातें मैंने सुनी थीं।

वह क्षण भर चुप रहकर फिर कहने लगा—और यह रसोई बनाना, दफ़्तर से थके-माँदे लौटकर यह काम करना बिलकुल ही नहीं अच्छा लगता, जी खीझ उठता है। आप ही बतलाइए श्रीकान्त बाबू, है न ठीक ?

मैं क्या कहता ! आग के बुझ जाने पर केवल पानी के ज़ोर से एंजिन नहीं चलता, यह तो जानी हुई बात है।

तथापि वह घर छोड़कर अन्यत्र जाने के लिए रोहिणी राज़ी न हुआ। कल्पना की तो कोई सीमा नहीं निर्दिष्ट कर सकता, अतएव उसकी बात जाने दीजिए। किन्तु उसकी कुछ बातों से ही मैंने यह निष्कर्ष निकाल लिया था कि किसी तरह की असम्भव आशा उसके मन मे स्थान नहीं पा सकी थी। तथापि वह क्यों यह दुःखदायक घर छोड़ना नहीं चाहता, यह मैं अवश्य नहीं सोच सका, किन्तु उसके अन्तर्यामी से यह छिपा न था कि जिस बदनसीब के लिए अपने घर की राह तक बन्द हो गई है, उसे इस शून्य गृह की जमी हुई वेदना अगर खड़ा न रख सके तो उसे मिट्टी मे मिलने—धूलिसात् होने—से रोकने की शक्ति संसार में और किसी के नहीं है।

ख़ैर, डेरे में पहुँचते मुझे कुछ रात बीत गई। घर में घुसकर देखा, एक कोने मे बिछौना बिछाकर कोई आदमी सिर से पैर तक चादर ताने लेटा हुआ है।

महरी से पूछने पर मालूम हुआ, कोई भले आदमी हैं।

इसी से मेरे घर मे पदार्पण किया है !

भोजन आदि से निबट कर उन भले आदमी से वार्तालाप हुआ। उनका घर चटगाँव ज़िले में है। लगभग चार साल के बाद उनके लापता छोटे भाई का पता लगा है। उसी को घर लौटा ले जाने के लिए आप रंगून पधारे हैं।

सलाई लाकर हाज़िर कर दी। एक दासी चाय का सामान ले आई, दूसरी पान की डिबिया लेकर उपस्थित हुई।

वाह, सबने मिलकर इस आदमी को राजा-सा बना रक्खा है। इस आदमी का नाम मैं भूल गया हूँ। शायद चारू या हारू ऐसा ही कुछ होगा। ख़ैर, नाम न सही, मैं बाबू कहकर ही अब उसका उल्लेख करूँगा।

बाबू ने पूछा, मैं कौन हूँ?

मैंने कहा, मैं उनके दादा का दोस्त हूँ।

उन्होंने विश्वास नहीं किया। बोले—आप तो 'कलकतिया' देख पड़ते हैं; किन्तु मेरे दादा तो वहाँ कभी गये नहीं। दोस्ती कैसे हुई?

किस तरह बन्धुत्व हुआ, कहाँ हुआ और वे कहाँ हैं इत्यादि सब सक्षेप में कहकर उनके यहाँ आने का उद्देश भी मैंने बतला दिया। यह भी निवेदन किया कि वे अपने अनुज-रत्न के दर्शन की अभिलाषा से अधीर हो रहे हैं।

दूसरे दिन सवेरे ही हमारे होटल में बाबू ने पदार्पण किया। दोनों भाइयों में बहुत देर तक बातचीत होती रही। उसके बाद बाबू अपने घर चले गये। उसी दिन से दोनों भाइयों में ऐसा मेल हो गया कि सवेरा नहीं, शाम नहीं, जब देखो तब 'दादा' कहकर पुकारते बाबू आकर हाज़िर होने लगे। दोनों की धीरे-धीरे सलाह, आलाप-आप्यायन, खाना-पीना

लगातार चलने लगा—दोनों के हेल-मेल की हद नहीं रही। एक दिन तीसरे पहर अपने दादा को और मुझे चाय-बिसकुट का न्योता तक दे गये।

उसी दिन उनकी बरमी स्त्री से मेरी अच्छी तरह जान-पहचान और बातचीत हुई। औरत बहुत ही सीधे स्वभाव की, नम्र और भली थी। ख़ुद प्रेम करके अपनी इच्छा से उसने इस बाबू के साथ ब्याह किया है और शायद तब से एक दिन भी इसे कुछ दुःख नहीं दिया।

तीन-चार दिन के बाद बाबू के दादा ने हँसकर गुप्त रूप से इस प्रकार से मेरे कान में कहकर यह सूचित किया कि परसों सवेरे के जहाज़ से दोनों भाई अपने घर की यात्रा करेंगे। सुनकर न जाने क्यों मुझे डर मालूम हुआ। मैंने पूछा—आपके भाई साहब फिर लौटकर यहाँ आवेंगे तो?

दादा ने कहा—फिर आवेगा! राम भजो भाई! भगवान् का नाम लेकर किसी तरह एक बार जहाज़ पर सवार हो जायँ, बस!

मैंने पूछा—यह उस औरत को बतला दिया है?

दादा ने कहा—बाप रे! तो फिर जान बचेगी! उसका जो कोई जहाँ है, सब रक्तबीज की तरह घेर लेंगे।

इतना कहकर दोनों आँखें मटकाकर हँसते हुए फिर बोले—यह फ्रेंच लीव है महाशय, फ्रेंच लीव—यह भी आप नहीं समझ पाये?

बहुत ही क्लेश मालूम हुआ। मैंने कहा—उस औरत को तो फिर बड़ा कष्ट-दुःख होगा ?

मेरी बात सुनकर दादा तो एक-दम हँसी से लोटपोट हो गये। किसी तरह हँसी रुकने पर उन्होंने कहा—सुनिए ज़रा इनकी बातें! बरमी औरतों को क्या कष्ट होगा! ये लोग खाकर मुँह नहीं धोते, कुल्ला नहीं करते। न तो इनमें जूठे-कूठे का विचार है और न इनके जाति-जन्म का ठिकाना! ये सब साली नेप्पी* खाती हैं साहब, नेप्पी खाती हैं। गन्ध ऐसी आती है कि भूत भी भाग खड़ा हो! इन लोगों को कष्ट होगा? इन्हें काहे का कष्ट! एक चला जायगा, दूसरे को पकड़कर खसम बना लेंगी। ये सब छोटी जाति—

मैंने ऊबकर कहा—ठहरिए महाशय, ठहरिए। आपके भाई को जो चार साल से राजा की तरह खिलाती-पिलाती, पोशाक पहनाती और सुख से रखती है, कम-से-कम इसी के लिए आपको कुछ कृतज्ञ होना चाहिए।

दादा का मुँह फूल गया। ज़रा देर चुप रहकर बोले—आपने तो अवाक् कर दिया महाशय। मर्द-मानुष ठहरा, पर-देस में, पराये शहर में, आकर अवस्था के दोष से न हो वह एक शौक़ ही कर बैठा, तो इससे क्या? कौन आदमी इस अवस्था में ऐसा नहीं कर बैठता, आप ही बतलाइए? मुझसे

---

* एक तरह की सड़ी मछली।

तो अब छिपा नहीं है, मान लिया, यह बात देश में भी कुछ लोगों को मालूम होगई है। लेकिन इससे क्या, उसे हमेशा इसी तरह परदेस मे घूमते रहना पड़ेगा ? अच्छा होकर, चरित्र सुधार कर, देश मे जाकर, स्वजाति मे ब्याह कर, गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए दस भले आदमियों के समान जीवन बिताने का अवसर क्या उसे न देना होगा ? महाशय, यह क्या है ? यह तो कुछ भी नहीं। कच्ची उमर में कितने ही लोग होटल में घुसकर मुर्गी तक खा आते हैं। किन्तु अवस्था अधिक और समझ पक्की होने पर क्या वही किया करते हैं ? या वैसा करने से काम चल सकता है ? आप ही विचार कीजिए, मै झूठ कह रहा हूँ या सच ?

वास्तव में यह विचार करने भर की बुद्धि भगवान् ने मुझे नहीं दी, अतएव चुप रहा। दफ्तर का वक्त हो रहा था; स्नान-भोजन करके चल दिया।

किन्तु आफिस से जब मै लौट आया, तब वह सहसा कह उठे—सोच कर देखा, आप ही की सलाह अच्छी है महाशय।

इस जाति का कुछ विश्वास नहीं। क्या जाने, अन्त को कोई फसाद खड़ा कर दे। कह जाना ही ठीक है—ये हराम-ज़ादियाँ क्या नहीं कर सकतीं ! न इनके लज्जा-शरम है, न धर्म का ज्ञान ! इन्हे तो जानवर कहना ही बस, ठीक होगा !

मैंने कहा—हाँ, कहकर जाना ही अच्छा है।

लेकिन मैं दादा की बात पर विश्वास न कर सका। न जाने

कैसे जान पड़ने लगा कि इसके भीतर कुछ षड्यन्त्र अवश्य है। किन्तु वह षड्यन्त्र इतना नीच, इतना निष्ठुर है, यह आँख से देखे बिना कोई कल्पना भी शायद नहीं कर सकता।

चटगाँव के लिए जहाज़ रविवार को छूटता है। आफिस बन्द था, सबेरे के समय कुछ करने को न था, इसी से दादा और उनके भाई को जहाज़ तक पहुँचाने—See off. करने—जहाज़-घाट पर जाकर उपस्थित हुआ। यात्रियों और उन्हें पहुँचाने आनेवालों की हाँक-डाँक और शोर-गुल इतना था कि किसी की बात कोई नहीं सुन पाता था।

इधर-उधर नज़र दौड़ाते ही वह बरमी औरत भी देख पड़ी, एक किनारे अपनी छोटी बहन का हाथ पकड़े खड़ी थी। रात भर रोते रहने के कारण उसकी आँखें दुपहरी के फूल के समान लाल हो रही थीं। उसके पति महाशय बहुत ही व्यस्त हो रहे थे। अपनी साइकिल, ट्रंक, बिस्तर वग़ैरह न जाने क्या-क्या सामान चढ़ाने के लिए कुलियों के साथ इधर-उधर दौड़-धूप कर रहे थे। उन्हें घड़ी भर की भी फ़ुरसत न थी।

क्रमशः सब सामान जहाज़ पर लद गया। यात्री लोग भी रेल-पेल करते हुए ऊपर चढ़ गये। जिन्हें जाना न था, वे इष्ट-मित्रों को जहाज़ पर छोड़ कर नीचे उतर आये। सामने की ओर लंगर उठाने की तैयारी होने लगी। अब छोटे बाबू अपने सामान की हिफ़ाज़त से छुट्टी पाकर, बैठने की जगह ठीक करके अपनी बरमी स्त्री के पास विदा के बहाने संसार के निष्ठुरतम

दृश्य का अभिनय करने के लिए जहाज़ से नीचे उतरे। सेकेंड क्लास के मुसाफिर होने के कारण यह अधिकार उनको था।

मैं अक्सर सोचता हूँ, उन्होंने जो कुछ किया उसका क्या प्रयोजन था? मनुष्य क्यों गले पड़ कर अपनी आत्मा का—मनुष्यता का—अपमान करता है! माना कि वह वेद-मन्त्र पढ़कर व्याही गई स्त्री न थी; किन्तु तो भी नारी तो थी! वह भी तो मा-वहन-वेटी की जाति थी! उसी के आश्रय में उस आदमी ने चार-पाँच वर्ष के सुदीर्घ समय तक स्वामी के सब अधिकार लेकर निवास किया था! अपने विश्वस्त हृदय का समस्त माधुर्य, सारा अमृत उस स्त्री ने मन-वाणी-काया से इसी आदमी को अर्पण कर दिया था! फिर वह नर-पशु काहे के लोभ से इतने अगणित दर्शकों की दृष्टि में उस स्त्री को इतने बड़े निर्दय विद्रूप और हँसी का पात्र बनाकर चलता बना! मैंने देखा, वह एक हाथ में रूमाल लेकर अपनी दोनों आँखे ढक कर दूसरा हाथ उस स्त्री के गले में डाले रोने के स्वर में न जाने क्या सब बक रहा है और वह स्त्री आँचल से मुँह ढके फफक-फफक कर रो रही है।

आसपास बहुत-से बङ्गाली खड़े थे। उनमें कुछ मुँह फेर कर हँस रहे थे; कुछ मुँह में कपड़ा गूँज कर हँसी रोकने की चेष्टा कर रहे थे। मैं पहले जरा दूर होने के कारण उसकी बातें नहीं सुन पाया था; किन्तु पास आते ही सब बातें स्पष्ट सुनाई पड़ने लगीं। वह मनुष्य बरमी भाषा में नीचे दर्जे की बँगला

मिलाकर रोने के स्वर में विलाप कर रहा था ! उस भाषा को कुछ परिमार्जित करके लिखने से उसका अनुवाद इस प्रकार होगा—"एक महीने बाद रँगपुर से तमाखू ख़रीद कर अब क्या आऊँगा ! अरे ओ मेरी प्राणेश्वरी ! तुझे अँगूठा दिखा कर जाता हूँ—अँगूठा दिखा कर जाता हूँ !"

यह केवल हम कुछ अपरिचित बङ्गाली दर्शकों को हँसाने के लिए था। किन्तु वह बेचारी औरत तो बँगला समझती न थी, केवल पति के रोने के स्वर से ही उसकी छाती फटी जा रही थी और वह किसी तरह उसके आँसू पोंछ कर, हाथ उठा कर उसे सान्त्वना देने की चेष्टा कर रही थी।

वह मनुष्य रेढ़-रेढ़ कर, फफक-फफक कर कहने लगा—सिर्फ पाँच सौ रुपये तमाखू ख़रीदने के लिए दिये—तेरे पास और कुछ है ही नहीं—इतने से पेट नहीं भरा—इसके साथ ही तेरा घर भी अगर बिकवा कर दाम अपनी टेंट में करके अपने घर लौट सकता तो समझता, हाँ, एक दाँव मारा गया। यह तो कुछ भी न हुआ रे ! कुछ भी न हुआ।

आस-पास के बङ्गाली अवरुद्ध हास्य से फूल-फूल उठने लगे; किन्तु जिस दुखिया को लेकर इतना आमोद था, उसकी आँखें और कान उस समय दुःख की भाप से एक-दम समाच्छन्न हो रहे थे ! जान पड़ता था, वेदना के बोझ से कहीं गिर न पड़े !

खलासियों ने ऊपर से पुकारा—बाबू, सीढ़ी उठाई जा रही है।

वह आदमी स्त्री के गले से हाथ हटा कर सीढ़ी के पास तक जाकर ही फिर लौट आया। औरत के हाथ में पुराने ज़माने की एक अच्छे मानिक (चुन्नी) की अँगूठी थी। उसी के ऊपर हाथ रख कर रोते-रोते उस पिशाच ने कहा—अरे, दे रे, यह अँगूठी भी हथियाये जाऊँ। दो सौ—ढाई सौ रुपये से कम की न होगी—यही क्यों छोड़ जाऊँ। ।

उस औरत ने चटपट उँगली से निकाल कर अपने प्रियतम की उँगली में पिन्हा दी। "जोमि ·ला, वही ग़नीमत !" कह कर रोते-रोते तेज़ी से वह आदमी ऊपर चढ़ गया।

जहाज़ धीरे-धीरे जेटी छोड़ कर दूर हटने लगा और वह औरत मुँह आँचल से ढक कर घुटनों के बल उसी जगह बैठ गई।

बहुत लोग दाँत निकाल कर हँसते-हँसते चले गये। किसी ने कहा, अच्छा लड़का है ! किसी ने कहा, छोकरा बेशक बहादुर है ! बहुत लोग यह कहते-कहते गये कि कैसा मज़ा कर गया। हँसते-हँसते पेट में दर्द होने लगा। इसी तरह कितने ही लोग कितनी ही तरह की बातें कह गये। केवल मैं ही उस सब के हँसी-तमाशे का पात्री बेवकूफ़ औरत के असीम दुःख के निःशब्द साक्षी की तरह स्तब्ध-भाव से वहीं खड़ा रहा।

छोटी बहन पास खड़े होकर आँसू पोंछते-पोंछते अपनी बड़ी बहन का हाथ पकड़ कर खींच रही थी। मेरे जाकर

पास खड़े होते ही उसने धीरे-धीरे कहा—बाबू जी आये हैं दीदी, उठो।

उस दुखिया ने सिर उठा कर मेरी ओर देखा; साथ ही साथ उसका रोना जैसे बाँध तोड़ कर फट पड़ा। मेरे पास सान्त्वना देने को था ही क्या! तो भी उस दिन मैं उसका साथ न छोड़ सका। उसके पीछे-पीछे उसकी गाड़ी पर जा कर बैठ गया।

रास्ते भर रोते-रोते वह केवल यही कहती रही—बाबू जी, आज मेरा घर सूना होगया! मैं किस तरह उसके भीतर पैर रक्खूँगी? एक महीने के लिए तमाखू ख़रीदने गये हैं। यह एक महीना मैं किस तरह बिताऊँगी? विदेश का मामला ठहरा; न जाने कितना कष्ट होगा। मैंने क्यों जाने दिया! अब तक रंगून के बाजार में तमाखू खरीद कर तो हमारा अच्छी तरह गुजर हो रहा था, फिर अधिक लाभ की आशा से मैंने उन्हे क्यों इतनी दूर भेजा! दुःख के मारे मेरी छाती फटी जा रही है बाबू जी, मैं दूसरे जहाज से ही उनके पास चली जाऊँगी। इत्यादि न जाने कितनी ही बातें कहती रही!

मै एक बात का भी जवाब न दे सका, केवल मुँह फेर कर गाड़ी की खिड़की से बाहर देखता हुआ आँसू छिपाने की चेष्टा करता रहा।

वह औरत कहने लगी—बाबू जी, तुम्हारी जाति के लोग

जितना प्यार कर सकते हैं, उतना हमारी जाति के लोग नहीं। तुम लोगों की-सी दया-मया अन्य देश के लोगों में नहीं होती।

ज़रा थमकर फिर दो-तीन बार आँसू पोंछकर कहने लगी—बाबू को प्यार करके जब हम दोनों जने एक साथ रहने लगे, तब कितने ही लोगों ने भय दिखाकर मुझे मना किया था; लेकिन मैंने किसी की बात नहीं सुनी। अब कितनी ही औरतें मेरे सुख-सौभाग्य के लिए मुझसे डाह करती हैं।

चौराहे के पास आकर मैंने अपने डेरे पर जाना चाहा, तो उसने व्याकुल होकर दोनों हाथ से गाड़ी का दरवाज़ा रोक कर कहा—ना बाबू जी, यह न होगा। मेरे साथ चलकर एक पियाला चाय पीकर फिर जाइएगा।

मैं नाहीं न कर सका। गाड़ी चलने लगी। एकाएक वह प्रश्न कर बैठी—अच्छा बाबू जी, रंगपुर कितनी दूर है? तुम कभी गये हो? वह कैसी जगह है? तबीअत ख़राब होने से डाक्टर तो वहाँ मिलते हैं न?

बाहर की ओर देखते रह कर ही मैंने उत्तर दिया—हाँ, मिलते क्यों नहीं।

उसने एक साँस छोड़कर कहा—'फया' उन्हें अच्छा रक्खे। उनके दादा भी साथ है। वह बहुत अच्छे आदमी है, छोटे भाई को जान से बढ़कर रक्खेंगे। तुम लोगों में स्नेह-दया-ममता बेहद होती है! मुझे कोई चिन्ता नहीं है। क्यों न बाबू जी?

चुपचाप बाहर देखते रहकर मैं केवल यही सोचने लगा कि इस महा-पातक में मेरा अपना हिस्सा कितना है? आलस्य-वश चाहे चक्षुलज्जा के कारण अथवा हतबुद्धि होकर, चाहे जिस तरह हो, यह जो मुँह बन्द किये रहकर मैंने जो यह इतना बड़ा अन्याय होते देखा किया, एक शब्द नहीं कहा, इस अपराध से क्या मै बच जाऊँगा? और, यदि मैं अपराधी नहीं हूँ तो सिर उठाकर सीधा होकर इस स्त्री के सामने बैठ क्यों नहीं सकता? उसकी आँखों से आँख क्यों नहीं मिला सकता? उससे चार आँखे करने का साहस क्यों नहीं होता?

विसकुट-चाय खा-पीकर उस स्त्री और बाबू के विवाहित जीवन की लाखों-करोड़ों तुच्छ घटनाओं का विस्तृत इतिहास सुनकर जब मैं उस घर से निकला, उस समय दिन अधिक नहीं था। घर लौटने को जी नहीं चाहा। दिनान्त में काम-काज खतम करके सभी अपने डेरों या घरों को लौट रहे थे। दादा ठाकुर का होटल उस समय लोगों के नानाविध कल-हास्य से मुखरित हो रहा था—गूँज रहा था। मगर मुझे यह सब शोरगुल और आमोद जैसे ज़हर-सा जान पड़ने लगा।

अकेले राह-राह घूमकर केवल यही ख़याल आने लगा कि इस समस्या की मीमांसा किस तरह होती? बरमी लोगों मे विवाह का विशेष कुछ बँधा हुआ नियम नहीं है। विवाह

का भद्र अनुष्ठान-उत्सव भी होता है, और यह भी रीति है कि कोई नर-नारी तीन दिन एकत्र स्वामी-स्त्री की तरह रहकर एक पात्र में भोजन कर लें तो वह भी विवाह मान लिया जाता है। समाज उन्हें, उनके सम्बन्ध को, अस्वीकार नहीं करता। इस हिसाब से इस औरत को किसी तरह हीन दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। उधर उस बाबू की ओर से देखने पर, हिन्दू-विवाह के आईन-कानून से यह कुछ भी नहीं है। इस स्त्री को लेकर देश में जाकर वह किसी तरह वास नहीं कर सकता। हिन्दू-समाज उन्हें ग्रहण न करे न सही, लेकिन छोटे से लेकर बड़े तक—आपामर—साधारण जन—उन्हें घृणा की दृष्टि से देखेंगे, यह भी तो जन्म भर सहन करना कठिन है! या तो वह आदमी चिरकाल तक इस स्त्री को लेकर निर्वासित की तरह ज़िन्दगी भर देश के बाहर ही रहता और या उसे छोड़कर चला जाता, दो ही मार्ग थे। सम्भव है, उसके दादा ने छोटे भाई के लिए जो व्यवस्था की वही ठीक हो। अथच 'धर्म' शब्द का अगर कुछ अर्थ है—वह चाहे हिन्दू का हो चाहे अन्य किसी जाति का—तो इतनी बड़ी निष्ठुर, नीच, निन्दनीय बात कैसे ठीक हो सकती है, यह मेरी समझ में नहीं आता—यह मेरी बुद्धि से परे है।

ये सब बातें न हों, और कभी समय पाकर सोचकर देखूँगा; किन्तु वह कापुरुष जो आज बिना दोष के इस एकान्त-आश्रित सरल विश्वस्त नारी के परम स्नेह के ऊपर वेदना का

बोझ लादकर, उसे धोखा देकर, उसका उपहास करके भाग गया, इस बात का दुःख और खीझ जैसे मुझको भीतर-ही-भीतर जलाने लगी।

रास्ते के एक किनारे एक-दम आँख मूँदे चला जा रहा था। बहुत दिन पहले अभया का पत्र पढ़ने के लिए जिस चाय की दूकान में मैं गया था उसके दूकानदार ने शायद मुझे पहचान कर पुकारा—बाबू साहब, आइए।

एकाएक जैसे नींद-सी उचट गई। देखा, यह वही दूकान है, और वह रोहिणी का घर। चुपचाप उसके आह्वान की उपेक्षा न करके भीतर चला गया। एक प्याली चाय पीकर बाहर निकल आया। रोहिणी के दरवाज़े में धक्का देकर देखा भीतर से बन्द है। दो-एक बार जजीर खटकाते ही किवाड़ खुल गये। आँख उठाकर देखा, सामने अभया देख पड़ी।

मैंने कहा—तुम यहाँ कहाँ ?

अभया की आँखें और चेहरा लाल हो उठा। कोई जवाब दिये बिना ही वह पलक लगते-न-लगते ही भागकर अपनी कोठरी मे घुस गई और भीतर से कुण्डी बन्द कर ली। किन्तु लज्जा की जो मूर्ति सन्ध्या के उस धुँधले प्रकाश मे भी उसके चेहरे पर मैंने फूट उठते देखी, उससे जिज्ञासा करने को, प्रश्न करने को, कुछ बाकी नहीं रहा। केवल अभिभूत की तरह कुछ देर खड़े रहकर मैं चुपचाप लौटा जा रहा था, अकस्मात् मेरे दोनों कानों में जैसे दो तरह के रोने के स्वर एक साथ

बज उठे। एक उसी पापिष्ठ बंगाली का और दूसरा उसकी बरमी औरत का।

चला जा रहा था, किन्तु फिर लौट आकर इन लोगों के घर के आँगन में जाकर खड़ा होगया। मन ही मन कहा—ना, इस तरह मेरा चला जाना न होगा। अभ्यास के अनुसार यह मैंने बहुत सुना और लोगों को सुनाया है कि नहीं, नहीं, ऐसा करना उचित नहीं, यह अच्छा नहीं, यह भला नहीं, किन्तु अब और नहीं। क्या भला है, क्या बुरा है, क्यों भला है, किसकी क्या बात क्यों बुरी है, हो सकेगा तो इन सब प्रश्नों का विचार ख़ुद उसी के मुख से सुनकर, उसी के मुख की ओर देखकर विचार करूँगा, न हो सकेगा तो केवल पुस्तक के अक्षरों पर आँख रखकर फैसला करने का अधिकार मुझे नहीं है, तुम्हे नहीं है, और शायद स्वयं विधाता को भी नहीं है!

---

## दसवाँ परिच्छेद

एकाएक अभया दरवाज़ा खोल कर सामने आकर खड़ी हो गई और कहने लगी—जन्म-जन्मान्तर के अंध-संस्कार का धक्का पहले सँभाल न सकने के कारण ही मैं भाग गई थी श्रीकान्त बाबू, नहीं तो यह मेरी सत्य की लज्जा आप न संमझिएगा।

उसका साहस देखकर मैं तो अवाक् हो गया। अभया ने

कहा—आपको डेरे पर लौट कर जाने में आज कुछ देर होगी। रोहणी बाबू आते ही होंगे। आज हम दोनों जने आपके असामी हैं। विचार में हमारा अपराध प्रमाणित हो तो उसका दण्ड हम .खुशी के साथ ग्रहण करेंगे।

रोहिणी के नाम के साथ बाबू शब्द आज पहले-पहल मैंने अभया के मुँह से सुना।

मैंने पूछा—आप लौट कब आईं ?

अभया ने कहा—परसों। क्या हुआ था, यह जानने का कुतूहल निश्चय ही आपको रहा होगा। यह देखिए—

यह कह कर उसने अपना दाहना हाथ खोल कर मुझे दिखाया। मैंने देखा, चमड़े पर बेत की मार के गहरे निशान मौजूद हैं। लीलस्याह बन गये हैं।

अभया ने कहना शुरू किया—इस तरह के निशान और भी अनेक है, जिन्हे आपको नहीं दिखा सकती।

'जिन दृश्यों को देखकर मनुष्य का पौरुष हित-अहित के ज्ञान को खो बैठता है, यह दृश्य उन्हीं में से एक था। अभया ने मेरे स्तब्ध और कठिन मुख भाव को देखकर पल भर में ही सब समझ लिया। अब की तनिक हँसकर उसने कहा—किन्तु मेरे वहाँ से चले आने का यही एक-मात्र कारण नहीं है श्रीकान्त बाबू। यह तो मेरे सती-धर्म का एक साधारण पुरस्कार-मात्र है। वे स्वामी हैं और मैं उनकी विवाहिता पत्नी, इसका यह एक छोटा-सा चिह्न-मात्र है !

क्षण भर चुप रह कर वह फिर कहने लगी—मैंने जो स्त्री होकर भी उनकी अनुमति के बिना इतनी दूर आकर उनकी शान्ति नष्ट की, स्त्री-जाति की इतनी बड़ी स्पर्द्धा, इतनी मजाल ? मर्द भला कहीं इसे बरदाश्त कर सकता है ! यह उसी का दण्ड है। उन्होंने तरह-तरह से फुसला कर मुझे अपने डेरे पर ले जाते ही इसकी कैफियत माँगी कि मैं रोहिणी को साथ लेकर क्यों आई। मैंने कहा, स्वामी का घर कैसा होता है, यह तो मैं आज तक नहीं जानती। मेरे बाप हैं नहीं। मा थीं, वे भी मर गईं। देश मे खाने-पहनने को अन्न-वस्त्र देनेवाला कोई नहीं है। तुमको बार-बार चिट्ठी लिखने पर भी कुछ जवाब नहीं मिला—मैं इतना ही कह पाई थी कि उन्होंने एक बेत उठाकर कहा, अच्छा, आज उसका जवाब देता हूँ—

इतना कह कर अभया ने फिर अपने दाहने हाथ को एक बार स्पर्श किया।

उस अत्यन्त हीन, मनुष्यत्वशून्य, बर्बर, पशु के विरुद्ध मेरा सारा अन्तःकरण फिर मथित हो उठा; किन्तु जिस अंध-संस्कार के फलस्वरूप अभया आज मुझे देख पाते ही भाग कर छिप गई थी, वही अन्ध-संस्कार मेरे भी तो था। मैं भी तो उससे बचा हुआ न था। अतएव 'तुमने अच्छा किया' यह भी मैं न कह सका और 'तुमने अपराध किया, या तुमसे नहीं बना' यह बात भी ज़बान से न निकल सकी। दूसरे के एकान्त संकट के समय जब अपने विवेक और संस्कार में, स्वाधीन

चिन्ता और पराधीन ज्ञान में विरोध अथवा संघर्ष उठ खड़ा होता है तब उपदेश देने की चेष्टा करने के समान विडम्बना संसार में शायद ही और कोई हो।

कुछ देर चुप रह कर मैंने कहा—तुम्हारा वहाँ से चली आना अन्याय हुआ, यह मैं नहीं कह सकता; किन्तु—

अभया ने कहा—इस 'किन्तु' का विचार ही तो मैं आपके निकट चाहती हूँ श्रीकान्त बाबू। वे अपनी बरमी स्त्री को लेकर सुख से रहे, मैं इसके लिए कुछ अभियोग नहीं करती; लेकिन जब स्वामी केवल एक बेत के ज़ोर से स्त्री के सब अधिकार छीन लेकर अँधेरी रात में, परदेश में, उसे घर के बाहर निकाल देता है, तब भी, उसके बाद भी, विवाह में पढ़े गये वैदिक मन्त्रों के जोर से स्त्री-कर्तव्य की ज़िम्मेदारी बनी रहती है या नहीं, यही मैं आपके निकट जानना चाहती हूँ।

लेकिन मैं चुप ही रहा। अभया मेरे मुख पर अपनी स्थिर दृष्टि रख कर फिर कहने लगी—अधिकार को छोड़ कर तो कर्तव्य रहता नहीं श्रीकान्त बाबू, यह तो एक मोटी-सी बात है। उन्होंने भी तो विवाह के अवसर पर मेरे साथ ही साथ उन्हीं वैदिक मन्त्रों का उच्चारण किया था! किन्तु वे मन्त्र तो, केवल एक निरर्थक प्रलाप की तरह, उनकी प्रवृत्ति का, उनकी इच्छा का, दमन नहीं कर सके अर्थहीन उच्चारण उनके मुख से निकलने के साथ-ही-साथ मिथ्या में मिल गया; किन्तु वह क्या सारा बन्धन, सारा दायित्व ( ज़िम्मेदारी ), स्त्री होने के

कारण, केवल मेरे ही ऊपर डाला गया ? श्रीकान्त बाबू, आप एक 'किन्तु' कह कर ही थम गये। अर्थात् मेरा वहाँ से चली आना अन्याय नहीं हुआ; किन्तु—इस किन्तु का अर्थ क्या यही है कि जिसके स्वामी ने इतना बड़ा अपराध किया उसका, उस अपराध का, जन्मभर प्रायश्चित्त करने मे जीवन भर जीवन्मृत होकर रहना ही उसके नारी-जन्म की चरम सार्थकता है ? एक दिन मेरे मुख से विवाह के मन्त्र कहला लिये गये थे, वह उच्चारण करा लेना ही क्या जीवन मे एक-मात्र सत्य है, और सभी क्या एक-दम मिथ्या है ? इतना बड़ा अत्याचार, इतनी बड़ी निष्ठुरता, इतना बड़ा अन्याय, कुछ भी मेरे लिए एक-दम कुछ नहीं है ? फिर मुझे पत्नी बनने का अधिकार नहीं है, मुझे मा होने का अधिकार नहीं है; समाज, संसार, आनन्द किसी से सम्बन्ध रखने का मुझे कुछ भी अधिकार नहीं है ? एक निर्दय, मिथ्यावादी; बदचलन स्वामी ने बिना किसी दोप के अपनी स्त्री को निकाल दिया तो क्या इसी कारण उसका समस्त नारीत्व व्यर्थ, पगु होना चाहिए ? इसी लिए क्या भगवान् ने उसे स्त्री बनाकर ससार में भेजा था ? सब जातियों मे, सभी धर्मो मे, इसका प्रतिकार है—मैं हिन्दू के घर में पैदा हुई हूँ, इसी से क्या मेरे लिए सब दरवाज़े बन्द हो गये हैं श्रीकान्त बाबू ?

मुझे मौन देख कर अभया ने कहा—जवाब दीजिए न श्रीकान्त बाबू !

मैंने कहा—मेरे जवाब से क्या बनता-बिगड़ता है ? मेरे मतामत की तो आपने अपेक्षा नहीं की ?

अभया ने कहा—उसके लिए तो समय न था ।

मैंने कहा—ख़ैर, होगा । किन्तु आप जब मुझे देख कर भाग गईं तब मैं भी चला जा रहा था । मगर फिर क्यों लौट आया, आप जानती हैं ?

अभया ने कहा—ना ।

मैंने कहा—लौट आने का कारण यह है कि आज मेरा मन बहुत ख़राब हो रहा है । आज सबेरे मैंने एक औरत पर आपकी अपेक्षा कहीं अधिक निष्ठुर आचरण होते देखा है ।

इतना कह कर जहाज़-घाट की उस बरमी स्त्री की सारी कथा सुनाकर मैंने पूछा—इस औरत का क्या उपाय होगा, आप बता सकती हैं ?

अभया सुनकर काँप उठी । उसके बाद सिर हिला कर कहा—ना, मैं नहीं बता सकती ।

मैंने कहा—आज मैं आपको और भी दो स्त्रियों का इतिहास सुनाऊँगा । एक मेरी अन्नदा दीदी और दूसरी पियारी बाई । दुःख के इतिहास में इन दोनों का स्थान आपसे नीचे नहीं है ।

अभया चुप रही । मैंने अन्नदा दीदी की सारी कथा आदि से अन्त तक कह कर आँख उठाकर देखा, अभया काठ की पुतली की तरह स्थिर होकर बैठी है और उसकी दोनों आँखों

से आँसू बह रहे हैं। कुछ देर इसी तरह बैठे रह कर वह ज़मीन पर सिर रख कर प्रणाम करके उठ बैठी। फिर आँचल से आँसू पोंछ कर कहा—उसके बाद ?

मैंने कहा—उसके बाद मुझे मालूम नहीं। अब पियारी बाई का हाल सुनिए। उसका नाम जब राजलक्ष्मी था तभी से वह एक आदमी को प्यार करती थी। उसका प्यार कैसा था, आप जानती हैं ? रोहिणी बाबू आपको जैसा प्यार करते हैं, वैसा ही। यह मैं अपनी आँख से देख गया हूँ, इसी से तुलना कर सका। उसके बाद, बहुत समय के उपरान्त, एका-एक एक दिन दोनों आदमियों की मुलाकात हो गई। उस समय वह राजलक्ष्मी नहीं, पियारी बाई थी। किन्तु उसी दिन यह प्रमाणित हो गया कि राजलक्ष्मी मरी नहीं थी, वह पियारी बाई के भीतर हमेशा के लिए अमर बनी हुई थी।

अभया ने उत्सुक होकर कहा—उसके बाद ?

उसके बाद का सब हाल एक-एक करके सुनाकर मैंने कहा—उसके बाद एक दिन आया, जिस दिन उसी पियारी ने अपने प्राणाधिक प्रियतम को चुपचाप अपने से दूर हटा दिया।

अभया ने कहा—उसके बाद क्या हुआ, जानते हैं ?

मैंने कहा—जानता हूँ। उसके बाद कुछ नहीं है।

अभया ने एक साँस छोड़ कर कहा—आप क्या यही कहना चाहते हैं कि अकेली मैं ही अकेली नहीं हूँ, इस

तरह का अभाग्य औरतों को सदा से नसीब होता आया है और उस दुःख को सह लेना ही उनका सबसे बड़ा कृतित्व है ?

मैंने कहा—मैं कुछ भी कहना नहीं चाहता। केवल इतना ही आपको जताना चाहता हूँ कि स्त्रियाँ मर्द नहीं हैं। मर्दों और स्त्रियों के आचरण एक ही पलड़े पर तौले नहीं जा सकते, और वैसा करने की चेष्टा करने से सुविधा नहीं होती।

अभया ने कहा—क्यों नहीं होती, आप बतला सकते हैं ?

मैंने कहा—ना, वह भी नहीं बतला सकता। इसके सिवा आज मन ऐसा उद्भ्रान्त हो रहा है कि इन सब जटिल समस्याओं का निर्णय करने की शक्ति ही नही है। आपके प्रश्न पर मैं और किसी दिन विचार करके देखूँगा। हाँ, आज आपसे केवल यही बात कह जा सकता हूँ कि अपने जीवन में मैंने जो कई बड़े नारी-चरित्र देख पाये हैं वे सभी अपने दुःख के द्वारा ही मेरे मन मे बड़े बने हुए हैं। यह मैं क़सम खाकर कह सकता हूँ कि मेरी अन्नदा दीदी अपने समस्त दुःख का भार चुपचाप वहन करने के सिवा जीवन मे और कुछ न कर सकतीं। वह भार असह्य होने पर भी वह कभी आपके मार्ग में पैर रख सकतीं, यह बात सोचने से भी शायद दुःख से मेरा हृदय विदीर्ण हो जायगा।

तनिक चुप रहकर मैंने कहा—और वह राजलक्ष्मी। उसके त्याग का दुख कितना बड़ा है, सो तो मैं अपनी आँख

से ही देख आया हूँ। इस दुःख ही के जोर से वह मेरे समस्त हृदय पर अधिकार किये हुए है!

अभया ने चौंक कर कहा—तो आप ही क्या उनके—

मैंने कहा—ऐसा न होता तो वह मुझे यों बेखटके दूर हटा न दे सकती, हाथ से निकल जाने—खो जाने के—डर से प्राणपण से पास खींच रखना ही चाहती।

अभया ने कहा—इसका अर्थ यह है कि राजलक्ष्मी जानती हैं, आपके खोने का भय नहीं है!

मैंने कहा—केवल भय नहीं, राजलक्ष्मी जानती है, मुझे वह गँवा ही नहीं सकती। पाने और गँवाने के बाहर एक सम्बन्ध होता है। मेरा विश्वास है कि उसने उसे पा लिया है, इसलिए अब उसे मेरी भी जरूरत नहीं है। देखिए, मैंने स्वयं भी इस जीवन में कुछ कम दुःख नहीं पाये। इसी से यह समझा हूँ कि दुःख-पदार्थ अभाव भी नहीं है, शून्य भी नहीं है। भय से रहित जो दु ख है उसका उपभोग सुख के ही समान किया जा सकता है।

अभया ने बहुत देर स्थिर रहकर धीरे-धीरे कहा—मैं आपकी बात समझी श्रीकान्त बाबू! अन्नदा दीदी और राज-लक्ष्मी ने दुःख को ही जीवन की पूँजी के रूप मे पाया था। लेकिन मेरे पास तो वह पूँजी भी नहीं है! स्वामी के निकट मैंने पाया है अपमान—केवल लाञ्छना और ग्लानि लेकर ही मैं वहाँ से लौट आई हूँ। यह पूँजी लेकर ही क्या जीवन बिताने को आप मुझसे कहते हैं!

प्रश्न बड़ा कठिन था। मुझे निरुत्तर देखकर अभया ने फिर कहा—इन दोनों के साथ मेरे जीवन का कहीं पर भी मेल नहीं है श्रीकान्त बाबू? संसार में सभी नर-नारी एक साँचे में ढले हुए नहीं होते, उनके सार्थक होने का रास्ता भी जीवन में केवल एक ही नहीं है। उनकी शिक्षा को, उनकी प्रवृत्ति को, उनके मन की गति को केवल एक ही दिशा में चलाकर वे सफल अथवा कृतकृत्य नहीं किये जा सकते। इसी से समाज मे इसकी व्यवस्था रहना उचित है। मेरे ही जीवन को आप आदि से अन्त तक ज़रा एक दफे ध्यान देकर देख जाइए। मुझे जिन्होंने ब्याहा था उनके निकट आये बिना भी मेरे लिए और उपाय न था और यहाँ आने पर भी कोई उपाय नहीं हुआ। इस समय उनकी स्त्री, उनके बाल-बच्चे, उनका प्यार, कुछ भी मेरा अपना नहीं है। तो भी क्या उन्हीं के पास, उनकी एक रखैल या वेश्या की तरह, पड़े रहने से ही क्या मेरा जीवन फूल-फल उठकर सार्थक होता श्रीकान्त बाबू? और, उस निष्फलता के दुःख को ही जिन्दगी भर लादे घूमना ही क्या मेरे नारी-जन्म की सबसे बड़ी साधना है? रोहिणी बाबू को तो देख गये हैं आप? उनका प्यार भी आपसे छिपा नहीं है? ऐसे आदमी के सारे जीवन को पंगु कर देकर अब मैं अपने को सती नहीं कहलाना चाहती श्रीकान्त बाबू।

हाथ उठाकर अभया ने दोनों आँखों के आँसू पोंछे और फिर रुँधे हुए गले से कहा—एक रात्रि भर का विवाह का

अनुष्ठान, जो अब स्वामी और स्त्री दोनों की दृष्टि में स्वप्न के समान ही मिथ्या होगया है, उसी को ज़बर्दस्ती ज़िन्दगी भर सत्य कह कर खड़ा रखने के लिए इस इतने बड़े प्यार को क्या मैं एकदम व्यर्थ कर दूँ? जिन विधाता ने प्यार दिया है वे क्या इसी से ख़ुश होंगे? मुझे आप जो चाहे समझिएगा, मेरी सन्तानों को आप जो चाहे कहकर पुकारिएगा, किन्तु यदि मैं जीती रही श्रीकान्त बाबू, तो मेरे निष्पाप विशुद्ध प्रेम के बच्चे मनुष्यता की दृष्टि से जगत् मे किसी की अपेक्षा छोटे या हीन न होंगे, यह मैं आपसे निश्चित रूप से कहे रखती हूँ। मेरे गर्भ से जन्म लेने को वे अपना दुर्भाग्य कभी न समझेंगे। उन्हें दे जाने के लायक चीज़ शायद उनके मा-बाप के पास कुछ भी न रहेगी, किन्तु उनकी माँ उन्हें यह इतना विश्वास अवश्य दे जायगी कि वे सत्य के भीतर पैदा हुए है और सत्य से बढ़कर पूँजी संसार में उनके लिए और नहीं है। इस सत्य से वे किसी तरह भ्रष्ट न हो सकेंगे। यदि वे सत्य से भ्रष्ट हुए तो बिलकुल तुच्छ और निकम्मे हो जायँगे।

अभया चुप हो रही। किन्तु सारा आकाश जैसे मेरी आँखों के आगे काँपने लगा। क्षण भर के लिए जान पड़ा, जैसे इस औरत के मुख की बातें मूर्तिमान् होकर बाहर निकल कर हम दोनों को घेरे खड़ी हैं। ऐसा ही है। सत्य जब सचमुच ही मनुष्य के हृदय से निकल कर सामने उपस्थित होता है तब जान पड़ता है, वह सजीव है, जैसे उसके रक्त-

माँस का शरीर है; जैसे उसके भीतर जान है। 'ना' कहकर अस्वीकार करने पर जैसे वह आघात करके कहेगा—चुप रहो! मिथ्या तर्क करके अन्याय की सृष्टि न करना।

अभया सहसा एक सीधा प्रश्न कर बैठी। बोली—अच्छा, आप ख़ुद क्या हम लोगों को अश्रद्धा की दृष्टि से देखेंगे श्रीकान्त बाबू? अब हमारे यहाँ न आवेंगे?

इसका उत्तर देने में मुझे कुछ इधर-उधर करना पड़ा—बग़लें झाँकनी पड़ीं। उसके बाद मैंने कहा—अन्तर्यामी के आगे शायद आप लोग निष्पाप हैं, निर्दोष हैं, शायद आपका कल्याण ही करेंगे; किन्तु मनुष्य तो मनुष्य का हृदय नहीं देख पाता। वह उनके लिए तो प्रत्येक के हृदय का अनुभव करके विचार करना सम्भव नहीं। हर एक आदमी के लिए अलग-अलग नियम अगर बनाये जायँ तो उनके समाज के काम-काज की शृङ्खला सब टूट जायगी।

अभया ने कातर होकर कहा—जिस धर्म में, जिस समाज में मुझे अपनी गोद में उठा लेने की उदारता है, जिस धर्म और समाज में मेरे लिए स्थान है, उसी धर्म और समाज में जाकर आश्रय लेने के लिए आप क्या मुझसे कहते हैं?

इसका क्या उत्तर दूँ, यह मुझे न सूझ पड़ा।

अभया ने कहा—अपने आदमी होकर अपने आदमी को आप लोग ऐसे सङ्कट के समय आश्रय न दे सकेंगे, वह आश्रय हम लोगों को ग़ैर के निकट भिक्षा माँगकर ग्रहण करना

होगा ? इससे क्या आप लोगों का गौरव बढ़ेगा श्रीकान्त बाबू !

इसके उत्तर में केवल एक लम्बी साँस छोड़ने के सिवा और कुछ भी मेरे मुँह से निकल न सका।

अभया ने भी स्वयं कुछ देर चुप रहने के बाद कहा—खैर, आप लोग जगह न दीजिए, मुझे सान्त्वना यही है कि जगत् में आज भी एक ऐसी बड़ी जाति है जो प्रकट रूप से और बिना किसी हिचकिचाहट के हमें स्थान दे सकेगी।

उसकी इस बात से कुछ चोट खाकर मैंने कहा—सब स्थलों में आश्रय देना ही क्या भला काम मान लेना होगा ?

अभया ने कहा—इसका प्रमाण तो आपके हाथ में ही है श्रीकान्त बाबू—आपके सामने ही है। पृथ्वी पर कोई भी अन्याय अधिक दिन नहीं फल-फूल सकता। यह बात अगर सच है तो क्या वह जाति जिसका जिक्र मैं अभी कर चुकी हूँ, अन्याय को ही प्रश्रय देकर दिन-दिन बढ़ती, श्रीसम्पन्न होती जा रही है, और आप लोग न्याय-धर्म का हाथ पकड़ कर ही क्या प्रतिदिन क्षुद्र और तुच्छ होते जा रहे हैं ? यही क्या कहना होगा ? हम भी तो यहाँ थोड़े ही दिन हुए जब आये हैं। किन्तु इसी बीच में मैं देख रही हूँ, मुसलमान इस देश में बहुत अधिक बढ़ते जा रहे हैं। सुना है, ऐसा कोई गाँव नहीं, जहाँ एक घर भी मुसलमान का न हो, जहाँ एक भी

मसजिद न हो। शायद हम लोग अपनी आँखों से देख जा सकेंगे, किन्तु ऐसा दिन शीघ्र ही आवेगा, जिस दिन हमारे देश की तरह यह बरमा-देश भी एक मुसलमान-प्रधान स्थान हो उठेगा। आज सबेरे ही जहाज़-घाट पर जो अन्याय देख कर आपका मन अब तक खराब हो रहा है, आप ही कहिए, कोई मुसलमान बड़ा भाई क्या धर्म और समाज के भय से इतने बड़े षड्यन्त्र का, इतनी बड़ी हीनता का आश्रय लेकर ऐसी एक आनन्दमय गिरस्ती को मिटा कर भाग खड़ा होता! उसे क्या ऐसा करने की जरूरत होती? बल्कि वह ठीक इसके विपरीत करता। वह सभी को अपने दल में खींच लेकर आशीर्वाद देकर बड़े भाई के सम्मान और मर्यादा के साथ घर लौट जाता! दोनों में से क्या करने से सत्य धर्म बना रहता श्रीकान्त बाबू?

गहरी श्रद्धा के साथ मैंने पूछा—अच्छा, आप तो देहात की लड़की हैं। आपने इतनी बातें कैसे जानीं? इतनी बुद्धि, इतना ज्ञान कहाँ से पाया? मुझे तो जान पड़ता है कि इतना बड़ा उदार हृदय हमारे पुरुष-समाज में भी अधिक लोगों का न होगा। आप जिसकी मा होंगी उसे कम से कम मैं तो बद-नसीब किसी तरह न समझ सकूँगा।

अभया ने अपने मलिन मुख पर कुछ हँसी का आभास लाकर कहा—तो श्रीकान्त बाबू, मेरा प्रश्न यह है कि मुझे अपने बीच से अलग करके ही क्या हिन्दू-समाज अधिक पवित्र

हो उठेगा ? उसे क्या किसी तरह, किसी तरफ से, समाज को हानि न पहुँचेगी ?

तनिक स्थिर रह कर फिर ज़रा हँस कर उसने कहा—लेकिन मैं किसी तरह इस समाज के बाहर न जाऊँगी। सब अपयश, सारा कलङ्क, संपूर्ण दुर्भाग्य शिरोधार्य करके ही मै हमेशा आप लोगों की ही होकर रहूँगी। अपनी एक भी सन्तान को यदि किसी दिन मैं मनुष्य बना सकूँगी तो उस दिन मेरा सारा दुःख सार्थक हो जायगा, इसी आशा को लेकर ही मैं जीवित रहूँगी। यथार्थ मनुष्य ही मनुष्यों मे बड़ा है या उसके जन्म का लेखा जगत् में बड़ा है, यह मुझे जाँच कर देखना होगा।

---

## ग्यारहवाँ परिच्छेद

मनोहर चक्रवर्ती नाम के एक विज्ञ व्यक्ति के साथ मेरा आलाप-परिचय हुआ था। दादा ठाकुर के होटल मे एक हरि-संकीर्तन करनेवाला दल था। ये महाशय पुण्य-सञ्चय करने के अभिप्राय से बीच-बीच मे आकर उसमे शामिल हुआ करते थे। किन्तु वे कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं, यह कुछ मेरा जाना नही था। इतना ही केवल सुना था कि उनके पास बहुत रुपये हैं और वे हर पहलू से बड़े हिसाबी आदमी हैं।

मालूम नहीं क्यों, मेरे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न होकर एक दिन उन्होंने एकान्त में पाकर मुझसे कहा—देखिए श्रीकान्त बाबू,

आपकी अवस्था अभी कम है। जीवन में अगर आपको उन्नति करना चाहिए तो मैं आपको कुछ ऐसे सत्परामर्श दे सकता हूँ जो लाख रुपये मूल्य के हैं। मैंने ख़ुद जिनसे ये उपदेश पाये थे उन्होंने संसार में कैसी उन्नति की थी, सुनिएगा तो सन्नाटे में आजाइएगा। वे केवल पचास रुपये महीना पाते थे, किन्तु मरते समय घर-द्वार, तालाब, बाग़, ज़मीन-जोत छोड़ कर दो हज़ार के लगभग नगद रुपये भी रख गये। कहिए, यह क्या सहज बात है! अपने मा-बाप के आशीर्वाद से मैं ख़ुद भी तो—

किन्तु अपनी बात इसी जगह दबा कर उन्होंने कहा—सुनता हूँ, आप तनख्वाह तो मोटी ही पाते हैं, तकदीर आपकी बहुत अच्छी है; लेकिन फ़िज़ूलख़र्ची आप बहुत अधिक करते हैं! भीतर-भीतर खबर लेकर मैंने देखा है, दुःख से छाती फट जाती है! आप देखते ही हैं, मैं किसी की बात में नहीं रहता; लेकिन आप मेरे कहे के माफ़िक़, अधिक दिन नहीं; केवल दो साल चल कर देखिए! मैं आपसे वादा करता हूँ, देश में लौट कर आप शायद अपना ब्याह तक कर सकेंगे।

मालूम नहीं, उन्होंने किस तरह यह खबर प्राप्त कर ली कि इस सौभाग्य के लिए मैं भीतर-ही भीतर इस तरह लालायित हो उठा हूँ। लेकिन हाँ, उन्होंने यह स्वयं प्रकट किया कि भीतर-ही-भीतर खबर लेने के सिवा वे किसी की किसी बात में नहीं रहते।

ख़ैर वे चाहे जो हों, उनके उस उन्नति के बीजमन्त्र-स्वरूप सत्परामर्श के लिए मेरे मन में लोभ हो आया। उन्होंने कहा—देखिए; दान-वान करने की बात छोड़ दीजिए। चोटी का पसीना एँड़ी तक बहा कर रुपया कमाया जाता है, कमर भर मिट्टी खोदने से भी पैसे के दर्शन नहीं होते। आज-कल दुनिया में ऐसा पागल कौन है जो इतनी मेहनत की कमाई ग़ैरों को बाँटता होगा? अपने लड़के-बालों और स्त्री के लिए रख कर तब दूसरों का उपकार किया जायगा? इस बात को छोड़ दीजिए। किन्तु देखिए जिस आदमी के घर मे पैसे की तंगी देखिएगा; ऐसे आदमी को कभी मुँह न लगाइएगा। अधिक नहीं, दो-चार दिन आने-जाने के बाद ही वह आप ही अपनी गिरस्ती के कष्ट की बात उठा कर दो-चार रुपये माँग बैठेगा। दे दिया तब तो पैसा गया ही, किन्तु बाहर का झगड़ा भी अपने घर में खींच लाना हुआ। दो-दो रुपयों की ममता तो कोई सचमुच छोड़ ही नहीं सकता, तकाज़ा करना ही पड़ता है। तब दौड़-धूप कीजिए, झगड़ा-झंझट कीजिए। क्यों, हमें इसकी क्या ज़रूरत है?

मैंने सिर हिलाकर कहा—सच तो है।

उन्होंने उत्साहित होकर कहा—आप भले आदमी के लड़के हैं, इसी से चटपट समझ गये। लेकिन इन छोटी जाति के लोहा पीटनेवालों को तो भला समझाओ हरामज़ादे साले सात जन्म में भी नहीं समझ पावेंगे। सालों के पास अपना एक

पैसा नहीं है, तो भी दूमरे से कर्ज़ लेकर दूसरे आदमी को देंगे—ये छोटी जाति-वाले ऐसे ही अहमक हैं !

तनिक चुप रह कर कहने लगे—तो बस, यह निश्चित है कि कभी किसी को रुपये उधार न देना चाहिए। आकर कहते हैं, बड़ी तकलीफ में हैं ! अरे भई, तकलीफ में हो तो मुझे क्या ! और, अगर सचमुच ही कष्ट है तो दो तोले सोना घर से लाकर रख न जाओ, देता हूँ दस रुपये उधार ! क्यों साहब, है न ठीक ?

मैने कहा—जी हाँ; ठीक तो है।

उन्होंने कहा—ठीक तो है ही ! एक सौ दफे ठीक है ! और देखिए, झगड़ा-बखेड़ा जहाँ होता हो उस जगह कभी न जाना—किसी आदमी का ख़ून हो जाय तो भी नहीं। हमें ज़रूरत ही क्या है जाने की ? अगर बीच-बचाव करोगे तो भी दो-एक हाथ अपने खाते में लग जायेंगे। इसके सिवा एक-न-एक पक्ष साक्षी मान बैठेगा। तब दौड़ो गवाही देने के लिए अदालत। बल्कि लड़ाई थम जाने पर जी चाहे तो एक दफे घूम आओ, दो भली बाते सुनाओ—उपदेश दो। चार आदमी तुम्हारी तारीफ करेंगे। क्यों साहब, है न ठीक ?

तनिक दम लेकर फिर कहा—और इन लोगों की बीमारी ईमारी में, मैं तो महाशय, उस मुहल्ले मे ही पैर नहीं रखता। देखते ही कह बैठेंगे, दादा, मरता हूँ; इस विपत्ति मे दो रुपये देकर सहायता करो। महाशय, आदमी के मरने-जीने की बात

तो कही नहीं जा सकती। ऐसे समय रुपये देना और उन्हें जल में फेंकना एक ही बात है—बल्कि पानी में डाल देना अच्छा, लेकिन इन्हें देना ठीक नहीं। कुछ न होगा तो कहेंगे, आओ, रात भर जागो। अच्छा महाशय मै तो जाऊँ पराई बीमारी में रात भर जागने, किन्तु इस परदेश मे—पराये शहर में—मुझे अगर कुछ—मा शीतला न करें—मैं यह नाक पकड़ता हूँ, कान मलता हूँ मा!—

यों कहकर, दाँतों से जीभ काटकर, एक वार नाक मे हाथ लगाकर और अपने हाथ से अपने दोनों कान पकड़कर एक नमस्कार करके उन्होंने कहा—हम सब उन्हीं के चरणों की शरण मे तो पड़े है; किन्तु आपही कहिए, अगर ऐसी विपत्ति आ पड़ी तो फिर मुझे कौन देखेगा ?

अब की मैं हाँ में हाँ नहीं मिला सका। मुझे मौन देखकर शायद मन ही मन वे कुछ दुबधा में पड़ गये। बोले—साहब लोगों को देखिए। वे भला कभी ऐसी जगह पर जाते है ? कभी नहीं। अपने नाम का सिर्फ एक कार्ड भेज दिया; बस! होगया! इसी से उनकी उन्नति को देखिए! उसके बाद आराम हो जाने पर फिर वैसे ही जाना-आना, मिलना-जुलना शुरू कर दिया। महाशय, किसी के झंझट मे कभी न जाना ही ठीक है।

दफ़्र जाने का समय होते देख कर मैं उठ खड़ा हुआ। इस विज्ञ पुरुष के सत्परामर्श के जोर से इतनी अवस्था में

मेरी ख़ूब अधिक मानसिक उन्नति का होना संभव न था। यहाँ तक कि इन बातों को सुनकर मन में कुछ बहुत हलचल भी नहीं उठी। कारण, देहात में भी ऐसे विज्ञ व्यक्तियों का एक-दम अभाव मुझे नहीं देख पड़ा। और देहात के ऐसे लोग और बातों के लिए चाहे जितने बदनाम हों, किन्तु ऐसे अयाचित उपदेश देने में कुछ भी कृपणता करते हैं, यह अपवाद भी नहीं सुन पाया। देश के लोगों ने यह मान भी लिया है कि यह परामर्श सुपरामर्श है तथा सामाजिक जीवन मे चाहे उतना न हो, लेकिन पारिवारिक जीवन में, जीवन-यात्रा के कार्य में यह सर्व-सम्मत साधु उपाय है। हिन्दू माता-पिता के विरुद्ध इतनी बड़ी झूठी बदनामी का प्रचार करने में शायद सी० आई० डी० पुलिस के कर्मचारियों का भी विवेक बाधा पहुँचायेगा कि हिन्दू-गृहस्थ के घर का कोई लड़का अगर अक्षरशः इस सत्परामर्श का पालन करे तो उससे उसके मा-बाप असन्तुष्ट होते हैं।

ख़ैर, वह चाहे जो हो, किन्तु उन विज्ञ महाशय की इस प्रतिज्ञा के भीतर कितना बड़ा अपराध था, यह भगवान् ने दो सप्ताह के भीतर ही इन्हीं की सहायता से मेरे निकट प्रमाणित कर दिया।

उस दिन के बाद मैं फिर अभया के घर नहीं गया यह सत्य है कि उसकी समस्त अवस्था के साथ उसकी बातों को मिला लेकर आदि से अन्त तक इस व्यापार को ज्ञान के द्वारा

सुसङ्गत मैं देख सकता था। यह भी सत्य है कि उसके विचार की स्वाधीनता, उसके आचरण की निर्भीकता, उन दोनों का परस्पर का अपरूप और असाधारण स्नेह मेरी बुद्धि को निरन्तर उसी ओर खींचता था। तो भी मेरा पैदाइशी संस्कार किसी तरह उधर पैर नहीं बढ़ाना चाहता था। केवल यही खयाल होता था कि मेरी अन्नदा दीदी कभी यह काम न करती। कहीं दासी-वृत्ति करके लांछना, अपमान, दुःख सहकर भी बल्कि अपना जीवन बिता देतीं, किन्तु ब्रह्माण्ड के सारे सुखों के बदले में भी उस आदमी के साथ गिरस्ती करने को न राज़ी होतीं जिसके साथ उनका ब्याह नहीं हुआ। मैं जानता था, उन्होंने भगवान् को अनन्यभाव से आत्म-समर्पण कर दिया था। अपनी उस साधना के भीतर उन्होंने पवित्रता की जो धारणा, कर्तव्य का जो ज्ञान प्राप्त किया था, वह अभया की सुतीक्ष्ण बुद्धि की मीमांसा के आगे एकदम लड़कों का खिलवाड़ था?

एकाएक अभया की एक बात याद पड़ गई। उस समय अच्छी तरह तह तक पहुँचकर उसे समझाने का अवकाश नहीं पाया था। उस दिन उसने कहा था—श्रीकान्त बाबू, दुःख-भोग करने के भीतर एक भारात्मक मोह है। मनुष्य ने बहुत युगों की जीवन-यात्रा में यह देखा है कि कोई भी बड़ा फल भारी दुख का भोग किये बिना नहीं पाया जाता। उसकी जन्मजन्मान्तर की अभिज्ञता ने आज इसी भ्रम को एकदम सत्य

मान लिया है कि जीवन की तुला में एक पलड़े पर जितना अधिक, जितने बड़े दुख का वोझ लादा जाता है, दूसरी ओर दूसरे पलड़े पर, उतना ही अधिक, उतने ही वड़े सुख का बोझ जमा होता रहता है। इसी से तो मनुष्य जब संसार में सहज और स्वाभाविक प्रवृत्तियों को स्वेच्छा से त्याग करके 'तपस्या करता हूँ' यह समझकर निराहार घूमता फिरता है तब उसके या अन्य किसी के मन में इस बारे में रत्ती भर भी सन्देह नहीं उठता कि उसके लिए और कहीं चौगुना भोजन जमा हो रहा है। इसी कारण जब कोई त्यागी तपस्वी दारुण शीत में गले तक पानी मे पैठ कर घोर गर्मी की ऋतु मे करारी धूप के नीचे अग्नि-कुण्ड वनाकर नीचे सिर और ऊपर पैर करके लटकता है तब उसके दुःख-भोग की कठोरता देखकर दर्शकों की भीड़ केवल दुःख ही नहीं भोगती, बल्कि उसकी इस तपस्या पर एकदम मुग्ध हो जाती है। उसके पर-जन्म के भविष्य आराम का असम्भव बड़ा हिसाव लगा कर प्रलुब्ध चित्त से वे ईर्ष्याकुल हो उठते हैं। और यह कह कर कि यह पैर ऊपर करके उलटा टँगा हुआ व्यक्ति ही ससार मे धन्य है, नर-देह धारण करके यही यथार्थ कार्य कर रहा है, वे कुछ भी नहीं करते या कर पाते, वृथा ही जीवन बिता रहे हैं, अपने को सहस्र धिक्कार देते-देते मन खराव करके अपने घर जाते हैं। श्रीकान्त बाबू, यह सत्य है कि सुख के लिए दुःख स्वीकार करना पड़ता है; लेकिन इसी लिए यह न तो स्वाभाविक है और

न स्वतःसिद्ध ही कि इस जीवन को उलटा लेकर चाहे जिस तरह हो कुछ दुःख-भोग करते रहने से ही सुख आकर सिर पर लद जाता है। यह इस जन्म मे भी सत्य नहीं है और परलोक में भी सत्य नहीं।

मैंने कहना चाहा था—विधवा का ब्रह्मचर्य—

अभया ने मुझे बीच ही मे रोक कर कहा—विधवा का आचरण कहिए, उसके साथ ब्रह्म का रत्ती भर भी सम्बन्ध नहीं। मैं यह नहीं मानती कि विधवा का चाल-चलन ही ब्रह्म-लाभ का उपाय है। वास्तव में वह तो कुछ भी नहीं है। कुमारी, सधवा, विधवा सभी अपने-अपने मार्ग मे चल कर ब्रह्म-लाभ कर सकती हैं। इसके लिए विधवा के चाल-चलन ने ही कुछ ठेका नहीं ले रक्खा है।

मैंने हँस कर कहा था—अच्छी बात है, न हो यही सही। विधवाओं के आचरण को ब्रह्मचर्य न कहो। नाम से क्या आता-जाता है?

अभया ने बिगड़ कर कहा था—नाम ही तो सब है श्रीकान्त बाबू। शब्द या नाम के सिवा संसार में है क्या? गलत नाम के द्वारा मनुष्य को बुद्धि, विचार और ज्ञान की धारा को कितनी बड़ी भूल की राह मे चलाया जाता है, यह क्या आप जानते नहीं? इस नाम की भूल से ही तो लोग सभी देशों में, सभी युगों मे विधवा के चाल-चलन को ही सबसे श्रेष्ठ समझते आये हैं। यही निरर्थक त्याग की निष्फल महिमा है

श्रीकान्त बाबू; यह एकदम व्यर्थ है; एकदम भूल है। मनुष्य को इस लोक और परलोक में पशु बना डालने के लिए इससे बड़ी दमबाजी और नहीं है।

उस समय बहस न करके मैं चुप हो गया था। वास्तव में बहस करके उसे परास्त करना एक प्रकार से एकदम असम्भव था। पहले पहल जहाज़ पर परिचय हुआ था तब डाक्टर बाबू ने अभया का केवल बाहरी रङ्ग-ढङ्ग देखकर ही मजाक करके कहा था—"औरत बड़ी ही 'फ़ारवर्ड' है।" किन्तु उस समय हम दोनों में से किसी ने भी यह न सोचा था कि इस फारवर्ड शब्द का अर्थ कहाँ जाकर पहुँच सकता है। उस समय मेरी यह धारणा न थी कि यह औरत अपने समस्त अन्तःकरण तक को किस तरह अकुण्ठित तेजस्विता के साथ बाहर खींच लाकर सारी दुनिया के सामने रख सकती है, लोगों के मतामत की कुछ भी पर्वा नहीं करती। अभया केवल अपने मत को ठीक या अच्छा प्रमाणित करने के लिए ही बहस नहीं करती थी; वह अपने कार्य को बलपूर्वक विजयी बनाने के लिए ही जैसे युद्ध करती थी। यह न था कि उसका काम कुछ और हो और मन कुछ और। कहना और करना एक-सा होने के कारण ही शायद अक्सर उसकी बात का जवाब उसके सामने मैं न खोज पाता था जैसे एक तरह से सिटपिटा जाता था लेकिन डेरे पर लौट आने पर ख़याल आता था कि यह तो उसका ख़ासा जवाब था!

ख़ैर, वह चाहे जो हो, उसके सम्बन्ध में आज भी मेरे मन की दुबिधा दूर नहीं हुई, यह बिलकुल ठीक है। जितना ही मै आप अपने से प्रश्न करता था कि इसके अलावा अभया के लिए और उपाय क्या था, और गति ही क्या थी, उतना ही मन जैसे उसके विरुद्ध बिगड़ खड़ा होता था। जितना ही मैं अपने से कहता था कि अभया पर अश्रद्धा करने का मुझे लेशमात्र अधिकार नहीं है, उतना ही एक प्रकार की अव्यक्त वितृष्णा ( खीज ) से जैसे हृदय भर उठता था। मुझे खयाल आता है, इस तरह के कुण्ठित, अप्रसन्न मन से मेरे दिन बीतते रहने के कारण ही मैं न उसके निकट जा ही सकता था और न उसे अपने से एकदम दूर हटा देने में ही समर्थ होता था।

ऐसे ही समय एकाएक एक दिन शहर के बीच प्लेग ने आकर अपने मुख का आवरण हटाकर अपना काला चेहरा प्रकट करके लोगों को दर्शन दिये। हाय रे! उसको समुद्र के पार रोक रखने के लिए किये गये लाखों उपाय, प्रभुओं की निष्ठुर से निष्ठुर सतर्कता, सभी दम भर मे जैसे मिट्टी मे मिल गया। लोगों के आतङ्क की सीमा नहीं रही। अथच शहर मे चौदह आने आदमी या तो नौकरी पेशा थे या रोज़गारी। एकदम शहर छोड़कर दूर भागने का भी उपाय न था। यह वही दशा थी, जैसे किसी ने चारों ओर से बन्द घर मे आतशबाज़ी की छछूँदर में आग लगाकर उसे छोड़ दिया हो।

भय के मारे इस मुहल्ले के आदमी, औरत, बाल-बच्चे

वग़ैरह का हाथ पकड़कर पोटला-पोटली कन्धे पर लादकर उस महल्ले दौड़े जाते थे, और उस महल्ले के आदमी ठीक इसी समय, इसी तरह, इस महल्ले में भाग आते थे।

चूहे का नाम लेते ही फिर किसी को होश न रहता था। वह मर गया या अभी जिन्दा है, यह सुनने के पहले ही लोग भागना शुरू कर देते थे। जान पड़ता था, जैसे लोगों के प्राण पेड़ के पके हुए फलों की तरह प्लेग की आब-हवा से एक ही रात में पक उठकर डठल में लटक रहे हैं; किसके प्राण कब पके हुए फल की तरह टुप-से डठल से नीचे टपक पड़ेंगे, इसका कुछ निश्चय न था।

उस दिन शनिवार था। किसी एक मामूली काम के लिए सवेरे ही मैं डेरे से निकल पड़ा था। शहर के बीच एक गली के भीतर से बड़ी सड़क पर पहुँचने के लिए मैं तेज़ चाल से जा रहा था। इतने मे देखा, एक बहुत पुराने और जीर्ण घर के दुमज़िले के बरामदे में खड़े हुए विज्ञ मनोहर चक्रवर्ती महाशय बेतहाशा मुझे पुकार रहे हैं।

मैंने हाथ हिलाकर कहा—इस समय फ़ुरसत नहीं है।

उन्होंने बहुत ही घिघियाकर कहा—दो ही मिनट के लिए सिर्फ ज़रा ऊपर चले आइए श्रीकान्त बाबू! मैं बड़ी विपत्ति मे पड़ा हूँ!

मजबूर होकर अत्यन्त अनिच्छा रहने पर भी, ऊपर जाना पड़ा। वही तो मै कभी-कभी सोचता हूँ कि मनुष्य का प्रत्येक

चलना-फिरना आना-जाना भी एकदम ठीक किया हुआ है! नहीं तो मेरा काम भी कुछ ऐसा भारी या ज़रूरी न था, और आज से पहले मैंने कभी इस गली के भीतर क़दम भी न रक्खा था, फिर आज सबेरे ही यहाँ इस तरह आकर कैसे पहुँच गया?

पास जाकर मैंने कहा—आप तो इधर बहुत दिनों से मेरे उधर नहीं गये! आप क्या इसी घर में रहते हैं?

उन्होंने कहा—नही साहब, बारह-तेरह दिन से यहाँ उठ आया हूँ। एक तो महीने भर से डिसेंट्री (एक रोग) में कष्ट भोग रहा हूँ, उसके ऊपर हमारे महल्ले मे प्लेग दिखाई दिया। क्या करूँ महाशय, उठना-बैठना दूभर था, तो भी चटपट वहाँ से भाग आया।

मैंने कहा—अच्छा किया।

उन्होंने कहा—अच्छा करने से क्या होगा साहब, मेरा 'कंबाइड हैंड' साला बड़ा बदजात है। कहता है, नहीं रहूँगा, चला जाऊँगा। जरा हरामजादे को अच्छी तरह धमका तो दीजिए।

मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। किन्तु उसके पहले इस 'कंबाइंड हैंड' पदार्थ की कुछ व्याख्या करने की आवश्यकता है। कारण, जिनका यह जाना नहीं है कि पैसे के लिए ये पछाहीं लोग जिसे न कर सके ऐसा दुनिया मे कोई काम नहीं, वे सुनकर विस्मित होंगे कि इस अँगरेजी शब्द के अर्थ हैं ये दुबे, चौबे, तेवारी,

मिसिर वग़ैरह हिन्दुस्तानी ब्राह्मण। इस देश में जिनके चौके के पास से कोई निकल जाता है तब जो उछल पड़ते हैं वे ही वहाँ रसोई बनाते हैं, जूठे बर्तन माँजते हैं, तमाखू भर देते हैं और आफिस जाने के समय बाबू लोगों के—चाहे वे किसी भी जाति के हों—जूते साफ करते हैं। यह अवश्य है कि दो रुपये अधिक वेतन देकर ही इन द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी आदि पूज्य व्यक्तियों में नौकर और ब्राह्मण के 'फंक्शन' एक में कंबाईंड करना होता है। मूर्ख उड़िया या बङ्गाली ब्राह्मणों को आज भी इस काम के लिए कोई राज़ी नहीं कर पाया। राज़ी हुए हैं तो केवल ये हिन्दुस्तानी ब्राह्मण ही। कारण पहले ही कह चुका हूँ कि पैसा मिले तो कुसंस्कार छोड़ते हिन्दुस्तानियों को एक मिनट की देर नहीं लगती। अगर आपको मुर्ग़ी का मांस या अण्डे पकवाने हों तो महीने में वेतन के सिवा और चार आने या आठ आने पैसे अधिक दे दीजिए। कारण, 'मूल्य ही के द्वारा सब शुद्ध हो जाता है' शास्त्र के इस वचनार्द्ध का यथार्थ तात्पर्य हृदयङ्गम करने में और इस शास्त्र-वाक्य पर अविचलित श्रद्धा रखने में आज तक अगर कोई समर्थ हुआ है तो ये हिन्दुस्तानी लोग ही, यह बात हम लोगों को स्वीकार करनी ही होगी।

किन्तु यह मेरी समझ में न आ सका कि मनोहर बाबू के इस 'कबाइंड हैड' को मैं क्यों धमकाऊँ। मनोहर बाबू का यह हैड अथवा चाकर अभी नया ही था। इतने दिनों तक

अपना 'कंबाइंड हैंड' वह आप ही थे, केवल डिसेंट्री-रोग के कारण ही कुछ दिनों से इसे उन्होंने रख लिया है।

मनोहर बाबू कहने लगे—महाशय, आप क्या साधारण आदमी हैं! क्या आप समझते हैं, मैं यह नहीं जानता कि शहर भर के आदमियों का जीवन-मरण आपकी ज़बान पर निर्भर है। आपके ज़रा ज़बान हिला देने से सब कुछ हो सकता है। अधिक नहीं, केवल एक लाइन अगर लाट साहब को लिख दीजिए तो उसे ( अर्थात् नौकर को ) चौदह साल की सज़ा हो जायगी—आपके इस असर की बात क्या मैंने सुनी नहीं? हरामज़ादे को ज़रा अच्छी तरह धमका तो दीजिए।

चक्रवर्ती की बातें सुनकर मैं तो भौचक्का-सा रह गया। जिन लाट साहब का नाम तक मैंने नहीं सुना, उन्हें अधिक नहीं, एक लाइन लिख देने से ही चौदह साल की जेल की संभावना! अपनी इतनी बड़ी अद्भुत शक्ति की बात इतने बड़े विज्ञ व्यक्ति के मुख से सुनकर क्या कहूँ या क्या करूँ यह कुछ मुझे न सूझ पड़ा। तथापि उनके बार-बार कहने और ज़ोर डालने पर लाचार होकर उस अभागे 'कबाइंड हैंड' को डॉटने और धमकाने के लिए रसोईघर में घुस कर देखा, वह स्थान एक अन्ध-कूप के समान अन्धकारमय है।

उस आदमी ने आड़ में खड़े होकर शायद मालिक के मुँह से मेरी अद्भुत क्षमता की बात सुन ली थी। इसी से रूआसे होकर हाथजोड़ कर उसने इस समय मुझसे कहा कि इस घर

में कोई देव या दानव है; वह यहाँ किसी तरह न रह सकेगा। उसने यह भी कहा कि तरह तरह की छायायें रात-दिन इस घर मे घूमती फिरतो हैं। बाबू अगर और किसी घर में जायँ तो वह अनायास नौकरी कर सकना है; किन्तु इस घर मे—

उस घर मे जैसा अन्धकार था, उससे 'छाया' का क्या अपराध! किन्तु छाया देखकर नहीं घुसते ही एक तरह की बुरी किसी सड़ी चीज़ की दुर्गन्धि नाक मे प्रवेश करने के कारण मैं घबरा रहा था।

मैने उससे पूछा—यह दुर्गन्धि काहे की है रे?

उसने कहा—कोई चूहा-ऊहा सड़ गया होगा।

मैं चौंक पडा। कहा—चूहा कैसा रे? इस घर मे क्या कोई चूहा मरा है?

उसने लापर्वाही के साथ कहा—रोज़ सवेरे कम-से-कम पाँच-छः मरे चूहे उठाकर बाहर गली में फेक देता हूँ।

मिट्टी के तेल को डिब्बी जला कर खोज की गई; पर मरे चूहों का कुछ पता न लगा। तो भी मेरे शरीर के रोंगटे खड़े हो आये, मेरे हाथ-पैर सन्नाने लगे और किसी तरह भी जी खोल कर उस आदमी का मै यह सदुपदेश न दे सका कि बीमार बाबू को अकेला छोड़कर भागना उसे उचित नहीं।

सोने के कमरे में लौट आकर देखा, मनोहर बाबू खाट के ऊपर बैठे मेरी राह देख रहे है। मुझे अपने पास बिठा कर वे इस घर के गुणों का बखान करने लगे। शहर में

इतने कम भाड़े पर मिलनेवाला इतना अच्छा घर और नहीं है। ऐसा पड़ोस भी सहज में नहीं मिलता। पास के घर मे जो मेस है उसमें चार-पाँच मदरासी ईसाई रहते है और वे जैसे शिष्ट-शान्त हैं वैसे ही सरल। जरा आराम होते ही वे इस हरामजादे ब्राह्मण चाकर को निकाल बाहर करेंगे, यह भी उन्होंने सूचित कर दिया।

एकाएक कह उठे—अच्छा महाशय, आप स्वप्न पर विश्वास करते हैं?

मैने कहा—नहीं।

उन्होंने कहा—मै भी नहीं विश्वास करता। किन्तु कैसा आश्चर्य है महाशय, कल रात को मैंने स्वप्न देखा कि मै सीढ़ी पर से फिसल कर गिर पड़ा हूँ। और, जाग कर उठते ही देखा, दाहने पैर का गट्टा फूल आया है। सच-झूठ आप मेरे शरीर में हाथ रख कर ही जान सकते हैं महाशय, तब से बुखार तक हो आया है।

सुनते ही मेरा चेहरा स्याह पड़ गया। उसके बाद पैर के गट्टे का फूलना भी देखा और देह का बुखार भी।

एक मिनट के लगभग मोहाच्छन्न को तरह बैठे रह कर अन्त को मैंने कहा—डाक्टर को बुलाने के लिए आपने अब तक नौकर को क्यों नहीं भेजा? शीघ्र भेजिए!

उन्होंने कहा—यह ऐसा देश है कि कुछ न पूछिए। यहाँ डॉक्टर की फीस भी तो कुछ कम नहीं है! डॉक्टर को बुलाने

मे ही चार-पॉच रुपयों का .खून हो जायगा ! इतने ही से थोड़े पीछा छूट जायगा ? उस पर दवा के दाम अलग हैं। वह भी दो-तीन रुपयों से कम का धक्का नहीं है।

मैंने कहा—यह कुछ भी हो, डाक्टर को बुला भेजिए।

वे बोले—डॉक्टर को बुलाने जायगा कौन महाशय ! तेवारी ( अर्थात् नौकर ) एक तो डॉक्टर का घर ही नहीं जानता। इसके सिवा अगर वह चला जायगा तो यहॉ रसोई कौन बनावेगा !

"अच्छा, मै ही जाता हूँ" कहकर मैं .खुद ही डॉक्टर को बुलाने गया।

डाक्टर ने आकर परीक्षा की। फिर मुझे आड़ में ले जाकर पूछा—यह आप के कौन हैं ?

मैंने कहा—कोई नहीं, केवल जान-पहचान है।

इसके बाद मैं किस तरह अकस्मात् आज सवेरे यहॉ आ पड़ा, यह सब वृत्तान्त कह सुनाया।

डॉक्टर ने पूछा—इनका कोई आत्मीय यहॉ है ?

मैंने कहा—जानता नहीं। शायद कोई नहीं है।

डाक्टर ने क्षण भर चुप रह कर कहा—मैं एक दवा लिख-कर दिये जाता हूँ। सिर पर बर्फ़ रखने की भी ज़रूरत है। किन्तु सबसे अधिक आवश्यक है उन्हे प्लेग के अस्पताल मे भेज देना। आप .खुद इस घर में न रहिएगा। और देखिए, मुझे फीस देने की ज़रूरत नहीं है।

डॉक्टर के चले जाने पर मैंने बहुत सङ्कोच के बाद अस्पताल भेजने का प्रस्ताव किया तो मनोहर बाबू रोने लगे। वहाँ रोगी को ज़हर देकर मार डालते है, वहाँ जाने से कोई फिर जीता नहीं लौटता, इसी तरह की न जाने कितनी बातें कह गये।

दवा लाने के लिए भेजने को तेवारी की खोज की तो देखा, वह combined hand ।अपना। लोटा-कंबल लेकर इसी बीच में चुपचाप खिसक गया है। जान पड़ता है, दरवाज़े की आड़ में खड़ा-खड़ा वह डॉक्टर के साथ मेरी बातचीत सुन रहा था। हिन्दुस्तानी आदमी और चाहे कुछ न समझे, 'प्लेग' शब्द को ख़ूब जल्दी समझ लेता है।

तब मुझी को दवा लेने के लिए जाना पड़ा। बर्फ़, आईस-बैग वग़ैरह जो कुछ सामान ज़रूरी था, सब खरीद लाकर हाज़िर किया। उसके बाद रह गया मैं और वह, वह और मै। कभी मैं उनके सिर पर आईसबैग रखता था और कभी वह मेरे सिर पर आईसबैग रखते थे। इस तरह विकार-ग्रस्त रोगी के साथ धींगामुश्ती करते-करते जब दो बज गये तब वह निस्तेज होकर पलॅग पर पड़ गया। बीच-बीच मे उसका चैतन्य, आच्छन्न-सा हो जाता था—वह बेहोश-सा हो जाता था और कभी-कभी ख़ूब होश-हवास की बाते करता था।

तीसरे पहर के लगभग उसने क्षण भर के लिए मेरे मुख की ओर सचेतन भाव से देखकर कहा—श्रीकान्त बाबू, अब मैं नहीं बचने का।

मैं चुप रहा। तब उसने बहुत चेष्टा के बाद कमर से कुञ्जी निकाली और उसे मेरे हाथ में देकर कहा—मेरे बक्स के भीतर तीन सौ गिन्नियाँ हैं। मेरी स्त्री के निकट भेज देना। पता मेरे बक्स ही में है, खोजने से मिल जायगा।

पास जो ईसाइयों का वह मेस था; उससे मुझे कुछ धैर्य और हिम्मत थी। उन लोगों के चलने-फिरने की आहट और धीमी गले की आवाज़ मैं बराबर सुन पा रहा था। सन्ध्या के समय उनके कुछ अधिक चलने-फिरने और सामान उठाने-धरने का शब्द सुनाई पड़ने लगा। कुछ देर बाद जान पड़ा, जैसे दरवाज़े में ताला बन्द करके वे लोग कहीं जा रहे है।

बाहर आकर देखा, यही बात थी। सचमुच ही दरवाजे में ताला लटक रहा है। समझा, वे बाहर घूमने-फिरने गये हैं, कुछ दिन बाद ही लौट आवेगे। किन्तु तो भी न जाने क्यों, जी और भी खराब हो गया।

इधर मैं जिसके घर मे था वह आदमी उत्तरोत्तर जो जो हरकतें करने लगा, उनके सम्बन्ध में मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि वे रात को अकेले बैठकर उपभोग करने की वस्तु न थीं।

उधर रात के बारह बजने को हुए; किन्तु पास के घर को खोलने की आहट नहीं मिलती, न किसी की आवाज ही सुन पड़ती है। बीच-बीच में बाहर आकर देखता हूँ, ताला वैसे ही लटक रहा है। एकाएक नज़र पड़ गया कि काठ की दीवार मे एक छेद है और उसी छेद की राह से एक तीव्र प्रकाश की

रेखा उस घर से इस घर में आ रही है। कौतूहल के मारे उसी छेद की राह से अन्दर झाँककर उस तीव्र प्रकाश का कारण जो मैंने देख पाया, उससे मेरे सारे शरीर का रक्त जैसे जम कर बर्फ हो गया। भीतर सामने की खाट पर दो नौजवान पास-ही पास तकिये पर सिर रक्खे सो रहे है, और उनके सिरहाने खाट के बाजू के ऊपर मोमबत्तियों की एक लाइन जल-जलकर प्रायः समाप्त हो आई है। मैं पहले ही जानता था कि रोमन कैथलिक ईसाई लोग रात को मुर्दे के सिरहाने रोशनी जलाकर रख देते हैं। अतएव पलभर मे ही मेरी समझ मे यह आ गया कि इन दोनों आदमियों की आँख हजार पुकारने से भी न खुलेगी, और ऐसे हृष्ट-पुष्ट सबल-शरीर दोनों आदमियों का इस समय इस तरह सो रहने का कारण क्या है।

इस घर में हमारे मनोहर बाबू और भी आध घटे के लगभग छटपटा कर तब सोये। खैर, जान बची।

लेकिन तमाशा यह कि जिन्होंने उस दिन यह कह कर मुझे बहुत उपदेश दिया था कि जान-पहचान के किसी आदमी की बीमारी का समाचार सुनकर उस महल्ले मे पैर न रखना चाहिए उन्हीं की लाश और गिन्नियों से भरे बक्स का पहरा देने के लिए भगवान् ने मुझे ही नियुक्त कर दिया !

खैर, वह जानो नियुक्त कर दिया, मगर मेरी बाकी रात किस तरह कटी, यह लिखकर बतलाने की न मुझमें शक्ति है और न जी ही चाहता है।

दूसरे दिन death certificate (मृत्यु का प्रमाण-पत्र) लेकर पुलिस को बुलाने, तार देने, सब सामान की सुव्यवस्था करने और मुर्दे को ठिकाने लगाने में ही तीन बज गये। ख़ैर, मनोहर बाबू तो ठेलागाड़ी पर चढ़कर शायद स्वर्ग को ही रवाना हो पड़े और मैं भी अपने डेरे को लौटा।

पहले दिन निराहार एकादशी की थी, आज भी कुछ खाये-पिये बिना तीसरा पहर हो गया। डेरे पर लौटकर जान पड़ा, मेरे दाहने कान की जड़ जैसे फूल उठी है, दर्द कर रही है। क्या जाने, रात भर ख़ुद ही हाथ से दबा दबाकर मैंने दर्द पैदा कर लिया था अथवा सचमुच ही गिन्नियों का हिसाब देने स्वर्ग जाना होगा, कुछ एकाएक समझ में न आया। किन्तु यह समझने में देर न हुई कि बाद को चाहे जो हो, फिलहाल होश रहते-रहते अपनी व्यवस्था आप ही कर डालनी होगी। कारण, मनोहर की तरह आईसबैग को लेकर धींगामुश्ती करना सङ्गत भी नहीं है, शोभन भी नहीं है।

ठीक करते देर न लगी। कारण, पलभर मे ही मैंने देख पाया कि इतने बड़े भयानक गन्दे छुआछूत के रोग का भार किसी पुण्यात्मा साधु पुरुष के ऊपर डालने से निश्चय ही मुझे भारी पाप होगा। अच्छे आदमी को तकलीफ में डालना या हैरान करना कर्तव्य नहीं, एकदम शास्त्र-विरुद्ध है। सुतराम् ऐसा करने की ज़रूरत नहीं। बल्कि वही जो रंगून में, शहर के दूसरे छोर पर, अभया नाम की एक महापापिष्ठा पतिता स्त्री

है, एक दिन जिसे घृणा करके त्याग आया हूँ, उसी के कंधे पर अपनी इस महासांघातिक बीमारी का विश्री बोझ भी घृणा के साथ उतार कर लाद आऊँ। मरना हो तो वही मरे। शायद इससे कुछ पुण्य-सञ्चय भी हो जा सकता है।

मन मे यह सोचकर नौकर को बुलाकर गाड़ी ले आने का हुक्म दिया।

## बारहवाँ परिच्छेद

उस दिन जब मौत का परवाना हाथ में लेकर अभया के दरवाज़े पर आकर खड़ा हुआ था, तब मरण की अपेक्षा मरने की लज्जा ने ही मुझे अधिक भय दिखाया था।

अभया का मुख पीला पड़ गया। किन्तु उस पीले मुख के होठों से केवल ये ही शब्द फूट कर निकले—तुम्हारा भार, तुम्हारी ज़िम्मेदारी मैं न लूँगी तो और कौन लेगा? यहाँ मुझसे बढ़कर किसे ग़रज़ है?

मेरी दोनों आँखों मे आँसू भर आये। तो भी मैंने कहा—मै तो चला। राह का कष्ट मुझे अपने सिर लेना ही होगा। उसे रोकने या मिटाने की शक्ति किसी मे नहीं है। किन्तु जाते समय तुम्हारी इस नई गिरस्ती के ऊपर इतनी बड़ी विपत्ति डाल जाने को मेरा जी किसी तरह नहीं चाहता अभया! अभी गाड़ी दरवाज़े पर खड़ी हुई है, मुझे अभी तक होश है, अब भी मैं भलेमानुस की तरह प्लेग-अस्पताल मे जाकर उतर

सकता हूँ। तुम केवल एक दम भर के लिए जी कड़ा करके कह दो, "अच्छा जाओ"।

अभया ने कुछ उत्तर नहीं दिया। मेरा हाथ पकड़ कर बिस्तर पर लाकर सुला दिया। अब उसने अपने आँसू पोंछे। मेरे गर्म मस्तक पर धीरे-धीरे हाथ फेरकर उसने कहा—तुमसे अगर 'जाओ' कह सकती तो इस तरह नये सिरे से घर-गिरिस्ती न क़ायम कर सकती। आज से मेरी नई गिरिस्ती यथार्थ गिरिस्ती हुई।

किन्तु ख़ूब संभव है, मुझे प्लेग नहीं हुआ था। इसी से मरण मुझे केवल व्यङ्ग्य करके ही चला गया! दस-बारह दिन के भीतर ही रोग-मुक्त होकर उठ खड़ा हुआ। लेकिन अभया ने फिर मुझे लौटकर होटल न जाने दिया।

मैं सोच रहा था कि दफ्तर जाऊँ या और कुछ दिन की छुट्टी लूँ, इसी समय एक दिन दफ्तर का चपरासी आकर एक चिट्ठी दे गया। खोलकर देखा, राजलक्ष्मी की चिट्ठी है। बरमा में आने के बाद यही उसकी पहली चिट्ठी मैंने पाई। यद्यपि उसकी ओर से मुझे कुछ उत्तर न मिलता था, तथापि उसकी इच्छा के अनुसार मैं कभी-कभी उसे चिट्ठी लिखा करता था। आते समय यही शर्त उसने मुझसे करा ली थी।

पत्र मे पहले ही उसने इसी बात का उल्लेख करके लिखा था "मेरे मरने पर ही तुम खबर पाओगे। जिन्दा रहने मे मेरी ऐसी कोई ख़बर ही नहीं रह सकती जो तुम्हे जताये बिना

काम न चले। लेकिन मेरे लिए तुम्हारे सम्बन्ध मे तो यह बात नहीं है। मेरा सारा मन उस विदेश मे तुम्हारे पास ही पड़ा रहता है। यह बात इतना बड़ा सत्य है कि तुम विश्वास किये बिना न रह सके। इसी से जवाब न पाने पर भी बीच बीच मे पत्र लिख कर तुम्हे यह बतलाना पड़ता है कि तुम अच्छे हो।

"मै इसी महीने मे वकु का व्याह करना चाहती हूॅ। तुम सम्मति दो। परिवार के पालन की क्षमता हुए बिना विवाह होना उचित नहीं, तुम्हारे इस कथन की सचाई को मैं अस्वीकार नहीं करती। वकु में यह क्षमता अभी नहीं है, तथापि क्यों मैं इसके लिए तुम्हारी सम्मति चाहती हूॅ, यह तुम एक बार ऑखों से मुझे देखे बिना न समझ सकोगे। जिस तरह हो सके, एक बार चले आओ। तुम्हें मेरे सिर की कसम !"

पत्र के अन्त में अभया का जिक्र था। अभया ने जिस दिन पति के घर से लौट आकर कहा था कि वह जिसे प्यार करती है उसी के साथ रहने को एक पशु का त्याग कर आई है, और इसी विषय को लेकर उसने सामाजिक रीति-नीति के सम्बन्ध में स्पर्द्धा और गर्व के साथ वहस की थी। उस दिन मैं ऐसा विचलित हो पड़ा था कि पियारी को इस बारे मे बहुत-सी बाते लिख दी थीं।

आज उस के प्रत्युत्तर मे पियारी ने लिखा है—"उन्हों-( अभया ) ने अगर तुम्हारे मुॅह से मेरा नाम सुना हो तो मेरे

अनुरोध से एक बार उनसे मिल कर कहना कि राजलक्ष्मी तुम्हें शत-कोटि प्रणाम करती है। मालूम नहीं, उमर में वे मुझसे छोटी हैं कि बड़ी। जानने की आवश्यकता भी नहीं है। वे केवल अपनी तेजस्विता के कारण ही मेरे समान साधारण स्त्री के लिए प्रणाम करने के योग्य हैं। आज मुझे अपने गुरुदेव के श्रीमुख की बातें बार-बार याद आ रही हैं। मेरे काशीवाले घर मे मेरे गुरु-मन्त्र लेने की सब तैयारी हो गई थी। गुरुदेव आसन पर विराजमान होकर स्तब्धभाव से बैठे न जाने क्या सोच रहे थे। मैं आड़ में खड़ी-खड़ी बहुत देर तक उनके प्रसन्न मुख की ओर देख रही थी। एकाएक भय से मेरे सारे हृदय में उथल-पुथल-सी मच गई। मैंने उनके चरणों के पास पड़ कर रोते हुए कहा—बाबा, मैं दीक्षा न लूँगी।

"गुरुदेव ने विस्मित होकर मेरे सिर पर अपना दाहना हाथ रखकर कहा—क्यों बेटी, क्यों न लोगी ?

"मैने कहा—मैं बड़ी पापिन हूँ। बाबा—

"उन्होंने बाधा देकर कहा—तब तो और भी अधिक दरकार बेटी है।

"मैंने रोते-रोते कहा—मैने लज्जा के मारे अपना सच्चा परिचय नहीं दिया। देती तो आप इस घर की चौखट के भीतर पैर भी न रखते।

"गुरुदेव ने मुसकिराकर कहा—तो भी रखता, तो भी

आकर दीक्षा देता। पियारी के घर में मान लो, न भी आता, लेकिन अपनी राजलक्ष्मी बेटी के घर क्यों न आऊँ?

"मैं चौंक कर स्तब्ध हो रही। कुछ देर चुप रह कर मैंने कहा—लेकिन मेरी माता के गुरु जी ने तो कहा था कि मुझे दीक्षा देने से पतित होना होगा। यह बात क्या सच नहीं है?

"गुरुदेव ने हँस दिया। बोले—सत्य होने के कारण ही तो वे मन्त्र दे नहीं सके बेटी! किन्तु जिसे वह भय नहीं है वह क्यों न मन्त्र देगा?

"मैंने कहा—भय क्यों नहीं है?

"उन्होंने फिर हँस कर कहा—एक घर के भीतर जो रोग के कीटाणु एक आदमी को मार डालते हैं वे ही दूसरे आदमी को स्पर्श नहीं करते। यह क्यों, बतला सकती हो बेटी?

"मैंने कहा—स्पर्श शायद करते हैं, लेकिन जो सबल है वह उनके आक्रमण से अपने को बचा लेता है, और जो दुर्बल है उसके प्राण चले जाते हैं।

"गुरुदेव ने मेरे मस्तक पर हाथ रखकर कहा—इसी बात को किसी दिन न भूलना। जो अपराध एक आदमी को भूमिसात् कर देता है, गिरा देता है, मिट्टी में मिला देता है, उसी अपराध से दूसरा आदमी शायद मज़े में पार हो जाता है। इसी से सब विधि-निषेध सभी को एक रस्सी मे नहीं बाँध सकते।

"संकोच के साथ मैंने धीरे-धीरे पूछा—जो अन्याय है, जो

अधर्म है, वह क्या सबल और दुर्बल, दोनों के निकट समान रूप से अन्याय और अधर्म नहीं है? नहीं है तो क्या वह अविचार नहीं है?

"गुरुदेव ने कहा—ना बेटी। बाहर से देखने में चाहे जैसा जान पड़े, वास्तव में उनका फल समान नहीं है। अगर ऐसा होता तो संसार में सबल और दुर्बल में कोई प्रभेद न रहता। जो विष पाँच साल के बालक के लिए प्राणघातक है वही अगर तीस बरस की उमर के आदमी को न मार सके तो किसे दोष दोगी बेटी? किन्तु आज ही अगर मेरी बात न समझ सको तो कम-से-कम यह अवश्य स्मरण रक्खो कि जिनके भीतर आग जल रही है और जिनके भीतर केवल राख जमा है उनके काम की माप एक ही तराज़ू से नहीं की जा सकती। करने से भूल होती है।

"श्रीकान्त दादा, तुम्हारी चिट्ठी पढ़कर आज मुझे गुरुदेव की वह हृदय की आगवाली बात याद पड़ती है। अभया को आँखों से नहीं देखा, तो भी जान पड़ता है, उनके भीतर जो आग जल रही है उसकी शिखा का आभास तुम्हारी चिट्ठी के भीतर भी जैसे मैं पा रही हूँ। उनके कामों का विचार तनिक सावधानी के साथ करना। हमारे समान साधारण स्त्रियों के बटखरे लेकर चटपट उनके पाप-पुण्य का वज़न न कर बैठना।"

चिट्ठी अभया के हाथ में देकर मैंने कहा—राजलक्ष्मी ने तुम्हें शत-सहस्र नमस्कार जताये हैं। यह लो।

अभया दो-तीन बार उस चिट्ठी को पढ़कर उसे किसी तरह मेरे बिछौने पर फेंक कर तेज़ी के साथ वहाँ से चली गई। संसार की दृष्टि में आज उसका जो नारीत्व लांछित और अपमानित है उसी के ऊपर सौ योजन दूर से जो एक अपरिचित नारी ने, अपरिचित सम्मान की पुष्पाञ्जलि अर्पण की थी, उसी के अपरिसीम आनन्द की वेदना को वह पुरुष की दृष्टि के सामने से चटपट हटाकर आड़ में ले गई।

लगभग आध घंटे के बाद अभया ने अच्छी तरह आँख-मुँह धोकर लौट आते ही कहा—श्रीकान्त दादा—

मैंने रोककर कहा—यह क्या ! दादा मैं कब हो गया ?

अभया ने कहा—आज से।

मैंने कहा—ना, ना, दादा नहीं—दादा नहीं। सभी मिल कर सब ओर से मेरी राह न बन्द करो।

अभया ने हँसकर कहा—मन ही मन शायद यही सब मतलब गाँठे जाते हैं ?

मैंने कहा—क्यों, क्या मैं आदमी नहीं हूँ ?

अभया ने कहा—तो आप बड़े बेढब आदमी देख पड़ते हैं। बेचारे रोहिणी बाबू ने बीमारी के समय आश्रय दिया, अब अच्छे होकर शायद उसी का यह पुरस्कार ठीक किया है ?—खैर, मुझसे एक बड़ी भूल होगई। उस समय अगर आपकी बीमारी का उल्लेख करके एक तार भेज देती तो शायद उनके दर्शन मिल जाते।

सिर हिलाकर मैंने कहा—यह कुछ आश्चर्य न था।

अभया ने क्षणभर स्थिर रह कर कहा—तुम महीने-डेढ़ महीने की छुट्टी लेकर एक बार चले जाओ श्रीकान्त दादा। मुझे जान पड़ता है, उन्हे इस समय तुम्हारी बड़ी ज़रूरत है।

न जाने किस तरह मैं खुद भी यही समझ रहा था कि आज उसे मेरी बड़ी ज़रूरत है। दूसरे ही दिन सवेरे दफ़्र को चिट्ठी लिख कर और भी एक महीने की छुट्टी ली और आगामी 'मेल' में ही यात्रा करने के विचार से टिकट ख़रीदने के लिए आदमी भेज दिया।

जाते समय अभया ने प्रणाम करके कहा—श्रीकान्त दादा, एक वचन दो।

मैंने कहा—क्या वचन बहन ?

अभया ने कहा—संसार में सभी समस्याओं की मीमांसा मर्द नहीं कर सकते। अगर कहीं अटके तो चिट्ठी लिखकर मेरी राय जरूर लीजिएगा, यह वादा करो।

स्वीकार करके जहाज-घाट जाने के लिए गाड़ी पर जा बैठा। अभया ने गाड़ी के दरवाज़े के पास खड़ी होकर और एक नमस्कार करके कहा—रेहिणी बाबू से कहकर मैंने कल ही वहाँ तार भेज दिया है। किन्तु जहाज के ऊपर इधर कई दिन जरा नज़र रखना श्रीकान्त दादा। और कुछ मैं तुमसे नहीं चाहती।

"अच्छा" कहकर सिर उठाते ही मैंने देखा, अभया की दोनों आँखों में आँसू भरे हुए हैं।

## तेरहवाँ परिच्छेद

कलकत्ते के घाट में आकर जहाज भिड़ा। देखा, जेटी के ऊपर बकु खड़ा हुआ है। वह सीढ़ी से चटपट चढ़कर मेरे पास पहुँचा और भूमिष्ठ होकर प्रणाम करने के बाद उसने कहा—मा सड़क के ऊपर गाड़ी मे बैठी आपकी राह देख रही हैं। आप उतर जाइए, मैं सब सामान वग़ैरह लेकर पीछे से आता हूँ।

बाहर आते ही और एक आदमी ने झुककर पैर छुए। उसके उठकर खड़े होते ही मैंने कहा—कहो रतन, सब कुशल है न?

रतन ने हँसकर कहा—आपके आशीर्वाद से सब कुशल है। आइए!

कहकर रास्ता दिखाकर गाड़ी के पास लाकर उसने दरवाज़ा खोल दिया।

राजलक्ष्मी ने कहा—आओ रतन, तुम दोनों जने भैया, और एक गाड़ी करके, पीछे आना? दो बजने चाहते हैं। उन्होंने अभी नहाया-खाया नहीं। हम लोग घर चलते हैं। गाड़ीवान से गाड़ी हाँकने के लिए कह दे।

मैं गाड़ी पर सवार हो लिया। रतन ने 'जी, अच्छा" कहकर गाड़ी का दरवाजा बन्द करके गाड़ीवान से गाड़ी हाँकने का इशारा कर दिया। राजलक्ष्मी ने भी झुककर पद-धूलि लेकर कहा—जहाज़ पर कष्ट तो नहीं हुआ?

मैंने कहा—ना।

राजलक्ष्मी ने कहा—तबीअत बहुत खराब होगई थी क्या?

मैंने कहा—तबीअत खराब जरूर होगई थी, लेकिन बहुत अधिक नहीं। किन्तु तुम भी तो रोगी-सी हो गई देख पड़ती हो? घर से कब आईं?

राजलक्ष्मी ने कहा—परसों। अभया से तुम्हारे आने की खबर पाते ही हम लोग घर से चल खड़े हुए थे। आना तो होता ही, दो दिन पहले ही चली आई। यहाँ तुम्हें कितना काम करना है, जानते हो?

मैंने कहा—काम की बात पीछे सुनूँगा। पहले यह बतलाओ, तुम ऐसी बीमार-सी क्यों देख पड़ती हो? क्या हुआ था?

राजलक्ष्मी हँसी। आज यह हँसी देखकर ही यह खयाल आया कि कितने दिनों से यह हँसी मैंने नहीं देखी। साथ ही साथ कितनी बड़ी अदम्य इच्छा को मैंने दबा डाला, यह अन्तर्यामी के सिवा और किसी ने नहीं जाना। लेकिन दीर्घश्वास को मैं राजलक्ष्मी से छिपा नहीं सका। वह विस्मित की तरह क्षण भर मेरा मुँह ताकती रही। उसके बाद उसने हँस कर पूछा—मैं कैसी देख पड़ रही हूँ? बीमार?

सहसा इस प्रश्न का उत्तर मैं न दे सका। बीमार? हाँ, कुछ बीमार अवश्य देख पड़ती थी, किन्तु वह कुछ भी नहीं।

जान पड़ा, वह कितने ही देश-देशान्तर में पैदल चलकर, तीर्थ-पर्यटन करके, अभी लौट आई है—ऐसी मुरझाई हुई, ऐसी थकी हुई थी। अपना भार आप वहन करने की जैसे उसमे न अब शक्ति ही है, न प्रवृत्ति ही। इस समय केवल निर्भय भाव से आँखें मूँद कर सोने के लिए थोड़ी-सी जगह जैसे खोज रही है।

मुझे निरुत्तर देखकर उसने कहा—क्यों, बतलाया नहीं ?

मैंने कहा—न सुनोगी तो क्या होगा ?

राजलक्ष्मी ने किसी बच्चे की तरह सिर झिटक कर कहा—ना, बतलाओ। लोग कहते हैं, मैं देखने मे एकदम बुरी, बद-सूरत होगई हूँ। यह सच है ?

मैंने गभीर भाव धारण करके कहा—हाँ, सच है।

राजलक्ष्मी ने हँस दिया। कहा—तुम आदमी को इस तरह अप्रतिभ कर देते हो कि—अच्छा तो है! बुरा क्या है। श्री या सूरत लेकर मुझे करना ही क्या है। तुम्हारे साथ मेरा खूबसूरत या बदसूरत दिखाई पड़ने—न दिखाई पड़ने का तो सम्बन्ध है ही नहीं कि उसके लिए मुझे सोच के मारे मरना होगा।

मैंने कहा—यह तो ठीक ही है, सोच के मारे मरने का कुछ भी कारण नहीं है। एक तो यह बात तुमसे लोग कहते ही नहीं कि तुम बदसूरत होगई हो, और अगर कहते भी हैं तो तुम्हे उस पर विश्वास नहीं—मन ही मन जानती हो कि—

राजलक्ष्मी नाराज़ होकर कह उठी—तुम अन्तर्यामी हो कि नहीं, जो सबके मन की बात तुमने जान ली! मैं कभी यह बात नहीं सोचती! तुम आप ही सत्य-सत्य कहो तो, वहीं शिकार करने जब गये थे तब मुझे जैसी देखा था, वैसी ही क्या अब भी मैं देख पड़ती हूँ? तब से अब न जाने कितनी बद-सूरत होगई हूँ।

मैंने कहा—ना, बल्कि मुझे तो तब से अच्छी देख पड़ती हो।

राजलक्ष्मी ने पलक लगते ही खिड़की की ओर मुँह फेर कर, जान पड़ता है, अपना हँसता हुआ चेहरा ही मेरी मुग्ध दृष्टि के आगे से हटा लिया और कुछ उत्तर न देकर चुपचाप बैठी रही।

बहुत देर बाद परिहास के सब चिह्न चेहरे पर से हटाकर उसे घुमाकर मेरी ओर देखा। पूछा—तुम्हे क्या बुख़ार आने लगा था? उस देश की आबहवा क्या माफ़िक़ नहीं पड़ती?

मैंने कहा—माफ़िक़ न पड़े तो कोई वश नहीं। जिस तरह हो, माफ़िक़ बना लेनी ही पड़ेगी।

मैं मन ही मन निश्चय जानता था कि राजलक्ष्मी मेरी इस बात का क्या उत्तर देगी। कारण, जिस देश का जल-वायु आज भी अनुकूल नहीं हो उठा, उसे किसी सुदूर भविष्य में अनुकूल बना लेने की आशा पर निर्भय करके वह किसी तरह

मेरे फिर वहीं लौट कर जाने के बारे में कभी सहमत न होगी, बल्कि घोर आपत्ति उठाकर बाधा ही देगी, यही मेरा ख़याल था।

लेकिन यह कुछ नहीं हुआ। उसने क्षण भर मौन रहकर धीमे स्वर में कहा—यह सच है। इसके सिवा वहाँ और भी तो कितने ही बंगाली रहते हैं। उन्हे जब आब-हवा माफ़िक होगई है तब तुम्हें क्यों न होगी? क्यों न?

मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे उसके इस धैर्य, इस उद्वेगहीनता ने मुझे चोट पहुँचाई। इसी से केवल एक इशारे भर से ही उसकी बात का समर्थन करके मैं चुप हो रहा। एक बात मै अक्सर सोचता था। वह यही कि अपने को प्लेग हो जाने की बात मैं किस तरह राजलक्ष्मी को सुनाऊँगा।

सुदूर प्रवास में जीवन-मृत्यु के सन्धिस्थल में जब मेरे दिन बीत रहे थे, उस समय के सहस्त्र प्रकार के दुःख का विवरण मेरे मुख से सुनते-सुनते उसके हृदय के भीतर कैसा तूफ़ान उठेगा, दोनों आँखों से जो प्रबल अश्रुधारा बह चलेगी, उसे कितने रस और कितने रंग से भरकर दिन-दिन उत्तरोत्तर कल्पना की दृष्टि से मैंने देखा है, यह मैं बता नहीं सकता। इस समय वही सबसे अधिक मेरे लिए लज्जादायक हुआ। ख़याल आया, छी-छी! यही सौभाग्य समझिए कि किसी के मन की बात कोई नही समझ पाता। नहीं तो—किन्तु होगा, जाने भी दो। मैंने मन ही मन कहा—और चाहे जो करूँ,

अपने जीने-मरने की वह चर्चा अब राजलक्ष्मी के आगे नहीं करूँगा।

बहूबाज़ार के डेरे में आकर पहुँचा। राजलक्ष्मी ने हाथ से दिखाकर कहा—यह सीढ़ी है, तुम्हारा कमरा तिमज़िले में है। जाकर ज़रा सो रहो; मैं जाती हूँ।

कह कर वह ख़ुद रसोईघर की ओर चली गई।

कमरे में घुसकर देखा, बेशक यह कमरा मेरे ही लिए है। पटनेवाले घर से मेरी किताबें, मेरी गुड़गुड़ी तक लाना पियारी नहीं भूली। एक कीमती सूर्यास्त का चित्र मुझे बहुत-बहुत पसन्द था। उसे भी उसने अपने कमरे से उतार कर मेरी सोने की कोठरी में टाँग दिया था। वह चित्र तक वह अपने साथ कलकत्ते ले आई है और ठीक उसी तरह दीवार में लगा दिया है। मेरा लिखने का साज-सरजाम, मेरे कपड़े, मेरी हव लाल मख़मल की चट्टी तक ठीक उसी तरह यत्नपूर्वक सजाई रक्खी है। एक आरामकुर्सी का हमेशा मैं वहाँ इस्तेमाल करता था। जान पड़ता है, उसे लाना सम्भव नहीं हुआ, इसी से एक नई आरामकुर्सी उसी तरह मेरे कमरे में रख दी गई है।

धीरे-धीरे उसी कुर्सी के ऊपर जाकर आँख मूँद कर मैं लेट रहा। जान पड़ा, जैसे भाटे की नदी में फिर ज्वार के जलोच्छ्वास का शब्द मुहाने के पास सुनाई पड़ रहा है।

नहा-खाकर क्लान्ति के कारण दोपहर को सो गया था। नींद खुलने पर देखा, पश्चिम की खिड़की से तीसरे पहर की

धूप आकर मेरे पैरों के पास पड़ रही है और पियारी एक हाथ टिकाकर मेरे मुख पर झुक पड़ कर दूसरे हाथ से अपने आँचल से मेरे कपाल का, कधे का, छाती का पसीना पोंछ रही है।

उसने कहा—पसीने से तकिया और बिछौना भीग गया है। पश्चिम की ओर खुला रहने के कारण इस कमरे मे बड़ी गर्मी है। कल दुमञ्जिले मे अपने पास की कोठरी मे तुम्हारे बिछौने डाल दूँगी।

यह कह कर मेरी छाती के बिलकुल ही पास बैठकर पखा उठाकर वह हवा करने लगी।

रतन ने भीतर घुसकर पूछा—माजी, बाबूजी की चाय ले आऊँ?

राजलक्ष्मी ने कहा—हाँ, ले आ। और, बंकु अगर घर मे हो तो ज़रा भेज देना।

मैंने फिर आँखे मूँद लीं। दम भर बाद ही बाहर चट्टियों की आवाज़ सुन पड़ी।

पियारी ने पुकार कर कहा—कौन, बंकु! ज़रा इधर आ तो।

उसके पैरो की आहट से मैंने समझा, उसने अत्यन्त सङ्कुचित भाव से भीतर प्रवेश किया। पियारी ने वैसे ही पंखा झलते-झलते कहा—वह काग़ज़-पेंसिल लेकर ज़रा बैठ जा। क्या-क्या लाना होगा, एक लिस्ट बनाकर दरबान को साथ लेकर ज़रा बाज़ार चला तो जा भैया कुछ सामान नहीं है।

मैंने देखा, यह एक बहुत बड़ी नई बात है. बीमारी की बात अलाहिदा है; किन्तु उस समय के अलावा पियारी ने किसी दिन आज से पहले मेरे बिछौने पर इतने पास बैठकर मेरे पंखा तक नहीं झला। खैर, उसे न हो एक दिन सम्भव कहकर मान सकता हूँ; किन्तु यह जो उसने रत्ती भर भी दुविधा नहीं की, सङ्कोच नहीं किया, यहाँ तक कि बंकु के सामने भी दर्प के साथ अपने को प्रकट कर दिया, इसके अपरूप सौन्दर्य ने मुझे अभिभूत कर दिया। मुझे उस दिन की बात याद आगई जिस दिन इसी राजलक्ष्मी ने यह सोचकर कि यही बंकु कुछ खयाल न करे, पटने के घर से मुझे उस तरह विदा कर दिया था। उसके साथ आज के इस आचरण में कितना बड़ा भेद है।

सामान की लिस्ट बना कर बकु चला गया। रतन भी चाय देकर और भरी हुई चिलम गुड़गुड़ी पर रखकर चला गया।

पियारी ने कुछ देर चुप रहकर मेरे मुँह को ओर ताककर एकाएक प्रश्न किया—एक बात मैं तुमसे पूछती हूँ। अच्छा, रोहिणी बाबू और अभया दोनों मे कौन अधिक प्यार करता है, कह सकते हो ?

मैंने हँसकर कहा—जो तुम्हारे मन मे बस गई है वह अभया ही निश्चय अधिक प्यार करती है।

राजलक्ष्मी भी हँस पड़ी। बोली—यह तुमने कैसे जाना कि वह मेरे मन में बस गई है ?

मैंने कहा—चाहे जिस तरह जानूँ, मेरा कहना सच है या नहीं ?

राजलक्ष्मी ने दमभर स्थिर रहकर कहा—खैर, वह चाहे जो हो, अधिक प्यार तो रोहिणी बाबू ही करते हैं। वास्तव में उन्होंने इतना अधिक प्यार करने ही के कारण इतना बड़ा दुःख शिरोधार्य कर लिया। नहीं तो यह कुछ उनका अवश्य कर्तव्य न था। अथच उसकी तुलना में अभया को कितना त्याग करना पड़ा, तुम्हीं बताओ ?

उसका यह प्रश्न सुनकर सचमुच ही मुझे आश्चर्य हुआ।

मैंने कहा—लेकिन मैं तो ठीक इसके विपरीत देखता हूँ, और उस हिसाब से इस प्रेम के लिए जो कुछ कठिन त्याग करना पड़ा है, जो कुछ कठोर दुःख भोगना पड़ा है, सो सब बेचारी अभया को ही। रोहिणी चाहे कुछ भी करें, समाज की दृष्टि में वे मर्द-मानुस हैं—यह अभ्रान्त सत्य क्यों तुम भूली जाती हो ?

राजलक्ष्मी ने सिर हिलाकर कहा—मैं कुछ भी नहीं भूली। मर्द-मानुस कहकर तुम उनके लिए जिस सुयोग और सुविधा का इशारा कर रही हो वह क्षुद्र और ओछे पुरुषों के लिए है, रोहिणी बाबू के समान पुरुषों के लिए नहीं! शौक पूरा होने पर अथवा समाज के धमकाने से मर्द-मानुस छोड़कर भाग खड़े हो सकते हैं और फिर घर को लौट जाकर गण्य-मान्य भद्र जीवन बिता सकते है, यही तो कहते हो ? हाँ, लोग कर

सकते हैं, लेकिन क्या सभी ऐसा कर सकते हैं! तुम कर सकते हो! जो नहीं कर सकता उसके भार को तनिक सोच कर देखो तो भला! उसके लिए निन्दित जीवन को घर के एक कोने मे, निराले में, बैठकर बिताने का उपाय नहीं; उसे तो ससार के बीच द्वन्द्व-युद्ध के लिए मैदान में उतर आना होगा, अविचार और अपयश का बोझ अकेले चुपचाप वहन करना होगा, उसे अपनी एकान्त स्नेह-प्रेम की पात्री अपनी भावी सन्तान की जननी को विरुद्ध समाज की सारी बेइज्जती और अकल्याण से बचा रखना होगा। इसे क्या तुम सहज दुःख समझते हो! फिर सबसे बढ़कर दुःख तो यह है कि वह जो इस दुःख के बोझ को अनायास अपने सिर से उतार कर फेंक कर खिसक जा सकता है—इस सर्वनाशी विकट प्रलोभन से उसे दिन-रात अपने को बचाकर चलने का गुरु भार भी उसी को लादे फिरना होगा। दुःख की तुला में इस आत्मोत्सर्ग के साथ वज़न बराबर रखने—बैलेंस ठीक रखने—के लिए जिस प्रेम की आवश्यकता है, उसे यदि मर्द अपने हृदय के भीतर से न निकाल सके तो किसी भी औरत के लिए यह साध्य नहीं कि वह उस कमी को पूरा कर दे।

इस विषय को इस पहलू से इस तरह किसी दिन मैंने सोचकर नहीं देखा था। रोहिणी का वह सीधा-सादा चुपचाप भाव तथा उसके उपरान्त अभया जब स्वामी के घर चली गई थी, तब उसके उस शान्त मुख के ऊपर चुपचाप अपरिसीम

वेदना को वहन करने की वह छवि, जो मैंने उसके घर जाकर देखी थी, इस समय पलक लगते ही एक रेखा-चित्र के रूप में मेरे मन के भीतर जाग उठी।

किन्तु मुख से मैंने कहा—लेकिन चिट्ठी में तो तुमने अकेली अभया को ही पुष्पाञ्जलि भेजी थी?

राजलक्ष्मी ने कहा—उनका जो प्राप्य है वह मैं आज भी उन्हे देती हूँ। कारण, मेरा विश्वास है कि जो कुछ पाप है, जो कुछ अपराध है, सो उनके हृदय के तेज से जलकर खाक हो गया, जिससे वे शुद्ध और निर्मल हो गई हैं। यह न होता तो आज वे एक अत्यन्त साधारण स्त्री की ही तरह तुच्छ और हीन हो जातीं।

मैंने कहा—हीन क्यों!

राजलक्ष्मी ने कहा—ख़ूब! स्वामी-त्याग के पाप की भला कुछ सीमा है? उस पाप को नष्ट करने लायक़ आग उनके भीतर न रहती तो आज वे—

मैंने कहा—आग की बात जाने दो। किन्तु उनका स्वामी क्या पदार्थ है, यह तो एक बार सोचकर देखो।

राजलक्ष्मी ने कहा—मर्द तो सदा से उच्छृङ्खल होते आये हैं, हमेशा ही वे कुछ-कुछ अत्याचारी रहे हैं; किन्तु इसी लिए स्त्री के वहाँ से भाग खड़े होने के अनुकूल कोई युक्ति नहीं प्रयुक्त हो सकती। स्त्री की जाति को सहन करना ही होता है; नहीं तो संसार चल नहीं सकता।

राजलक्ष्मी की यह बात सुनकर मेरा सब मन्तव्य गड़बड़ हो गया। मैंने मन ही मन कहा—स्त्री-जाति का यह वही सनातन दासता का संस्कार है!

कुछ असहिष्णु होकर मैंने पूछा—तो फिर अब तक तुम यह आग-आग क्या बक रही थीं?

राजलक्ष्मी ने हँसते हुए कहा—क्या बकती थी, सुनोगे? आज ही, कोई दो घंटे पहले, पटने के पते पर लिखी गई, अभया की चिट्ठी मैंने पाई है। आग क्या है, जानते हो? उस दिन प्लेग लेकर जब उसकी सुख की नई गिरस्ती के द्वार पर जाकर तुम खड़े हुए थे तब बिना किसी सोच-विचार के जिस वस्तु ने तुमको भीतर बुला लिया था, उसी को मैं उसकी आग कहती हूँ। उस समय उसके हृदय में अपने सुख का रत्तीभर भी खयाल नहीं था। किसी काम को कर्तव्य समझ लेने पर जो तेज मनुष्य को सामने की ओर ही ठेलता है, दुविधा मे पीछे हटने नहीं देता, मैं उसी को अब तक आग-आग कहकर बक रही थी। आग का एक नाम सर्वभक्षी या सर्वभुक् है, जानते हो न? वह सुख-दुःख दोनों को खींच लेती है, वह छानबीन नही करती। उन्होंने एक बात और लिखी है। वह रोहिणी बाबू को, उनके जीवन को सार्थक बना देना चाहती है। कारण, उनका विश्वास है कि संसार मे अपने जीवन की सार्थकता के भीतर से ही—उसी के द्वारा केवल—दूसरे के जीवन तक सार्थकता पहुँचाई जा सकती है। और

व्यर्थ होने में केवल एक जीवन अकेले ही व्यर्थ नहीं होता, बल्कि वह और भी अन्य अनेक जीवनों को अनेक ओर से—कई पहलुओं से—निष्फल कर जाता है! यह ख़ूब सत्य है न?

इतना कह कर एकाएक एक लम्बी साँस छोड़कर वह चुप हो रही। उसके बाद हम दोनों ही जने बहुत देर तक चुप रहे। जान पड़ता है, वह कुछ वक्तव्य और न रहने से ही इस समय मेरे सिर के बालों मे अंगुलि-सञ्चालन करके मेरे रूखे बालों को निरर्थक चीर चीर कर ध्वस्त-व्यस्त करने लगी। उसका आज का यह आचरण भी एकदम नया था।

सहसा वह कह उठी—अभया ख़ूब शिक्षित हैं, क्यों न? नहीं तो इतना तेज नहीं हो सकता था।

मैंने कहा—हाँ, वे यथार्थ ही शिक्षित रमणी हैं।

राजलक्ष्मी ने कहा—किन्तु एक बात उन्होंने मुझसे छिपाई है। मा होने का अपना लोभ उन्होंने अपनी चिट्ठी में जगह-जगह छिपाने की चेष्टा की है।

मैंने कहा—ऐं, यह लोभ क्या उन्हे है? कहाँ, मैंने तो नहीं सुना।

राजलक्ष्मी कह उठी—यह लोभ किस स्त्री को नहीं है! लेकिन इसके क्या यह माने है कि हर एक स्त्री मर्दों के सामने कहती फिरे? तुम भी ख़ूब आदमी हो!

मैंने कहा—तो फिर तुमको भी है क्या?

"जाओ!" कह कर वह अकस्मात् लज्जा से लाल हो उठी। और वैसे ही उस आरक्त मुख को छिपाने के लिए वह पलँग के ऊपर झुक पड़ी। उस समय अस्त होते हुए सूर्य की किरणे पश्चिम की खुली हुई खिड़की के भीतर से होकर अन्दर आ रही थीं। वही आरक्त आभा उसके घन-घटा के समान काले केशपाश के ऊपर बिखर कर एक अपूर्व शोभा दिखलाने लगी, और कानों में जो हीरे के जड़ाऊ बुन्दे थे, उनमे अनेक रङ्गों की चमक झिलमिलाती हुई क्रीड़ा करने लगी।

क्षण भर बाद ही उसने आत्मसंवरण करके सीधी हो बैठकर कहा—क्यों, मेरे क्या लड़के-बाले हैं नहीं, जो उनके लिए लोभ होगा? लड़कियों का व्याह कर दिया है, लड़के का व्याह करने आई हूँ। एक दो नाती-नातिन होंगे; उन्हे लेकर सुख से स्वच्छन्दता के साथ रहूँगी। मुझे अभाव क्या है, तुम्ही बतलाओ?

चुप हो रहा। इस बात पर बहस करने को—ज़बान लड़ाने को—जी नहीं चाहा।

रात को राजलक्ष्मी ने कहा—बंकु के व्याह को तो अब भी १०-१२ दिन की देर है। चलो, तुम्हें काशी में गुरुदेव को दिखा लाऊँ।

मैंने हँसकर कहा—मैं क्या कोई देखने की वस्तु हूँ?

राजलक्ष्मी ने कहा—इस विचार का भार देखनेवालों पर है, तुम पर नहीं।

मैंने कहा—यह भी मान लिया; लेकिन इससे मुझे या गुरुदेव को लाभ ही क्या होगा ?

राजलक्ष्मी ने गम्भीर भाव धारण करके कहा—लाभ तुम लोगों को नहीं, मुझे होगा। न हो, केवल मेरे ही कारण चलो।

अतएव सम्मत हो गया। सामने ही बहुत दिन तक लग्न न रहने के कारण इस समय चारों ओर जैसे विवाहों की बाढ़ आ गई थी। जब देखो तब बैंड और बैगपाइप (एक बाजा, जो मुँह से बजाया जाता है) के साथ तरह तरह के बाजों का तुमुल शब्द सुन पड़ता है। हमारी स्टेशन-यात्रा के समय भी इसी तरह की कई बारातें रास्ते में जाती मिलीं।

बाजों के उन्मत्त शब्द की आँधी कुछ कम हो आने पर राजलक्ष्मी ने कहा—अच्छा, तुम्हारी राय पर अगर सब लोग चलें तो शायद ग़रीब लोगों का ब्याह ही न हो, न उन बेचारों को बाल-बच्चों का मुख तथा घर-गिरस्ती का सुख ही देखना नसीब हो। तो फिर बताओ, सृष्टि की रक्षा भला कैसे हो ?

राजलक्ष्मी का असाधारण गांभीर्य देखकर मैं हँस पड़ा।

मैंने कहा—सृष्टि-रक्षा के लिए तुम्हें कुछ भी दुश्चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। कारण, मेरे मत पर चलनेवाले लोग पृथ्वी पर अधिक नहीं हैं। कम से कम हमारे इस देश में तो बिलकुल ही कम है, नहीं के बराबर हैं, यह कहना भी कुछ अत्युक्ति न होगा।

राजलक्ष्मी ने कहा—न रहना ही अच्छा। बड़े आदमी ही केवल मनुष्य हैं, और ग़रीब लोग क्या कहीं से बह आये हैं? उन्हें क्या बाल-बच्चे लेकर गिरस्ती का सुख देखने की साध नहीं है?

मैंने कहा—लेकिन साध के रहने से ही उसे प्रश्रय देना होगा, उसे पूर्ण करने की चेष्टा करनी होगी, इसकी क्या ज़रूरत है?

राजलक्ष्मी ने कहा—क्यों नहीं है, मुझे ज़रा समझा दो।

तनिक ठहरकर मैंने कहा—सभी गरीबों के बारे में मेरा यह मत नहीं है। मेरा मत केवल 'भले मानुस' कहे जानेवाले ग़रीबों के लिए ही है। और, मुझे विश्वास है कि इसका कारण तुम भी जानती हो।

राजलक्ष्मी ने ज़िद के स्वर में कहा—तुम्हारा वह मत ग़लत है, ठीक नहीं।

मुझे भी जैसे एक तरह की ज़िद सवार हो गई। मैंने कह डाला—हज़ार ग़लत होने पर भी तुम्हारे मुँह में यह बात शोभा नहीं देती। बंकु के बाप ने जब तुम दोनों बहनों को एक साथ केवल बहत्तर रुपयों के लोभ से ब्याह लिया था, वह दिन अब भी इतना पुराना नहीं हुआ कि तुमको याद न हो। हाँ, यह तो कहो, कुशल यही हुई कि उस आदमी का पेशा ही यह था और इसी से वह ब्याह के बाद ही छोड़कर चला गया, नहीं तो अगर तुम दोनों बहनों में से किसी के एक

लड़का-बाला हो जाता तो जरा अपनी हालत पर विचार करके देखो तो सही !

राजलक्ष्मी की दृष्टि मे कलह का आभास घना हो उठा। उसने कहा—भगवान् जिन्हें भेजते हैं उन्हें वही देखते, उनकी वही खबर लेते हैं। तुम नास्तिक हो, इसी कारण इस पर विश्वास नही करते।

मैंने भी जवाब दिया—मै नास्तिक होऊँ या चाहे जो होऊँ, लेकिन मेरा प्रश्न यह है कि क्या आस्तिक को भगवान् की जरूरत इसी लिए होती है ?—यही सबके लड़की-लड़कों को पालने-पोसने के लिए ?

राजलक्ष्मी ने क्रुद्ध स्वर में कहा—न हो मान लिया कि भगवान् उन्हे न देखते, उनकी खबर न लेते। मैं तुम्हारी तरह ऐसी डरपोक नहीं हूँ। मैं द्वार-द्वार भिक्षा करके भी उन्हे पालती-पोसती और चाहे जो हो, बाई जी बनने की अपेक्षा वह मेरे लिए कहीं अधिक अच्छा होता।

मैंने आगे फिर बहस नहीं की। आलोचना बिलकुल ही व्यक्तिगत होकर अप्रिय रूप धारण कर रही थी, इसी लिए गाड़ी की खिड़की के बाहर सड़क की ओर मुँह करके चुपचाप बैठा रहा।

हमारी गाड़ी क्रमशः सरकारी और बेसरकारी आफिस-क्वार्टर छोड़कर बहुत दूर आ गई थी। उस दिन शनिवार था। दो बजे के बाद अधिकांश क्लर्क छुट्टी पाकर ढाई बजे की ट्रेन में

सवार होने के लिए तेज़ी के साथ चले आ रहे थे। प्रायः हर एक के हाथ में कुछ न कुछ था। किसी के हाथ में कुछ मछलियाँ, किसी के हाथ में बकरे का मांस, किसी के हाथ में देहात में दुर्लभ कुछ-कुछ तरकारी और फल-मूल वग़ैरह था। सात दिन के बाद घर पहुँच कर उत्सुक लड़के-लड़कियों के मुख पर थोड़ी-सी आनन्द की हँसी देखने के लिए प्रायः सभी अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार थोड़ी-बहुत मिठाई ख़रीद कर चादर के खूँट मे बाँधे दौड़े जा रहे थे। हर एक के चेहरे पर आनन्द और ट्रेन पर सवार होने की उत्कंठा एक साथ इस तरह स्पष्ट हो उठी थी कि राजलक्ष्मी ने मेरा हाथ खींचकर अत्यन्त कौतूहल के साथ पूछा—हाँ जी, ये सब लोग क्यों इस तरह स्टेशन की ओर दौड़े जा रहे हैं ? आज क्या है ?

मैंने उसकी ओर फिर कर कहा—आज शनिवार है। ये सब दफ्तरों के बाबू हैं। रविवार की छुट्टी में घर जा रहे हैं।

राजलक्ष्मी ने सिर हिलाकर कहा—हाँ, यही बात है। और देखो, सभी कुछ न कुछ खाने की चीज़ लिये जा रहे हैं। देहात में तो यह कुछ मिलता नहीं। इसी से जान पड़ता है, लड़की-लड़कों के हाथ में रखने के लिए ये लोग यह सब सामान ख़रीद रहे हैं। क्यों न ?

मैंने कहा—हाँ।

उसकी कल्पना द्रुत वेग स बढ़ रही थी। इसी से उसने फिर कहा—इनके लड़कों-वालों को आज कैसा आनन्द

होगा! कोई चिल्लाकर आनन्द प्रकट करेगा, कोई बाप की गोद में चढ़ने की चेष्टा करेगा, कोई अपनी मा को बाप के आने की खबर देने रसोई-घर मे दौड़ा जायगा। घर-घर आज धूम पड़ जायगी। क्यों न?

कहते-कहते उसका चेहरा दमक उठा।

मैंने उसका साथ देते हुए कहा—खूब संभव है।

राजलक्ष्मी ने गाड़ी की खिड़की से और कुछ देर तक उनकी ओर ताकते रह कर एकाएक एक साँस छोड़कर कहा—हाँ जी, इनको तनख्वाह कितनी मिलती होगी?

मैंने कहा—क्लर्कों को तनख्वाह कौन बहुत मिलती है—यही बीस, पचीस, तीस रुपये, बस!

राजलक्ष्मी ने कहा—लेकिन घर मे तो इनके मा है, भाई-बहन है, स्त्री, बाल-बच्चे हैं—

मैंने इसमें और भी जोड़ दिया—दो-एक विधवा बहनें हैं, काम-काज है, लोक-व्यवहार है, भलमनसी की चाल है, कलकत्ते में रहने के घर का भाड़ा है, लगातार बने रहनेवाले रोग का खर्च है। इस क्लर्क-जीवन का सारा खर्च इन्हीं तीस रुपयों पर निर्भर है।

राजलक्ष्मी का दम जैसे घुटा जा रहा था। वह वैसे ही व्याकुल होकर कह उठी—तुम नहीं जानते। इनके घर मे जमीन-जायदाद है, जरूर है।

उसका चेहरा देखकर उसे निराश करने में मुझे कष्ट

A hope ... coloured by ... picture of ... clerk-life ... p. 219 to ...

मालूम पड़ा। तथापि कहा—इन लोगों की गिरस्ती का इतिहास मैं अच्छी तरह—घनिष्ठ भाव से ही—जानता हूँ। मैं निस्संशय जानता हूँ, इनमें से चौदह आने आदमियों के ज़मीन-जायदाद कुछ नहीं है। नौकरी छूटने पर या तो भिक्षा माँगने की नौबत आती है या समग्र परिवार के साथ उपवास करना होता है। इनके लड़के-बालों की दशा सुनोगी ?

राजलक्ष्मी एकाएक दोनों हाथ उठाकर चिल्ला उठी—ना, ना, मैं नहीं सुनूँगी, नहीं सुनूँगी, मैं सुनना नहीं चाहती।

यह मै उसकी आँखों की ओर दृष्टिपात करते ही समझ गया कि वह प्राणपण से आत्म-सवरण किये हुए है। इसी से और कुछ न कहकर मैं फिर मुँह फेरकर सड़क की ओर देखने लगा।

जान पड़ता है, अब तक उसने अपने साथ वकालत करके, अन्त को अपने कौतूहल के निकट हार मानकर, मेरे कोट का सिरा पकड़कर खींचा। घूमकर देखते ही उसने करुण कण्ठ से कहा—अच्छा, इनके बाल-बच्चों का हाल कहो। मगर तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, झूठमूठ बढ़ाकर न कहना। तुम्हे मेरी कसम !

उसके विनय करने का ढंग और मुखाकृति देखकर मुझे हँसी आगई; लेकिन मैं हँसा नहीं। बल्कि कुछ अधिक गांभीर्य के साथ कहा—बढ़ाकर कहना तो दूर, तुम अगर कुछ देर पहले अपने सम्बन्ध मे भीख माँगकर बाल-बच्चों को पालने की बात नहीं कहतीं तो मैं तुम्हे सुनाता ही नहीं। भगवान्

जिन्हें भेजते हैं उनकी सुव्यवस्था का भार वही लेते हैं, यह एक बात अवश्य है। अस्वीकार करने से शायद नास्तिक कहकर फिर मुझे बुरा-भला कहने लगोगी। किन्तु सन्तान की ज़िम्मेदारी कितनी मा-बाप पर है और कितनी भगवान् के ऊपर, इन दोनों समस्याओं की मीमांसा तुम आप करो। मैं जो कुछ जानता हूँ वही कहूँगा। क्यों न?

उसे चुपचाप जिज्ञासुमुख से अपनी ओर ताकते देखकर मैंने कहा—लड़का पैदा होने पर उसे कुछ दिन छाती का दूध पिलाकर, कुछ दिन जिला रखने की ज़िम्मेदारी उसकी मा के ऊपर रहती है, यही मुझे जान पड़ता है। भगवान् के ऊपर मेरी अचल भक्ति है, उनकी दया के ऊपर भी मेरा अन्ध-विश्वास है। किन्तु तो भी माता के बदले भगवान् ख़ुद इस काम का बोझ अपने सिर पर ले सकते हैं या नहीं, इसका कुछ उपाय है कि नहीं—

राजलक्ष्मी ने प्रणय-कोप से हँसकर कहा—देखो, चालाकी न करो, वह तो मैं भी जानती हूँ—

मैंने कहा—जानती हो? ख़ैर एक जटिल समस्या की मीमांसा हो गई। किन्तु तीस रुपये महीना पानेवाले क्लर्क के घर की जननी की छाती में दूध का स्रोत सूखने में क्यों देर नहीं लगती, यह जानना हो तो ऐसी प्रसूति के भोजन के समय उपस्थित रहना आवश्यक है। किन्तु यह जब न कर सकोगी तब इस बारे में, न हो, मेरी बात मान ही लो।

राजलक्ष्मी मुख मलिन लिये चुपचाप मेरी ओर ताकती रही।

मैंने कहा—देहात में गऊ के दूध का अत्यन्त अभाव होने की बात भी तुमको मान लेनी होगी।

राजलक्ष्मी चटपट कह उठी—यह मैं ख़ुद भी जानती हूँ। घर में गऊ हो तो अच्छा, नहीं तो आजकल सिर पटककर मर जाने पर भी किसी गाँव में एक बूँद दूध नहीं मिल सकता। गउएँ ही नहीं हैं, दूध फिर कैसा!

मैंने कहा—ख़ैर, और भी एक समस्या का समाधान हो गया। तब फिर बच्चे के भाग्य में रह गया केवल स्वदेशी और खालिस गन्दे तालाब का पानी और विदेशी डिब्बे में भरा खालिस बार्लो का चूरा। किन्तु उस समय भी उस बद-नसीब के भाग्य में शायद एक-आध बूँद उसका स्वाभाविक आहार जुर जाय; पर वह सब सौभाग्य भी ऐसे ग़रीबों के घर में अधिक दिन रहने का नियम नहीं है। तीन-चार महीने के भीतर ही और एक नवीन आगन्तुक अपने आविर्भाव का नोटिस देकर दादा के मातृ-दुग्ध का रातिब एकदम बन्द कर देता है। यह शायद तुम—

राजलक्ष्मी ने लज्जा से लाल होकर कहा—हाँ, हाँ, जानती हूँ—जानती हूँ। यह व्याख्या करके तुम्हारे समझाने की ज़रूरत नहीं। उसके बाद की बात तुम कहो।

मैंने कहा—उसके बाद पहले बच्चे को पेट के रोग और मलेरिया राक्षसी आकर पकड़ लेती है। तब बाप की ज़िम्मेदारी यह होती है कि विदेशी कुनैन और बार्ली का चूर्ण लाकर हाज़िर करता रहे और मा के सिर यह कर्तव्य आ पड़ता है कि सौर में जाकर फिर भर्ती होने की छुट्टी में इन्हीं चीज़ों को ख़ालिस देशी पानी में घोलकर उस बच्चे के तईं खिलावे-पिलावे। उसके उपरान्त यथा-समय सूतिकागृह का हगामा मिटा कर नव कुमार को गोद में लेकर वहाँ से निकले और कुछ दिनों तक चिल्ला-चिल्ला कर रोवे।

राजलक्ष्मी का मुख स्याह पड़ गया। उसने पूछा—क्यों, चिल्लाकर रोवे क्यों?

मैंने कहा—मा का स्वभाव होने के कारण। यहाँ तक कि मामूली क्लर्क के यहाँ भी तब इसके विपरीत होते नहीं देखा जाता जब भगवान् माता की ज़िम्मेदारी खतम करने के लिए उसके बच्चे को अपने श्रीचरणों में बुला लेते हैं।

राजलक्ष्मी ने कहा—हाय रे!

अभी तक मैं बाहर नज़र रखकर ही बातचीत कर रहा था। अकस्मात् दृष्टि को फेरते ही देखा, राजलक्ष्मी की बड़ी-बड़ी दोनों आँखों मे आँसू भरे हुए हैं।

अत्यन्त कष्ट जान पड़ा। ख़याल आया, इस बेचारी को निरर्थक दुःख देकर मुझे लाभ क्या है? अधिकांश धनी लोगों की तरह जगत् के इस विराट् दुःख का पहलू इससे भी

छिपा रहता तो क्या हानि थी ? अन्यान्य बड़े लोगों की तरह यह भी अगर यह बात न जान पाती कि बंगाल के क्षुद्र नौकरी पर जीविका चलानेवाले गृहस्थों की भारी गिरस्तियाँ केवल खाद्य के अभाव से ही दिन-दिन मलेरिया, कालरा वग़ैरह बीमारियों के बहाने शून्य होती जा रही हैं, तो उससे ऐसी कौन भारी क्षति हो जाती ?

ठीक इसी समय आँखें पोंछते-पोंछते रुँधे हुए गले से राजलक्ष्मी एकाएक कह उठी—वे भले ही क्लर्क हों, लेकिन तुमसे कहीं अच्छे हैं। तुम तो पत्थर हो ! तुम्हें स्वयं कुछ कष्ट नहीं है, इसी से इन लोगों के दुःख-कष्ट का वर्णन इस तरह आह्लाद के साथ कर रहे हो। लेकिन सुनकर मेरी छाती फटी जा रही है।

यह कहकर वह आँचल से जल्दी-जल्दी बार-बार आँखें पोंछने लगी। मैंने इसका कुछ प्रतिवाद नहीं किया। कारण, उससे कुछ लाभ न होता। बल्कि विनय-सहित कहा—इनके सुख का हिस्सा भी तो मेरे भाग्य में नहीं बदा—मुझे नहीं मिलता। घर पहुँचने के लिए इनका यह आग्रह भी तो सोचकर देखने की बात है।

राजलक्ष्मी का मुख हँसी और आँसुओं से एक साथ प्रदीप्त उज्ज्वल हो उठा। उसने कहा—मैं भी तो यही कहती हूँ। आज बाप के आने की आशा से सब बच्चे राह देख रहे होंगे। इन्हें काहे का कष्ट है ? इनकी तनख्वाह शायद सचमुच कम

ही है, और वैसा बाबू बनने का शौक भी नहीं है। लेकिन; मुझे इस पर विश्वास नहीं होता कि इनकी तनख्वाह तीस-पैंतीस रुपये ही होगी। कभी नहीं। कम से कम सौ-डेढ़ सौ रुपये, तो अवश्य ही होगी।

मैंने कहा—हो भी सकती है। शायद मैं ठीक-ठीक नहीं जानता।

उत्साह पाकर राजलक्ष्मी का लोभ बढ़ गया। अत्यन्त क्षुद्र क्लर्क के लिए भी डेढ़ सौ रुपये का महीना उसे नहीं जँचा। उसने कहा—तुम क्या समझते हो कि केवल यह तनख्वाह ही उनका सहारा है? ऊपर से भी तो बहुत कुछ पाते होंगे!

मैंने कहा—ऊपर से? धमकी-घुड़की?

अब की उसने कुछ नहीं कहा। मुँह बनाकर सड़क की ओर देखती हुई बैठी रही। दम भर के बाद बाहर ही नज़र रखकर उसने कहा—तुमको जितना ही देखती हूँ, उतना ही तुम्हारे ऊपर से मेरा मन हटता जा रहा है। तुम्हारे सिवा मेरी और गति नहीं है, यह जानते हो, इसी कारण तुम इस तरह मुझे पीड़ा पहुँचाते हो।

जान पड़ता है इतने दिनों के बाद आज उसके दोनों हाथ ज़ोर करके खींचकर अपने हाथों मे मैंने ले लिये। उसके मुख की ओर देखकर जैसे कुछ कहना भी चाहा; किन्तु इतने में गाड़ी आकर स्टेशन के किनारे लग गई।

एक जुदी गाड़ी (डिब्बा) रिज़र्व रहने पर भी बंकु कुछ

सामान साथ लेकर पहले ही आगया था। रतन को कोच-बक्स पर बैठे देख पाकर वह दौड़ा हुआ आया। उसके आकर खड़े होते ही मैंने राजलक्ष्मी के हाथ छोड़ दिये और सीधा होकर बैठ गया। जो बात मुँह तक आई थी वह जैसी-की-तैसी हृदय को ही लौट गई।

ढाई बजे की लोकल ट्रेन छूटने ही को थी। उसके बाद हमारी ट्रेन जाने को थी। इसी समय एक अधेड़ अवस्था के ग़रीब भद्र पुरुष एक हाथ मे तरह-तरह की तर-तरकारी की-पोटली और अन्य हाथ में एक अड्डे पर बैठा हुआ तोता (मिट्टी का खिलौना) हाथ मे लिये केवल प्लेटफार्म के ऊपर लक्ष्य रख-कर दिग्विदिक्-ज्ञान-शून्य भाव से—और किसी ओर का ख़याल रक्खे बिना ही—दौड़े जा रहे थे। रास्ते में वे राजलक्ष्मी से टकरा गये। उनके हाथ से खिलौना नीचे गिर कर चूर-चूर हो गया। वह आदमी हाय-हाय कर उठा। शायद झुककर वह उन टुकड़ों को उठाने जा रहा था, इतने में राजलक्ष्मी के दरबान पाँड़ेजी हुँकार छोड़कर एक छलाँग में उसके पास पहुँच गये और उस भद्र पुरुष की गरदन पकड़ ली। उधर बंकु छड़ी उठाकर बुड्ढा, अंधा इत्यादि कहकर मारने को तैयार होगया।

मैं थोड़ी दूर पर कुछ अन्यमनस्क था, व्यापार देखकर झटपट झपट कर घटनास्थल पर आगया। वह आदमी भय और लज्जा के मारे सिटपिटाकर बारबार कहने लगा—मैंने देखा नहीं बेटी, मुझसे बड़ा अपराध होगया—

मैंने चटपट उसे छुड़ा देकर कहा—जो होना था सो होगया; आप चटपट जाइए; आपकी ट्रेन छूट रही है।

वह आदमी तब भी उस खिलौने के टुकड़े बीनने के लिए कई बार इतस्तत: करके अन्त को गाड़ी की ओर दौड़ पड़ा। लेकिन बहुत दूर जाना नहीं पड़ा, गाड़ी छूट गई।

तब उसने लौट आकर एक वार और क्षमा की भिक्षा माँगकर उन टूटे हुए टुकड़ों को उठाना शुरू कर दिया। यह देखकर मैंने ज़रा हँसकर कहा—अब इनको उठाकर क्या करेंगे ?

उस आदमी ने कहा—कुछ भी नहीं महाशय। लड़की बीमार है। पिछले सोमवार को घर से आते समय उसने कह दिया था कि मेरे लिए एक मिट्टी का तोता लेते आना। खरीदने गया था तो दूकानदार ने मुझे ग़रज़मंद समझकर दाम हाँक दिये दो आने, इससे एक पैसा कम नहीं। क्या करूँ, कहा, वही सही। जान पर खेलकर आठ पैसे दे दिये। लेकिन देखिए भाग्य की बात कि यहाँ तक आकर खिलौना टूट गया। बीमार लड़की के हाथ मे उसे न दे पाया। बेटी रोकर कहेगी, बाबू जी, खिलौना नहीं लाये ? जो हो, ये टुकड़े ले जाऊँ; दिखाकर कहूँगा, बेटी, अब की महीने की तनख़्वाह मिलते ही पहले तुझे खिलौना ला दूँगा तब और कुछ करूँगा।

यह कहकर सब टुकड़े बटोरकर चादर के खूँट मे बाँधकर उसने कहा—आपकी स्त्री के, जान पड़ता है, बहुत लग गया—मैंने देखा नहीं—नुकसान का नुकसान हुआ, गाड़ी भी नहीं

मिली। मिल जाती तो बीमार लड़की को आध घंटा पहले देख पाता।

कहते कहते वे भद्रपुरुष फिर प्लेटफार्म की ओर चल दिये।

बंकु पाँड़ेजी को लेकर किसी प्रयोजन से अन्यत्र चला गया। मैंने एकाएक घूमकर देखा, राजलक्ष्मी की दोनों आँखों से श्रावण की धारा की तरह आँसू बह रहे है।

व्यस्त होकर पास जाकर पूछा—बहुत लगा क्या? कहाँ लगा?

राजलक्ष्मी ने आँचल से आँसू पोंछकर धीरे-धीरे कहा—हाँ, बहुत लगा है, किन्तु ऐसी जगह लगा है कि तुम्हारे समान पाषाण मनुष्य न उसे देख सकता है, न समझ सकता है।



## तेरहवाँ परिच्छेद

श्रीमान् बंकु को बाध्य होकर हम लोगों के लिए एक अलग डिब्बा रिजर्व कराना पड़ा था, यह खबर जब मैं उससे ले रहा था, उस समय राजलक्ष्मी कान लगाकर सुन रही थी। इस समय बंकु के ज़रा और तरफ़ हटते ही राजलक्ष्मी ने बिलकुल गले पड़कर ही मुझे सुना दिया कि अपने लिए व्यर्थ खर्च करने में वह जितनी ही सम्मत नहीं है उतनी ही उसके भाग्य में इस तरह की विडम्बना उपस्थित होती है।

उसने कहा—सेकेण्ड क्लास या फर्स्ट क्लास में यात्रा करने

ही से अगर उन लोगों का जी भरता है तो अच्छा तो है, जायँ। हम लोगों के लिए जनानी गाड़ी तो थी। फिर क्यों रेल-कंपनी को व्यर्थ इतने रुपये दिये गये।

बंकु की गाड़ी रिज़र्व कराने की कैफियत के साथ उसकी मा की इस मितव्यय-निष्ठा के साथ विशेष कोई सामञ्जस्य मैंने नहीं देख पाया। किन्तु यह बात स्त्रियों से कही जाय तो कलह होने लगे। अतएव चुप होकर केवल सुनता ही गया, कुछ बोला नहीं।

प्लेटफार्म पर एक बेंच के ऊपर बैठकर वही भद्रपुरुष ट्रेन की अपेक्षा कर रहे थे। सामने से जाते समय मैंने पूछा—आप कहाँ जाइएगा ?

उन्होंने कहा—बर्दवान।

कुछ आगे बढ़ते ही राजलक्ष्मी ने धीमे स्वर में मुझसे कहा—तब तो यह अनायास ही हमारी गाड़ी मे बैठकर जा सकेंगे। किराया भी नहीं लगेगा। यही करने के लिए इनसे क्यों न कह दो।

मैंने कहा—टिकट तो निश्चय ही यह ख़रीद चुके होंगे। किराये के दाम इनके नहीं बचेंगे।

राजलक्ष्मी ने कहा—न बचेंगे न सही, भीड़ के धक्कम-धक्के और कष्ट से तो बचत हो जायगी।

मैंने कहा—इसका इन्हें अभ्यास है। भीड़ के कष्ट की ये लोग कुछ पर्वाह नहीं करते।

राजलक्ष्मी ने तब ज़िद करके कहा—ना, ना, तुम इनसे

कहो तो। हम तीनों जने बातचीत करते हुए एक साथ बड़े मज़े में चले जायँगे।

मैंने समझ लिया, इतनी देर बाद राजलक्ष्मी को अपनी भूल मालूम हो गई है। बंकु और अपने नौकर-चाकरों की आँखों के सामने मेरे साथ अकेले अलग गाड़ी में सवार होने की जो अशोभनता है—देखने में बुरा मालूम होना है—उसे अब वह कुछ कम कर लेना चाहती है। तथापि इसी बात को और भी जरा आँखों में उँगली डालकर दिखाने के लिए लापर्वाही के भाव से मैंने कहा—एक ग़ैर आदमी को अपनी गाड़ी में घुसेड़ने की ज़रूरत क्या है? तुमसे जितनी हो सके उतनी बातचीत मेरे साथ करना; बड़े मज़े मे समय बीत जायगा।

राजलक्ष्मी ने मेरे ऊपर एक तीक्ष्ण कटाक्ष छोड़कर कहा—सो तो मैं जानती हूँ। मुझे छकाने का इतना बड़ा सुयोग हाथ में पाकर क्या तुम कभी उसे छोड़ सकते हो?

इतना कहकर वह चुप हो रही।

किन्तु ट्रेन स्टेशन में आकर लगते ही मैंने जाकर उन भद्र-पुरुष से कहा—आप हमारी ही गाड़ी मे क्यों न आ जाइए। हम दोनों आदमियों के सिवा और कोई नहीं है; भीड़ में आप कष्ट न पावेंगे।

कहना न होगा, उन्हे राज़ी करने में अधिक कष्ट नहीं उठाना पड़ा। अनुरोध करते ही वह अपनी पोटली लेकर हमारी गाड़ी में आकर विराजमान होगये।

दो-एक स्टेशन पार होते न होते ही राजलक्ष्मी ने उन वृद्ध पुरुष के साथ खूब बातचीत का सिलसिला जमा लिया, और अन्य कई एक स्टेशन नाँघते ही उनके घर की खबर महल्ले-टोले की खबर, यहाँ तक कि आसपास के गाँवों तक की खबर राजलक्ष्मी ने पूछ-पूछकर जान ली।

राजलक्ष्मी के गुरुदेव काशी में अपने नाती-नातिनों को लेकर वास करते हैं। उनके लिए राजलक्ष्मी कलकत्ते से बहुत-सी चीज़ें लिये जा रही थी। बर्दवान के निकट आकर, बक्स खोलकर, उन्हीं मे से छाँटकर राजलक्ष्मी ने एक सब्ज़ रंग की रेशमी साड़ी निकालकर कहा—सरला (वृद्ध की कन्या) को उसके खिलौने के बदले आप यह साड़ी दे दीजिएगा।

वह भद्रपुरुष पहले तो अवाक् हो गये, उसके बाद सलज्ज-भाव से चटपट कह उठे—ना, ना, बेटी, सरला को मैं अब की बार खिलौना ले जाऊँगा। आप यह साड़ी रख लीजिए। इसके सिवा यह बहुत क़ीमती साड़ी है बेटी!

राजलक्ष्मी ने वह साड़ी उनके पास रख देकर कहा—अधिक दाम इसके नहीं हैं! और दाम चाहे जो हों, यह उसके हाथ में देकर कहिएगा, उसकी मौसी ने उसे पहनने के लिए दी है।

उन भद्रपुरुष की आँखे डबडबा आईं। आध घंटे की बातचीत मे एक अपरिचित पुरुष की बीमार लड़की को ऐसी एक कीमती साड़ी उपहार देना उन्होंने और कभी आँखों से देखा न था। कहा—आशीर्वाद करिए, वह अच्छी हो जाय इसे.

यही बहुत है। ग़रीब के घर की लड़की वह इतनी कीमती साड़ी लेकर क्या करेगी बेटी ? आप इसे उठाकर रख दीजिए।

मैंने कहा—उसकी मौसी जब उसे पहनने को दे रही है, तब ले जाकर दे देना ही आपको उचित है।

फिर हँसकर मैंने कहा—सरला का भाग्य अच्छा है। हम लोगों के अगर ऐसी एक कोई मौसी या बुआ होती तो मैं तो अपने अहोभाग्य समझता महाशय ! लेकिन यह मैं कहे देता हूँ, आपकी लड़की अब चटपट आराम हो जायगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

भद्रपुरुष के चेहरे पर कृतज्ञता का भाव उस समय बरसने लगा। उन्होंने फिर कुछ आपत्ति न करके वह साड़ी ले ली। फिर दोनों आदमियों की बातचीत चलने लगी। घर-गिरस्ती की बातें, समाज की बाते, सुख-दुख की बातें, इसी तरह न जानें कितनी बातें होती रहीं। मै केवल खिड़की के बाहर मुख करके ताकता हुआ स्तब्ध होकर बैठा रहा और जो प्रश्न मैंने अपने से आप बहुत बार किया है, वही प्रश्न इस क्षुद्र घटना-द्वारा फिर मेरे मन मे उत्पन्न हुआ कि इस यात्रा की समाप्ति कहाँ पर है ?

एक १०-१२ रुपये दाम की साड़ी दे डालना राजलक्ष्मी के लिए कठिन भी नहीं और नई बात भी नहीं। उसके नौकर और नौकरानियाँ शायद इस तरह का वस्त्र पाकर इस बात पर एक बार कुछ ध्यान भी न देते। लेकिन मेरी चिन्ता और ही थी।

यह देना दान करने के हिसाब से उसके लिए कुछ भी नहीं है, यह मैं भी जानता हूँ, और किसी की अपेक्षा कम नहीं जानता, किन्तु मैं यह सोच रहा था कि उसके हृदय की धारा जिस ओर लक्ष्य करके अपने को निःशेष करने के लिए उद्दाम गति से दौड़ी जा रही है, उसका अन्त कहाँ और किस तरह होगा ?

सभी रमणियों के हृदय में 'नारी' वास करती है या नहीं, यह जोर करके कहना अत्यन्त दुःसाहस का काम है। किन्तु नारी की चरम सार्थकता माता बनने मे ही है, यह बात शायद खूब जोर देकर ही कही जा सकती है।

राजलक्ष्मी को मैंने पहचान लिया था। उसकी पियारी-बाई अपने अपरिणत यौवन के समस्त दुर्दाम आक्षेपों को लेकर हर घड़ी मर रही थी, यह मैंने लक्ष्य करके देख लिया था। आज उस नाम का उच्चारण करने से भी राजलक्ष्मी जैसे लज्जा के मारे मिट्टी में मिल जाती है, धरती मे गड़ जाती है। मेरी समस्या भी हुई थी यही।

सर्वस्व देकर संसार का उपभोग करने का वह उत्तप्त आवेग अब राजलक्ष्मी में न था। आज वह शान्त और स्थिर है। उसकी कामना, उसकी वासना आज उसी के भीतर ऐसा ग़ोता लगा गई है कि बाहर से एकाएक यह सन्देह होता है कि उनका अस्तित्व रह गया है या नहीं। उन्होंने ही इस एक साधारण घटना को उपलक्ष्य करके फिर मुझे स्मरण करा दिया की आज उसके परिणत यौवन के सुगभीर तलदेश से जो मातृत्व सहसा

जग उठा है, सद्यः सोकर उठे हुए कुम्भकर्ण की तरह उसको विराट् क्षुधा का आहार कहाँ मिलेगा? राजलक्ष्मी के अपनी सन्तान रहने से जो सहज और स्वाभाविक ? हो उठ सकता, वह, उसी के अभाव से, ऐसा अत्यन्त जटिल हो उठा है।

उस दिन पटने में उसकी जो मातृमूर्ति देखकर मैं मुग्ध और अभिभूत हो गया था, उसकी वही मूर्ति आज स्मरण करके अत्यन्त व्यथा के साथ मुझे केवल यही खयाल आने लगा कि उतनी बड़ी आग को फूँक मारकर बुझाया न जा सकने के कारण ही आज पराये लड़के को लड़का कल्पित करके, इस तरह के लड़कों के खिलवाड़ से, राजलक्ष्मी के हृदय की भूख किसी तरह नहीं मिटती। इसी से आज एकमात्र बंकु ही उसके लिए यथेष्ट नहीं है; आज दुनिया मे जहाँ जितने बच्चे है, उन सभी का सुख-दुःख उसके हृदय को आलोड़ित कर रहा है, उनके सुख-दुःख का असर उसके हृदय पर पड़ रहा है।

बर्द्वान में उन महाशय के उतर जाने पर राजलक्ष्मी बहुत देर तक चुपचाप बैठी रही। मैंने खिड़की से नजर हटा कर पूछा—यह रोना-धोना किसके लिए हुआ? सरला के लिए या उसकी मा के लिए?

राजलक्ष्मी ने सिर उठाकर कहा—तुम शायद अब तक हम लोगों की बातचीत सुन रहे थे?

मैंने कहा—पास बैठा था, इसलिए सुनना ही पड़ा। मनुष्य जब खुद बातचीत नहीं करता तब दूसरे की बात

चीत अवश्य ही उसके कानों के भीतर प्रवेश करती है। संसार में कम बोलनेवाले के लिए भगवान् ने इस दण्ड की सृष्टि कर रक्खी है। इससे बचने का कोई उपाय नहीं। खैर, वह होगा, यह बतलाओ कि ये आँसू कसिके लिए खर्च कर रही थीं ? क्या मैं सुन नहीं सकता ?

राजलक्ष्मी ने कहा—मेरे आँसू किसके लिए गिरते हैं, यह सुनकर तुम्हे कोई लाभ नहीं।

मैंने कहा—लाभ की आशा तो मैं भी नहीं करता, केवल नुकसान बचाकर चलने से ही जानो मेरी जान बचे। सरला या उसकी मा के लिए जितना चाहे उतना आँखों के आँसू गिरें, मुझे कुछ आपत्ति नहीं; किन्तु सरला के बाप के लिए आँसू गिरना मैं पसन्द नहीं करता।

राजलक्ष्मी केवल एक 'हूँ' कह कर ही खिड़की के बाहर सिर निकालकर देखने लगी।

मैंने समझा था, ऐसी एक दिल्लगी खाली न जायगी; यह बहुत से बंद झरनों का मुँह खोल देगी। किन्तु वह तो हुआ ही नहीं, उलटे जो राजलक्ष्मी इधर देख भी रही थी, वह भी जाता रहा। मेरी दिल्लगी सुनकर उसने दूसरी तरफ मुँह फेर लिया।

किन्तु बहुत देर से मैं चुप था; बात करने के लिए भीतर एक उद्वेग उपस्थित हो गया था, इसी से अधिक देर तक चुप न रह सका। फिर बोला। कहा—बर्दवान से कुछ खाने को मोल ले लिया जाता तो अच्छा था।

राजलक्ष्मी ने कुछ उत्तर ही न दिया, चुप ही रही।

मैंने कहा—पराये शोक से अब तक इतना रोती रहीं, और घर के दुःख की ओर कान ही नहीं देतीं! यह विलायत हो आये हुए हिन्दुस्तानियों की विद्या कहाँ सीखी?

राजलक्ष्मी ने अब की धीरे-धीरे कहा—विलायत से लौटे हुओं पर तुम्हारी बड़ी भक्ति देखती हूँ।

मैंने कहा—हाँ, वे भक्ति के पात्र जो हैं!

राजलक्ष्मी ने कहा—क्यों, उन्होंने तुम्हारा क्या किया है?

मैंने कहा—अभी तक कुछ नहीं किया, किन्तु पीछे कुछ कर न बैठें, इसी भय से पहले ही से भक्ति कर रहा हूँ।

राजलक्ष्मी ने क्षण भर चुप रह कर कहा—यह तुम लोगों का अन्याय है! उन्हे तुम लोगों ने अपने दल से, जाति से, समाज से, सब ओर से निकाल बाहर कर दिया है। तब भी अगर वे तुम्हारे लिए कुछ भी करते हैं तो उसी के लिए तुम्हें उनका कृतज्ञ होना चाहिए।

मैंने कहा—अगर वे उसी गुस्से मे आकर पूरे-पूरे मुसलमान या ईसाई हो जाते तो हम उनके और भी अधिक कृतज्ञ होते। उनमे जो लोग अपने को ब्रह्मसमाजी कहते है, वे ब्रह्मसमाज को नष्ट करते हैं, जो अपने को हिन्दू समझते हैं वे हिन्दू-समाज के एक दम नाक मे दम करके मार रहे हैं। वे खुद क्या है, यह पहले ठीक कर लेकर अगर औरों के लिए रोने बैठते, तो उससे शायद उनका अपना मङ्गल होता,

और जिनके लिए वे रोते है, उनका भी शायद कुछ उपकार हो सकता।

राजलक्ष्मी ने कहा—लेकिन मुझे तो यह बात नहीं जान पड़ती।

मैंने कहा—तुम्हें न जान पड़ने से भी वैसी क्षति नहीं; किन्तु इस समय मेरा काम जिससे अटका हुआ है, मुझे जिस चीज़ की ज़रूरत है, मैं जिस बारे में पूछ रहा हूँ, वह और बात है। कहाँ, उसका तो तुमने कुछ जवाब नहीं दिया ?

अब की राजलक्ष्मी ने हँसकर कहा—अजी उसके लिए तुम्हारा काम न अटकेगा। पहले तुम्हे भूख लगे, उसके बाद सोचकर देखा जायगा।

मैंने कहा—तब तुरन्त सोचकर चाहे जिस स्टेशन से, जो कुछ मिले वही खरीद कर खाने को दोगी, यही तो ? लेकिन सो न होगा, यह मैं कहे रखता हूँ।

जवाब सुनकर वह कुछ देर तक चुपचाप मेरी ओर ताकती रही। उसके बाद ज़रा हँसकर कहा—यह मै कर सकती हूँ, तुम्हें विश्वास होता है ?

मैंने कहा—खूब, इतना भी विश्वास तुम पर न रहेगा ?

"ठीक है !" कह कर वह फिर खिड़की के बाहर ताकती हुई चुपचाप बैठी रही।

आगे के स्टेशन में राजलक्ष्मी ने रतन को बुलाकर खाने

की सामग्री मँगा ली और उसे तमाखू भर लाने का हुक्म दिया। उसके बाद एक थाली में सब खाने का सामान सजाकर मेरे सामने रख दिया। देखा, इस विषय मे कहीं कुछ रत्ती भर भी भूल-चूक नहीं हुई। मुझे जो कुछ रुचता है, वह सब मँगा कर राजलक्ष्मी ने रख लिया है।

बेंच के ऊपर रतन ने आसन बिछा दिया। खूब अच्छी तरह डटकर भोजन करने के बाद गुड़गुड़ी का नल मुँह से लगा कर मैं आराम से आँख मूँदने का उपक्रम करने लगा।

इसी समय राजलक्ष्मी ने कहा—रतन, यह सब उठा ले जा। जो खाया जा सके, खा ले। और तुम लोगों की गाड़ी में अगर और कोई खाय तो उसे दे देना।

किन्तु रतन को अत्यन्त लज्जा और संकोच प्रकट करते देख कर कुछ विस्मित होकर मैंने पूछा—क्यों, तुमने कुछ भी नहीं खाया ?

राजलक्ष्मी ने कहा—ना, मुझे भूख नहीं है।—जा न रतन, खड़ा क्यों है ? गाड़ी छूट जायगी !

रतन लज्जा के मारे जैसे मर गया। बोला—मुझसे बड़ी ग़लती हो गई बाबूजी ! मुसलमान कुली ने खाने का सामान छू लिया। कितना ही कहता हूँ, मा जी, स्टेशन से कुछ खरीद लाऊँ, लेकिन किसी तरह मानतीं ही नहीं।

यों कह कर मेरे मुख पर एक कातर दृष्टि डाल कर उसने जैसे मेरी ही अनुमति माँगी।

किन्तु मेरे बोलने के पहले ही राजलक्ष्मी ने उसे धमका कर कहा—तू जायगा नहीं रतन? खड़ा-खड़ा बहस ही किये जायगा?

रतन ने फिर कुछ द्विरुक्ति न करके खाने की सामग्री उठा कर प्रस्थान किया। ट्रेन चल देने पर राजलक्ष्मी आकर मेरे सिरहाने बैठ गई। मेरे सिर के बालों में धीरे-धीरे अँगुली-सञ्चालन करते हुए उसने कहा—अच्छा देखो—

मैंने बाधा देकर कहा—देखूँगा पीछे, लेकिन—

उसने भी मुझे उसी घड़ी थमा कर कहा—लेकिन कह कर तुम्हारे लेक्चर देने की कुछ जरूरत नहीं, मैं समझ गई। मैं मुसलमान से घृणा भी नहीं करती और उसके छू लेने से खाने की सामग्री खराब हो जाती है, यह भी नहीं मानती। अगर ऐसा समझती तो वह सामान तुम्हें खाने को न देती।

मैंने कहा—तो फिर तुमने ख़ुद क्यों नही खाया?

राजलक्ष्मी ने कहा—स्त्री-जाति को न खाना चाहिए।

मैंने कहा—क्यों?

उसने कहा—उसमे क्यों क्या? स्त्री के लिए खाने का निषेध है।

मैंने कहा—लेकिन मर्द के लिए नहीं है?

राजलक्ष्मी ने मेरा सिर हिला कर कहा—ना, मर्द के लिए ऐसा कड़ा बन्धन या आईन-कानून क्यों हो? उनका जो जा चाहे खायँ, जो जी चाहे पहने, जिस तरह हो, सुख से रहें।

हम लोग आचार का पालन करती रहें, बस। हम लोग सैकड़ों कष्ट सह सकती हैं; लेकिन क्या तुम लोग भी सह सकते हो? यही देखो, अभी शाम ही हुई है, अभी से भूख के मारे तुम्हारी आँखों के आगे अँधेरा छा रहा था!

मैंने कहा—हाँ, यह हो सकता है; लेकिन कष्ट न सह सकना कुछ हमारे लिए गौरव की बात नहीं है।

राजलक्ष्मी ने गर्दन हिला कर कहा—ना, इसमें तुम लोगों का कुछ अगौरव नहीं है। तुम लोग तो हमारी तरह दासी की जाति नहीं हो कि कष्ट सहो! अगर न सह सकें तो हमारे ही लिए यह लज्जा की बात है।

मैंने कहा—यह न्याय-शास्त्र तुमको किसने सिखलाया है? उन्हीं काशी के गुरुदेव ने?

राजलक्ष्मी ने मेरे मुख के बहुत ही पास झुक कर क्षण भर स्थिर रह कर मुस्करा कर कहा—मैंने जो कुछ शिक्षा पाई है वह सब तुमसे ही। तुमसे बड़ा गुरु मेरे और कोई नहीं है।

मैंने कहा—तो तुमने अपने गुरुदेव के निकट ठीक उलटी बात सीख रक्खी है। मैंने किसी दिन नहीं कहा कि तुम लोग दासी की जाति हो। बल्कि मैं तो सदा से यही समझता आ रहा हूँ कि तुम लोग दासी नहीं हो। तुम किसी बात में, किसी पहलू से, हम लोगों की अपेक्षा तिल भर भी छोटी नहीं हो, हीन नहीं हो।

राजलक्ष्मी की दोनों आँखें डबडबा आईं। उसने कहा—

यह मैं जानती हूँ। और जानने ही के कारण यह बात तुम्हारे निकट सीख सकी हूँ। तुम्हारी तरह अगर सभी इस तरह सोच सकते तो पृथ्वी भर की सभी स्त्रियों के मुख से तुम यही बात सुन पाते, जो मै कह रही हूँ। कौन बड़ा है कौन छोटा, यह समस्या ही कभी न उठती।

मैंने कहा—अर्थात् इस सत्य को बिना कुछ विचार किये सभी मान लेतीं।

राजलक्ष्मी ने कहा—हाँ।

तब मैंने हँस कर कहा—भाग्य से पृथ्वी भर की सभी औरतें तुम्हारे साथ एकमत नहीं है, इसी से रक्षा है। किन्तु अपने को इतना हीन समझने में तुम्हे लज्जा नहीं लगती ?

मेरे परिहास पर राजलक्ष्मी ने ध्यान दिया या नहीं, कह नहीं सकता।

उसने अत्यन्त सहज भाव से कहा—लेकिन इसमे तो कुछ हीनता नहीं है।

मैंने कहा—ठीक है ! हम प्रभु हैं, तुम दासी हो यह संस्कार इस देश की स्त्रियों के मन मे इतना बद्धमूल है—इतनी जड़ पकड़े हुए है—कि इसको हीनता भी तुम्हे नहीं देख पड़ती। जान पड़ता है, इसी पाप से पृथ्वीतल के सभी देशों की स्त्रियों से तुम सचमुच आज छोटी हो गई हो।

राजलक्ष्मी एकाएक सख्त होकर बैठ गई और दोनों आँखें प्रदीप्त करके उसने कहा—ना, इस कारण नहीं। तुम्हारे देश

की स्त्रियाँ अपने को छोटी समझ कर छोटी नहीं हो गई हैं; तुम्हीं लोगों ने उन्हें छोटी समझ-समझ कर छोटी कर दिया है, और आप भी छोटे हो गये हो। सच्ची बात यही है।

इस बात ने अकस्मात् नई-सी होकर मेरे हृदय मे धक्का मारा। इसके भीतर जो कुछ पहेली थी वह धीरे-धीरे सुस्पष्ट हो गई। जान पड़ने लगा, वास्तव मे बहुत कुछ सत्य इसके भीतर छिपा हुआ है, जिसे आज तक मैंने देख नहीं पाया था।

राजलक्ष्मी ने कहा—तुम उन भद्रपुरुष के सम्बन्ध मे दिल्लगी कर रहे थे, लेकिन उनकी बातें सुनकर मेरी आँखें कितनी खुल गई हैं, यह तो तुमको खबर नहीं ?

बेशक खबर नहीं, यह मेरे स्वीकार करते ही राजलक्ष्मी ने कहा—तुमको खबर न होने का कारण है। किसी वस्तु को जानने के लिए जब तक मनुष्य के हृदय के भीतर से एक व्याकुलता नहीं उठती, तब तक उसकी दृष्टि में सभी धुँधला देख पड़ता है। इतने दिन तुम्हारे मुख से सुनकर सोचती थी कि सत्य ही यदि हमारे देश के लोगों का दुःख इतना अधिक है, सत्य ही हमारा समाज ऐसा भयानक अन्धा है, तो मनुष्य उसके भीतर जीवित ही कैसे रहता है और उसे मानकर चलता ही किस तरह है ?

मुझे चुप होकर सुनते देखकर उसने आहिस्ते-आहिस्ते कहा—मगर तुम यह सब समझोगे किस तरह ? कभी इन

लोगों के बीच रहे नहीं, कभी इनके सुख-दुःख को भोग नहीं किया, इसी से बाहर से बाहर के समाज के साथ तुलना करके सोचते थे कि शायद इनके कष्ट की सीमा नहीं है। जो बड़ा आदमी ज़मींदार पुलाव खाकर रहता है, वह अपनी किसी ग़रीब प्रजा को रूखा-सूखा मोटा भात खाते देख कर सोचता है, इसके दुःख की सीमा नहीं है। लेकिन वह जैसे भूल करता है, वैसे ही तुमने भी भूल की है।

मैंने कहा—तुम्हारी बहस यद्यपि न्यायशास्त्र का आईन नहीं है तो भी मैं पूछता हूँ, तुमने किस तरह जाना कि देश के सम्बन्ध में मुझे इनसे अधिक ज्ञान नहीं है ?

राजलक्ष्मी ने कहा—कैसे होगा ? तुम्हारे समान स्वार्थपर मनुष्य संसार में और नहीं। जो केवल अपने आराम के लिए भागा-भागा फिरता है, वह घर की खबर कैसे जानेगा ! तुम्हारे समान लोग ही समाज की अधिक निन्दा करते घूमते हैं, जो कि समाज की कोई पर्वाह ही नहीं करते। तुम लोग न तो अच्छी तरह पराये समाज का परिचय जानते हो और न अच्छी तरह अपने समाज का हाल ही।

मैंने कहा—उसके बाद ?

राजलक्ष्मी ने कहा—उसके बाद यही जैसे बाहर से बाहर की सामाजिक व्यवस्था देखकर तुम लोग सोच-सोच कर मरते हो, हमारे घर की औरतें दिन-रात घर के भीतर ही बन्द रह कर काम करती हैं, इसलिए उनके समान दुखिया, उनके समान

पीड़ित, उनके समान हीन शायद किसी देश की औरतें नहीं हैं। किन्तु कुछ दिन हमारी चिन्ता छोड़ देकर अपनी चिन्ता तो करके देखो। अपने को कुछ ऊँचा करने की चेष्टा करो, अगर कहीं कुछ सचमुच का नुक्सान होगा तो वह केवल तभी दिखाई देगा, किन्तु उसके पहले नहीं।

मैंने कहा—उसके बाद ?

राजलक्ष्मी ने बिगड़ कर कहा—तुम मुझे बना रहे हो, यह मैं जानती हूँ। लेकिन मैंने व्यग्य या दिल्लगी करने की बात नहीं कही। घर की पुरखिन-सबसे कम, सबसे खराब खाती है। अनेक समय नौकरों से भी बुरा भोजन करती है, अक्सर नौकरों से भी अधिक परिश्रम करती है। किन्तु उसके दुःख से आकुल होकर रोते न फिर कर बल्कि हमें इसी तरह दासी के ही समान रहने दो, मगर और देश की रानी बनाने की चेष्टा न करो—मैं यही बात तुमसे कहती हूँ।

मैंने कहा—देखता हूँ, तुमने तो तर्कशास्त्र के सिर पर पैर रख कर उसे रसातल मे पहुँचाने का ढङ्ग अवश्य कर डाला है, किन्तु मैं भी शास्त्र के मतानुसार बहस करने का ठीक रास्ता नहीं ढूँढ़ पा रहा हूँ—यह स्वीकार करता हूँ।

उसने कहा—बहस करने को इसमें कुछ नहीं है।

मैंने कहा—रहने पर भी मुझमें इस समय वह शक्ति नहीं है, बड़ी नींद लगी है। लेकिन हाँ, तुम्हारी बात को एक तरह से मैं समझ पाया हूँ।

राजलक्ष्मी ने तनिक चुप रहकर कहा—हमारे देश में चाहे जिस कारण से हो, छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, सभी में रुपये का लोभ बहुत अधिक बढ़ गया है। कोई अब थोड़े में सन्तुष्ट होना नहीं जानता, चाहता भी नहीं। इससे कितना अनिष्ट हो रहा है, यह मैं अच्छी तरह जान गई हूँ।

मैंने कहा—बात तो सच है, लेकिन तुम्हें इसकी खबर कैसे लगी ?

राजलक्ष्मी ने कहा—रुपये के लोभ ने ही तो मेरी यह दशा की है। लेकिन पहले के ज़माने में शायद इतना लोभ न था।

मैंने कहा—इसका इतिहास मेरा ठीक जाना नहीं है।

वह कहने लगी—कभी न था। उस ज़माने में कभी मा रुपये के लोभ से बेटी को इस राह में न भेजती। तब धर्म का भय था। आज तो मेरे पास रुपये की कमी नहीं; लेकिन मेरे समान दुखी क्या कोई है ? जो राह का भिखारी है, वह भी शायद आज मुझसे कहीं अधिक सुखी है।

उसका हाथ अपने हाथ में लेकर मैंने पूछा—तुम्हें क्या सत्य ही इतना कष्ट है ?

राजलक्ष्मी ने क्षणमात्र मौन रहकर आँचल से एक बार दोनों आँखे पोंछ लेकर कहा—मेरी बात मेरे अन्तर्यामी ही जानते हैं।

इसके बाद हम दोनों स्तब्ध हो रहे।

गाड़ी की चाल धीमी हो गई। क्रमशः एक छोटे स्टेशन पर आकर गाड़ी थम गई।

दूसरे दिन यथासमय मैं काशी आकर पहुँचा और पियारी के घर ही मे आश्रय ग्रहण किया। ऊपर की दो कोठरियों के सिवा लगभग सारे घर में ही भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की अनेक विधवायें भरी पड़ी थीं।

पियारी ने कहा—ये सब मेरे किरायेदार हैं।

यह कह कर मुँह फेर कर वह ज़रा हँस दी।

मैने कहा—हँसी क्यों? जान पड़ता है, किराया वसूल नहीं होता?

पियारी ने कहा—ना। बल्कि कुछ-कुछ देना पड़ता है।

मैंने कहा—इसके माने?

पियारी अब की सचमुच ज़ोर से हँस पड़ी। बोली—इसके माने यह कि भविष्य की आशा से मुझे ही इन्हें खिला-पिला कर जीवित रखना पड़ता है। जीवित रहेंगी तभी तो बाद को देंगी? यह भी तुम नहीं समझ पाते?

मैंने भी हँस कर कहा—समझ क्यों नहीं पाता। इसी तरह भविष्य की आशा से कितने लोगों को तुम्हें अन्न-वस्त्र की रसद पहुँचानी पड़ती है, मैं केवल यही सोच रहा हूँ।

राजलक्ष्मी ने कहा—इनके सिवा दो-एक कुटुम्बी भी यहाँ हैं।

मैंने कहा—सचमुच? किन्तु उनकी खबर कैसे तुम्हे मिली?

पियारी ने कुछ सूखी हँसी हँसकर कहा—मा के साथ आकर काशी मे ही मेरा मरण हुआ था, यह शायद तुम्हें

स्मरण नहीं है ? उस समय ऐसे असमय में जिन्होंने मेरी सद्गति की थी उनका वह उपकार प्राण रहते कहीं भूला जा सकता है ?

मैं चुप हो रहा। पियारी कहने लगी—ये लोग बड़े दयालु हैं, इसी से पास लाकर इन पर मैंने कुछ कड़ी नज़र रक्खी है कि लोगों का और अधिक उपकार करने का सुयोग ये न पावें।

उसके मुख की ओर देखकर एकाएक मेरे मुँह से निकल गया—तुम्हारे हृदय के भीतर क्या है, यह कभी-कभी चीर कर देखने को जी चाहता है राजलक्ष्मी।

राजलक्ष्मी ने कहा—जब मैं मर जाऊँ तब देखना। अच्छा, घर जाकर ज़रा सो रहो। जब भोजन तैयार हो जायगा तब तुम्हें जगा दूँगी।

यों कहकर मेरी कोठरी हाथ से दिखाकर वह सीढ़ियों से नीचे उतर गई।

मैं बहुत देर तक वहीं चुपचाप खड़ा रहा। यह बात नहीं है कि आज मैंने उसके हृदय का विशेष परिचय पाया हो, किन्तु मेरे अपने हृदय में इस कथा ने एक नये आवर्त्त की सृष्टि कर दी।

रात को पियारी ने कहा—तुम्हे वृथा ही कष्ट देकर इतनी दूर ले आई। गुरुदेव तीर्थ-यात्रा करने चले गये हैं, उन्हें तुमको दिखा न सकी।

मैंने कहा—उसके लिए मैं कुछ भी दुखित नहीं हूँ। फिर कलकत्ते लौट जाओगी न ?

पियारी ने सिर हिलाकर जताया—"हाँ।"

दम भर बाद फिर गाड़ी ने चलना शुरू कर दिया।

मैंने कहा—अच्छा क्या करने से तुम्हारा शेष जीवन सुख से बीत सकता है, मुझसे कह सकती हो ?

राजलक्ष्मी ने कहा—यह मैंने सोचकर देख लिया है। मेरे सब रुपये-पैसे, सारी दौलत अगर किसी तरह चली जाय, कुछ न रहे, एक दम निराश्रय हो जाऊँ तो तभी बस—

फिर हम दोनों चुप हो रहे। उसकी यह बात इतनी स्पष्ट थी कि सभी आदमी उसे अनायास समझ सकते हैं, मुझे भी समझते देर न लगी।

कुछ देर चुप रह कर मैंने पूछा—यह ख़याल तुम्हारे मन में कब से आया ?

राजलक्ष्मी ने कहा—जिस दिन से अभया का हाल मालूम हुआ उसी दिन से।

मैंने कहा—लेकिन उनकी जीवन-यात्रा तो इसी बीच में समाप्त नहीं हो गई। भविष्य में वे कितना दुःख पा सकते हैं, यह तो तुम नहीं जानतीं।

उसने सिर हिला कर कहा—ना, सचमुच नहीं जानती; किन्तु वे चाहे कितना ही दुःख पावें, मेरा जैसा दुःख किसी दिन न पावेंगे, यह मैं निश्चय कह सकती हूँ।

फिर कुछ देर चुप रह कर मैंने कहा—लक्ष्मी, तुम्हारे लिए मैं सर्वस्व त्याग कर सकता हूँ, लेकिन मान-प्रतिष्ठा कैसे छोड़ दूँ ?

राजलक्ष्मी ने कहा—मैं क्या तुमसे यही कहती हूँ ? और मान ही तो मनुष्य की असल चीज़ है। उसे ही अगर नहीं त्याग कर सकते तो फिर त्याग की बात ज़बान पर क्यों लाते हो ? तुमसे तो मैंने कुछ भी त्याग करने को नहीं कहा।

मैंने कहा—तुमने कहा बेशक नहीं, किन्तु मैं त्याग कर सकता हूँ। मान-सम्भ्रम चले जाने के बाद पुरुष का जीवित रहना विडम्बना है। केवल उसी मान-सम्भ्रम के अतिरिक्त और सभी कुछ मैं त्याग कर सकता हूँ।

राजलक्ष्मी ने सहसा अपना हाथ खींच लेकर कहा—मेरे लिए तुमको कुछ भी न त्याग करना होगा। लेकिन तुम क्या समझते हो, केवल तुम्हीं लोगों के मान-सम्भ्रम है, हम लोगों के नहीं है ? हम लोगों के लिए उसे त्याग करना क्या इतना ही सहज है ? तो भी तुम्हीं मर्दों के लिए कितनी ही सैकड़ों-हज़ारों औरतें इसी मान-सम्भ्रम को धूल की तरह झाड़कर फेंक देती हैं, और इस बात को तुम बेशक नहीं जानते, किन्तु मैं जानती हूँ।

मेरे कुछ कहने की चेष्टा करते ही रोकर उसने कहा—रहने दो, अब और अधिक बातों की ज़रूरत नहीं। तुमको अब तक मैंने जो समझा था वह ठीक न था। तुम सो रहो, इस बारे में मैं भी किसी दिन बातें न करूँगी, तुम भी यह चर्चा न उठाना।

यह कह कर उठ कर वह अपनी बेंच पर जा बैठी।

मैंने कहा—मेरे साथ चलने की क्या कोई आवश्यकता है? न हो तो मैं ज़रा पश्चिम में घूम आऊँ।

पियारी ने कहा—बंकु के ब्याह को तो अभी देर है, चलो न, मै भी एक बार प्रयाग मे स्नान कर आऊँ।

कुछ मुश्किल में पड़ गया। मेरे ज्ञाति-सम्पर्क के एक चाचा नौकरी के उपलक्ष से प्रयाग में रहते थे। सोचा था, उन्हीं के डेरे में जाकर ठहरूँगा। इसके सिवा और भी कई एक परिचित आत्मीय बन्धु भी वहाँ थे।

पियारी फौरन् मेरे मन का भाव ताड़ गई।

उसने कहा—मगर मेरे साथ रहने से शायद कोई देख न ले—क्यों न?

अप्रतिभ होकर मैंने कहा—वास्तव में तुम्हारा कहना सच है। बदनामी एक ऐसी चीज है कि झूठी बदनामी को भी डरे बिना कोई नहीं रह सकता।

पियारी ने ज़बरदस्ती की हँसी हँसकर कहा—सो ठीक है। गत वर्ष तो बीमारी की हालत मे मैं एक तरह से दिन-रात तुमको गोद ही में लिये बैठी रहती थी। भाग्य से वह हालत किसी ने देख नहीं ली! वहाँ शायद तुम्हारी कोई जान-पहचान के आत्मीय या बन्धु-बान्धव नहीं थे?

मैंने अत्यन्त लज्जित होकर कहा—मुझे खोंचा देना वृथा है। मनुष्यता की दृष्टि से मेरा स्थान तुमसे बहुत नीचे है, यह तो मैं अस्वीकार नहीं करता।

पियारी तीखे स्वर मे कह उठी—खोंचा ? तुमको आइन्दा खोंचा या ताना दे सकूँगी, यही सोचकर शायद मैं वहाँ गई थी ? देखो, मनुष्य को व्यथा देने की भी एक सीमा होती है। उसे न नाँघो।

दम भर स्तब्ध रहकर फिर कहा—बेशक कलङ्क ही है! किन्तु मैं होती तो इस कलङ्क को शिरोधार्य करके लोगों को बुलाकर भले ही दिखाती, किन्तु ऐसी बात जबान से नहीं निकाल सकती।

मैंने कहा—तुमने बेशक मेरी जान बचाई है, मुझे प्राण-दान दिया है; किन्तु मैं एक अत्यन्त छोटा मनुष्य हूँ राज-लक्ष्मी ! तुम्हारे साथ मेरी तुलना ही नही हो सकती।

राजलक्ष्मी ने दर्प के स्वर मे कहा—प्राण अगर मैंने तुम्हारे बचाये, प्राण-दान अगर दिया तो तुम्हारी गरज से नहीं, अपनी गरज से। उसके लिए तुमको तनिक भी कृतज्ञ न होना होगा। लेकिन मै तुम्हे छोटा, छोटी तबीअत का, आदमी समझने मे असमर्थ हूँ। अगर समझ सकती तब तो फिर अच्छा ही न होता—गले में फाँसी लगाकर सारे दु खों का, हृदय की ज्वाला का, अन्त ही न कर डालती।

यह कहकर प्रत्युत्तर की अपेक्षा न करके वह वहाँ से चली गई।

दूसरे दिन सवेरे राजलक्ष्मी चाय देकर चुपचाप चली जा रही थी, मैंने पुकार कर कहा—बातचीत बन्द है क्या ?

उसने घूमकर खड़े होकर कहा—ना, कुछ कहोगे ?

मैंने कहा—चलो, एक वार प्रयाग तक घूम आवें।

राजलक्ष्मी—अच्छा तो है, जाओ न।

मैं—तुम भी चलो।

राजलक्ष्मी—अनुग्रह कर रहे हो क्या?

मैं—क्या तुम अनुग्रह नहीं चाहतीं।

राजलक्ष्मी ने कहा—नहीं। अगर किसी समय प्रयोजन होगा तो माँग लूँगी, अभी न चाहिए।

इतना कहकर वह अपने काम से चली गई।

मेरे मुँह से केवल एक लंबी-गहरी साँस भर निकली, कोई शब्द नहीं।

दोपहर को भोजन के समय मैंने हँसकर कहा—अच्छा लक्ष्मी, मुझसे बोले-चाले बिना क्या तुम रह सकती हो, जो इस असाध्य-साधन की चेष्टा कर रही हो?

राजलक्ष्मी ने शान्त गंभीर मुख से कहा—सामने रहने पर कोई भी बिना बोले-चाले नहीं रह सकता, मैं भी न रह सकूँगी। इसके सिवा मेरी यह इच्छा भी नहीं है।

मैंने कहा—तो फिर क्या इच्छा है?

राजलक्ष्मी ने कहा—मैं कल से ही सोच रही हूँ कि इस खींचातानी को अब रोक देना ही ठीक है। तुमने भी एक तरह से मुझे यह स्पष्ट ही जता दिया है और मैं भी एक तरह से समझ गई हूँ। भूल मेरी ही थी, यह मैं अपने निकट भी स्वीकार करती हूँ। लेकिन—

उसे सहसा थमते देखकर पूछा—लेकिन क्या ?

राजलक्ष्मी ने कहा—लेकिन कुछ भी नहीं। यह क्या मैं एक निर्लज्ज वाचाल की तरह ज़बरदस्ती पीछे लगी फिर रही हूँ—

इतना कहकर एकाएक मुख को जैसे घृणा से कुंचित करके कहा—लड़का ही क्या सोचता होगा, और नौकर-चाकर ही क्या समझ रहे होंगे। छी-छी यह तो जैसे एक हँसी का व्यापार बना दिया है।

तनिक थम कर कहा—बुढ़ापे मे अब क्या यह सब मुझे शोभा देता है। तुम इलाहाबाद जाना चाहते थे, जाओ। अगर हो सके तो बरमा जाने के पहले एक बार मुझसे भेंट कर जाना।

इतना कहकर राजलक्ष्मी चली गई। साथ ही साथ मेरी भूख भी ग़ायब हो गई। उसका मुख देखकर आज मुझे मालूम हो गया कि ये सब मान-अभिमान की बातें नहीं हैं। उसने सचमुच ही सोचकर कुछ ठीक कर लिया है।

आज तीसरे पहर हिन्दुस्तानी दासी जलपान का सामान लेकर आई। यह देखकर कुछ आश्चर्य के साथ मैंने पियारी के बारे में पूछा। उसका प्रत्युत्तर जो मिला उसने मुझे अधिकतर विस्मित कर दिया। मालूम हुआ, पियारी घर मे नहीं है; वह साजसज्जा करके, जोड़ी-गाड़ी पर चढ़कर कहीं गई है। जोड़ी-गाड़ी ही कहाँ से आई और वेश-भूषा करके

उसको एकाएक कहाँ जाने की ज़रूरत हुई, कुछ भी समझ में न आया। मगर हाँ, उसके अपने ही मुख की बात याद पड़ गई कि इसी काशी में एक दिन वह मरी थी।

यह सच है कि कुछ समझ मे नहीं आया, लेकिन तो भी इस ख़बर मे जी ख़राब होगया।

सन्ध्या होने पर घर-घर रोशनी होगई; लेकिन राजलक्ष्मी लौटकर न आई।

चादर कन्धे पर डाल कर ज़रा घूमने के लिए निकला। रास्ते-रास्ते घूमकर बहुत कुछ देख सुनकर रात दस बजे के बाद घर आकर सुना, पियारी उस समय भी लौटकर न आई थी।

मामला क्या है? एक तरह का भय-सा मालूम पड़ने लगा। रतन को बुलाकर, सब सङ्कोच छोड़कर इसका पता लगाने की बात सोच रहा था कि इसी समय एक भारी जोड़ी के टापों की आवाज कानों में पड़ी। खिड़की से झाँक कर देखा, एक बड़ी भारी फिटन घर के सामने ही खड़ी है।

पियारी गाड़ी से उतर आई। चाँदनी के प्रकाश में उसके सब अंगों के जड़ाऊ गहने झलमला उठे। जो दो भद्रपुरुष गाड़ी में बैठे थे, उन्होंने शायद धीमे स्वर में पियारी से संभाषण किया होगा, मगर मैंने सुन नहीं पाया। वे बंगाली थे या बिहारी, यह भी मै पहचान न सका। चाबुक खाकर दोनों घोड़े पलक मारकर नज़र के बाहर चले गये।

---

## चौदहवाँ परिच्छेद

राजलक्ष्मी मेरी खबर लेने उसी साजसज्जा से मेरी कोठरी में आकर दाखिल हुई।

मैंने उछल उठकर उसकी ओर दाहना हाथ फैलाकर थियेटरी स्वर में कहा—ओ रे पाषंड-रोहिणी! तू गोविन्दलाल को नहीं पहचानती?* आहा! आज अगर मेरे पास एक पिस्तौल होती! या एक तलवार ही होती!

राजलक्ष्मी ने सूखे हुए गले से कहा—तो तुम क्या करते? खून?

मैंने हँसकर कहा—ना भाई पियारी मुझे इतना बड़ा नवाबी शौक नहीं है! इसके सिवा इस बीसवीं सदी मे ऐसा निष्ठुर नराधम राक्षस कौन है, जो संसार की इतने बड़े आनन्द की खान को पत्थर से बन्द कर देगा? बल्कि आशीर्वाद देता हूँ कि हे बाई-कुल-रानी! तुम दीर्घजीविनी होओ, तुम्हारा रूप त्रिलोकविजयी हो, तुम्हारा वीणा-विनिन्दक कण्ठ-स्वर और चरण-कमलों का नृत्य उर्वशी और तिलोत्तमा के गर्व को खर्च करे। मैं दूर ही से तुम्हारी जयजयकार करके धन्य होऊँ।

पियारी ने कहा—इन सब बातों का क्या अर्थ?

मैंने कहा—अर्थमनर्थम्! खैर, इस चर्चा को छोड़ो। मैं

---

* बंकिम बाबू के 'कृष्णकान्त का दानपत्र' उपन्यास के पात्र।

इसी एक बजे की गाड़ी से बिदा होता हूँ। फिलहाल प्रयाग जाऊँगा, उसके बाद बङ्गालियों के परमतीर्थ नौकरी के स्थान अर्थात् बरमा। अगर समय और सुयोग हुआ तो मुलाक़ात कर जाऊँगा।

राजलक्ष्मी ने कहा—मैं कहाँ गई थी, यह भी सुनने की तुम ज़रूरत नहीं समझते ?

मैंने कहा—कुछ भी नहीं, बिलकुल नहीं।

राजलक्ष्मी ने कहा—यह बहाना पाकर क्या तुम एकदम चले जाते हो ?

मैंने कहा—इस पाप-मुख से यह तो अब भी नहीं कह सकता। हाँ, इस गोरखधधे से—इस उलझन से—अगर निकल जा सकूँ तभी कह सकूँगा।

पियारी ने कुछ देर चुपचाप खड़े रह कर कहा—तुम क्या मेरे ऊपर मनमाना अत्याचार कर सकते हो ?

मैंने कहा—मनमाना कैसा ? बिलकुल ही नहीं कर सकता। बल्कि जानकर या बिना जाने अगर कभी कुछ भी अत्याचार किया हो तो उसके लिए क्षमा-प्रार्थना करता हूँ।

राजलक्ष्मी ने कहा—इसके माने यह कि आज रात ही को तुम चले जाओगे ?

मैंने कहा—हाँ।

राजलक्ष्मी ने कहा—मुझे बिना किसी अपराध के दण्ड देने का अधिकार तुमको है ?

मैंने कहा—ना, रत्ती भर भी नहीं। किन्तु मेरे जाने को ही अगर तुम दण्ड समझ लो तो अवश्य अधिकार है।

पियारी ने एकाएक कुछ उत्तर नहीं दिया। मेरी ओर कुछ देर चुपचाप ताकते रह कर उसने कहा—मैं कहाँ गई थी, क्यों गई थी, कुछ भी न सुनोगे ?

मैंने कहा—ना। मेरी राय लेकर तुम गई नहीं थी कि लौटकर तुम मुझे वहाँ का हाल सुनाओ। इसके सिवा इसके लिए न मुझे समय ही है और न मेरा जी ही चाहता है।

पियारी चोट खाई हुई नागिन की तरह सहसा गरज उठी—मेरा भी सुनाने को जी नहीं चाहता। मैं किसी की ज़रखरीद लौंडी-बाँदी नहीं हूँ कि कहाँ जाऊँ, कहाँ न जाऊँ, इसकी भी मुझे अनुमति लेनी होगी! जाते हो तो जाओ!—

यों कहकर रूप और गहनों की चमक की एक लहर उठा कर तेज़ी के साथ वह मेरे पास से चली गई।

गाड़ी बुला लाने के लिए मैंने एक नौकर को भेजा था। लगभग घंटे भर के बाद सदर दरवाज़े पर एक गाडी के रुकने का शब्द सुनकर बैग हाथ में उठाकर मैं जाने को तैयार हुआ। पियारी आकर मेरे पीछे खड़ी होगई।

उसने कहा—यह क्या तुम लड़कों का खेल समझते हो? मुझे अकेली छोड़कर चले जाओगे तो नौकर-चाकर क्या

सोचेंगे ? तुम क्या इन लोगों की दृष्टि में भी मेरा मान न रक्खोगे ?

मैंने घूमकर खड़े होकर कहा—अपने नौकर-चाकरों के साथ तुम इसका फैसला करो—मेरे साथ इसका कुछ सम्बन्ध नहीं।

राजलक्ष्मी ने कहा—अच्छा मान लिया कि नहीं है, लेकिन मैं लौटकर बंकु से ही क्या कहूँगी ?

मैंने कहा—उससे कह देना कि मैं पछाँह की सैर करने गया हूँ।

राजलक्ष्मी ने कहा—यह भी भला कोई विश्वास कर सकता है ?

मैंने कहा—अच्छा तो जिस पर विश्वास हो, ऐसी कुछ बात बनाकर कह देना।

पियारी ने क्षण भर मौन रह कर कहा—अगर मैं कुछ अनुचित ही कर बैठी हूँ तो क्या उसकी क्षमा नहीं है ? तुम न क्षमा करोगे तो और कौन करेगा ?

मैंने कहा—पियारी, यह बात तो तुम लौंडी-बाँदी की-सी कह रही हो। तुम्हारे मुँह में तो शोभा नहीं देती।

इस व्यंग्य का उत्तर पियारी सहसा नहीं दे सकी। उसका मुँह तमतमा उठा। वह चुप होकर खड़ी रही।

यह स्पष्ट मेरी समझ में आगया कि वह प्राणपण से अपने को सँभालने की चेष्टा कर रही है। बाहर से गाड़ीवान ने ऊँचे स्वर से विलम्ब का कारण पूछा।

मेरे चुपचाप बैग हाथ में उठाते ही अब की प्यारी धम से मेरे पैरों के पास बैठ गई और रुँधे हुए स्वर में कहने लगी—मैं सचमुच का कोई अपराध कभी नहीं कर सकती, यह जान-कर भी अगर दण्ड देना चाहते हो तो अपने हाथ से दो; लेकिन इतने आदमियों के सामने मेरा सिर नीचा करके चले न जाना। आज इस तरह अगर चले जाओगे तो मैं फिर किसी के आगे सिर न उठा सकूँगी।

हाथ का बैग रखकर एक कुर्सी पर मैं बैठ गया। बोला—अच्छा, आज तुम्हारा और मेरा आखिरी फैसला हो जाय। तुम्हारा आज का आचरण मैंने माफ कर दिया। किन्तु मैंने बहुत सोच कर देखा है, हम दोनों की अब भेंट-मुलाकात न हो सकेगी।

पियारी ने अपना अत्यन्त उत्कण्ठित चिन्तित मुख मेरी ओर उठाकर डरते-डरते प्रश्न किया—क्यों ?

मैंने कहा—अप्रिय सत्य सह सकोगी ?

पियारी ने सिर हिलाकर अस्फुट स्वर में कहा—सह सकूँगी।

किन्तु एक आदमी के व्यथा सहने को तैयार होते ही उसे व्यथा पहुँचाने का काम सहज नहीं हो उठता। मुझे बहुत देर तक स्तब्ध होकर बैठे-बैठे बहुत देर तक सोचना पड़ा। किन्तु आज किसी तरह अपना इरादा न छोड़ने का मैंने निश्चय कर लिया था। इसी से अन्त को धीरे-धीरे मैंने कहा—लक्ष्मी,

तुम्हारे आज के व्यवहार को क्षमा करना चाहे जितना कठिन हो, मैं क्षमा करता हूँ। लेकिन तुम ख़ुद इस लोभ को कभी छोड़ न सकोगी। तुम्हारे पास बहुत धन है, रूप और गुण की भी कमी नहीं। बहुतों के ऊपर तुम्हारा असीम प्रभुत्व है। ससार में इस प्रभुत्व से बढ़कर लोभ की वस्तु और नहीं है। तुम मुझे प्यार कर सकती हो, श्रद्धा कर सकती हो, मेरे लिए अनेक दुःख भी सह सकती हो; किन्तु इस मोह को किसी तरह जीत न सकोगी।

राजलक्ष्मी ने कोमल स्वर से कहा—अर्थात् इस तरह का काम मै बीच-बीच में करूँगी ही ?

प्रत्युत्तर मे मै केवल चुप हो रहा। उसने ख़ुद भी कुछ देर तक चुप रह कर कहा—उसके बाद ?

मैंने कहा—उसके बाद एक दिन ताश के खेलने के घर की तरह यह सारी इमारत एक दिन ढह पड़ेगी। उस दिन की उस हीनता से आज तुम मुझे हमेशा के लिए रिहाई दे दो, यही मेरी तुमसे प्रार्थना है।

पियारी बहुत देर तक सिर झुकाये चुपचाप बैठी रही मैंने देखा, उसकी दोनों आँखों से आँसू बह रहे हैं। आँचल से आसू पोंछ कर उसने कहा—अच्छा मैंने कभी क्या कोई छोटा काम करने के लिए तुम्हे प्रेरणा की है ?

इस बह रही अश्रुधारा ने मेरे संयम की नींव को हिला दिया; किन्तु बाहर उसका कोई चिह्न मैंने नहीं प्रकट होने दिया।

शान्त दृढ़ता के साथ मैंने कहा—ना, कभी नहीं। तुम्हारा हृदय खुद छोटा नहीं है। तुम खुद कोई छोटा या हीन काम नहीं कर सकती हो और न किसी को उधर प्रेरित कर सकती हो, यह मैं जानता हूँ।

कुछ रुककर मैंने कहा—किन्तु लोग तो मनसा पण्डित की पाठशाला में पढ़नेवाली उस राजलक्ष्मी को नहीं पहचानेंगे, वे पहचानेंगे, केवल पटने की प्रसिद्ध प्यारी बाई को। तब मैं संसार की दृष्टि में कितना छोटा हो जाऊँगा, यह क्या तुम देख नहीं पातीं? इसको तुम कैसे रोकोगी, बतलाओ तो भला?

राजलक्ष्मी ने एक साँस छोड़कर कहा—किन्तु उसे तो सच-मुच छोटा होना नहीं कहते।

मैंने कहा—भगवान् या अन्तर्यामी की दृष्टि में शायद नहीं हो सकता; किन्तु संसार की दृष्टि तो उपेक्षा करने की चीज नहीं है राजलक्ष्मी!

राजलक्ष्मी ने कहा—किन्तु भगवान् की ही दृष्टि को तो सबको आगे मानना उचित है?

मैंने कहा—एक हिसाब से यह बात सच है। किन्तु उनकी दृष्टि तो सर्वदा देख नहीं पड़ती। जो दृष्टि संसार में दस आदमियों के भीतर होकर प्रकाशित होती है, वह भी तो उन्हीं भगवान् की आँखों की दृष्टि है राजलक्ष्मी! उसे भी तो अस्वीकार नहीं किया जा सकता, उसे भी तो अग्राह्य करना अन्याय है!

राजलक्ष्मी ने कहा—इसी डर से तुम मुझे जन्म भर के लिए त्याग करके चले जाओगे ?

मैंने कहा—फिर भेंट होगी। तुम कहीं भी हो, बरमा जाने के पहले मैं और एक बार तुमसे अवश्य भेंट कर जाऊँगा।

राजलक्ष्मी प्रबल वेग से सिर हिलाकर अश्रु-विकृत स्वर में कह उठी—जाते हो तो जाओ। किन्तु तुम मुझे चाहे कुछ भी क्यों न समझो, मुझसे बढ़कर तुम्हारा अपना कोई नहीं है। उसी मुझको छोड़ जाना दस आदमियों की दृष्टि में धर्म है, यह बात मैं कभी न मानूँगी।

यह कह कर तेजी से रास्ता छोड़कर वह चली गई।

घड़ी खोलकर देखा, अब भी समय है, शायद एक बजे की गाड़ी पा सकता हूँ। चुपचाप बैग उठा लेकर धीरे-धीरे नीचे उतर कर गाड़ी पर जा बैठा।

बख़शीस के लोभ से गाड़ीवान ने घोड़ों को एकदम दौड़ा दिया। किन्तु गाड़ी पहुँचते ही पछाँह की गाड़ी प्लेटफार्म छोड़कर चली गई। पता लगाने से मालूम हुआ, आध घंटे बाद ही एक गाड़ी कलकत्ते की ओर जानेवाली है। सोचा, यही अच्छा, गाँव का मुँह बहुत दिनों से नहीं देखा। उसी जङ्गल में जाकर ये बाकी कुछ दिन बिता दूँगा।

अतएव पश्चिम के बदले पूर्व का टिकट खरीदकर, आध घंटे बाद, एक विपरीतगामी रेलगाड़ी पर चढ़कर काशी से यात्रा कर दी।

---

## पन्द्रहवाँ परिच्छेद

बहुत दिन के बाद फिर एक दिन तीसरे पहर अपने गाँव मे आकर मैंने प्रवेश किया।

मेरा घर उस समय मेरे आत्मीय और उनके भी आत्मीय नर-नारियों से परिपूर्ण हो रहा था। भीतर से बाहर तक चप्पा-चप्पा ज़मीन पर क़ब्ज़ा करके मजे में अपनी गिरस्ती जमाये सब बैठे थे।

मेरा इस तरह एकाएक आना और मेरे रहने का इरादा देख-सुनकर अत्यधिक आनन्द से उनके चेहरों पर स्याही दौड़ गई। सब कहने लगे—आहा! यह तो सुख की बात है, ख़ुशी की बात है! अब व्याह करके गिरस्त बन जा, श्रीकान्त, देखकर हम लोगों की भी आँखें ठंडी हों।

मैंने कहा—इसी लिए तो आया हूँ। अभी फिलहाल मेरी मा की कोठरी छोड़ दो, ज़रा हाथ-पैर फैलाकर सोऊँ।

मेरे पिता की एक ममेरी बहन स्वामी-पुत्र के साथ आकर कुछ दिन से रहने लगी थी। उन्होंने कहा—वही तो, वह कोठरी—

मैंने कहा—अच्छा, अच्छा, न हो, मै तब तक बाहर की बैठक मे ही रहूँगा।

बैठक मे घुसकर देखा एक कोने में चूना और एक कोने मे सुरखी ढेर है। उसके भी मालिक ने देखा—वही तो! देखता हूँ यह समान देख सुनकर कहीं हटाना पड़ेगा। मगर जगह तो कम नहीं है। तब तक ना हो, इस तरफ एक तखत डालकर—क्यों न श्रीकान्त?

कहता ही क्या ? कहा—अच्छा, आज की रात यही सही।

असल मे मैं इतना थका हुआ था कि चाहे जहाँ हो, कुछ देर लेट रहने को मिल जाय, यही जी चाह रहा था। बरमा में मैं जब से बीमार पड़ा तब से अब तक किसी दिन मेरा शरीर अच्छी तरह सुस्थ और सबल नहीं हो पाया था। भीतर ही भीतर एक तरह की ग्लानि का अनुभव हुआ करता था—हृदय की कली मुरझाई रहती थी।

इसी से सन्ध्या के बाद से जब सिर धमकने लगा तब मुझे कुछ विशेष आश्चर्य नहीं हुआ।

एक दीदी ने आकर कहा—यह कुछ नहीं, गरमी के कारण है। भात खाकर ज़रा सो रह, अच्छा हो जायगा।

मैंने कहा—तथास्तु।

वही किया। गुरुजन की आज्ञा शिरोधार्य करके गरमी दूर करने के लिए खा-पीकर सो रहा। सवेरे आँख खुली—उस समय अच्छी तरह बुख़ार चढ़ा हुआ था।

फिर उन्हीं दीदी ने आकर शरीर पर हाथ रखकर हरारत देखने के बाद कहा—यह कुछ नही। मलेरिया है। इस बुखार में खाना खाया जा सकता है।

किन्तु आज मैं अनुमोदन नही कर सका। मैंने कहा—ना दीदी, मैं अभी तुम्हारे मलेरिया-ज्वर की प्रजा नहीं हूँ। उसके नाम पर अत्याचार शायद मुझे बरदाश्त न होगा। आज मेरी एकादशी है।

दूसरा दिन बीत गया तीसरा दिन भी गुज़रा लेकिन बुख़ार नहीं उतरा। बल्कि उसे उत्तरोत्तर बढ़ते ही देखकर मैं मन ही मन उद्विग्न हो उठा। गाँव के गोविन्द डाक्टर सुबह-शाम देखने आने लगे। नाड़ी पकड़कर, जीभ देखकर, पेट ठोंककर अच्छी अच्छी मुखरोचक दवाएँ सरबराह करके केवल 'खरीद के दाम' भर लेने लगे। किन्तु एक-एक दिन करके पूरा सप्ताह बीत गया, मैं अच्छा न हो सका।

बाप के मामा अर्थात् मेरे नाना महाशय ने आकर कहा—यह तो भैया, चिन्ता की बात है। मैं कहता हूँ, वहाँ ख़बर भेज दी जाय, तुम्हारी बुआ को बुला लिया जाय। तुम्हारा बुख़ार कैसा—कैसा—

बात पूरी न कहने पर भी मैं समझ गया नानाजी कुछ मुश्किल में पड़ गये हैं। ख़ैर, इसी तरह और भी चार-पाँच दिन कट गये। लेकिन बुख़ार वैसा ही बना रहा। उस दिन सवेरे गोविन्द डाक्टर ने आकर रोज़ की तरह दवा देकर तीन दिन के बाक़ी दवा के 'खरीद के दाम' माँगे।

पलँग पर लेटे ही लेटे किसी तरह हाथ बढ़ाकर अपना बैग निकालना चाहा; पर उसमें मनीबैग का कहीं पता नहीं। शङ्कित होकर उठ बैठा। बड़ा बैग उलट-पुलट कर अच्छी तरह खोज की। किन्तु जो है ही नहीं उसका पता कैसे लगे ?

गोविन्द डाक्टर मामला अन्दाज़न समझ गये। व्यस्त होकर बार-बार प्रश्न करने लगे—कुछ खोगया क्या ?

मैंने कहा—जी, कुछ गया नहीं।

लेकिन जब मैं उन्हे दवा के दाम न दे सका तब वह सब समझ गये। स्तम्भित की तरह कुछ देर खड़े रहकर उन्होंने पूछा—कितना था?

मैंने कहा—यही थोड़ा-सा।

उन्होंने कहा—चाभी को ज़रा सावधानी से रखना चाहिए था। ख़ैर, जाने दो, तुम मेरे कुछ ग़ैर नहीं हो भैया, दामों के लिए कुछ चिन्ता न करो। अच्छे हो जाओ, उसके बाद जब सुभीता हो तब भेज देना। तुम्हारी चिकित्सा में कुछ भी त्रुटि न होने पायेगी।

इतना कहकर डाक्टर बाबू ग़ैर होकर परम आत्मीय की तरह सान्त्वना देकर चले गये। जाते समय मैंने कहा—यह बात कोई सुनने न पावे।

डाक्टर बाबू ने कहा—अच्छा, अच्छा, देखा जायगा।

देहात में केवल विश्वास पर रुपये उधार देने की प्रथा नहीं है। रुपये क्यों, खाली हाथ चार आने पैसे भी किसी से उधार माँगो तो लोग समझेंगे, यह आदमी दिल्लगी कर रहा है। कारण, संसार मे ऐसा भी कोई मूर्ख है, जो खाली हाथ उधार माँगेगा, इस बात को देहात का कोई आदमी सोच ही नहीं सकता।

मन मे यह इरादा था कि कुछ सुस्थ होने पर जो होगा, कुछ उपाय करूँगा—संभवतः अभया को लिखकर उससे रुपये

मँगाऊँगा; किन्तु उसका अवसर न मिला। बीच ही में यह तमाशा होगया। भीतर आत्मीयों के यत्न और हमदर्दी का स्वर भी तारा से उदारा में उत्तर आया, मैं समझ गया, चाहे जिस तरह हो, मेरी विपत्ति की खबर इन लोगों से अब छिपी नहीं है।

अवस्था संक्षेप में जताकर राजलक्ष्मी को एक चिट्ठी लिखी अवश्य, लेकिन अपने को इतना हीन, इतना अपमानित जान पड़ने लगा कि उसे भेज न सका, तुरन्त फाड़ कर फेंक दिया।

फेंक तो दिया, लेकिन अब गुजर कैसे हो? दिन कटना अत्यन्त कठिन होगया। उस दिन किसी तरफ और कोई राह न देख पाकर अन्त को एक तरह से जान पर खेलकर ही कुछ रुपये भेजने के लिए राजलक्ष्मी को दो पत्र लिखे, और कलकत्ते तथा पटने को भेज दिये। उनमें अपना सारा हाल भी संक्षेप मे लिख दिया।

वह रुपये अवश्य ही भेजेगी, इसमे कुछ सन्देह न रहने पर भी उस दिन सवेरे से ही एक प्रकार के उत्कण्ठा-मिश्रित संशय के साथ पोस्टमैन की अपेक्षा में सामने की खुली खिड़की से सड़क पर नज़र रखकर उन्मुख हो रहा।

समय बीत गया, पोस्टमैन मनी-आर्डर लेकर न आया। आज उसके आने की आशा नहीं है, यह सोचकर करवट बदलकर सोने का उपक्रम कर रहा था, इसी समय दूर पर एक गाड़ी की घरघराहट सुनकर चकित होकर तकिये के सहारे उठ कर बैठ गया।

गाड़ी आकर ठीक मेरे सामने ही खड़ी होगई। देखा, कोचमैन के पास ही रतन बैठा है। उसने नीचे उतरकर गाड़ी का दरवाज़ा खोल दिया। दरवाज़ा खोलते ही जो कुछ देख पड़ा, उसे एकाएक सत्य मानना कठिन था।

दिन के वक्त ख़ुलासा तौर से इस गाँव की सड़क पर राजलक्ष्मी का इस तरह आकर खड़े होना वास्तव में मैं क्या कोई सोच भी नहीं सकता था।

रतन ने मुझे दिखाकर कहा—वह बाबूजी हैं।

राजलक्ष्मी ने केवल एक बार मेरी ओर आँख उठाकर देखा।

गाड़ीवान ने कहा—मा जी, देर होगी ज़रूर ही, घोड़े खोल दूँ?

"तनिक ठहरो" कहकर उसने अविचलित धीर पदक्षेप के साथ मेरी कोठरी मे आकर प्रवेश किया। प्रणाम करके पैरों की रज मस्तक से लगाकर, हाथ से मेरे मस्तक की गरमी का अनुभव करने के बाद राजलक्ष्मी ने कहा—इस समय तो अब बुख़ार नहीं है। उस वक्त सात बजे की गाड़ी से चल सकोगे क्या? घोड़े खोल देने के लिए कह दूँ क्या?

मैं अभिभूत की तरह उसके मुख की ओर ताक रहा था। मैंने कहा—इधर दो दिन से बुख़ार नहीं आता। किन्तु मुझे क्या तुम आज ही ले जाना चाहती हो?

राजलक्ष्मी ने कहा—न हो, आज रहने दो। रात को जाने की

जरूरत नहीं, ठंड लग सकती है। कल सवेरे ही चला जायगा।

इतनी देर बाद जैसे मेरा होश फिर आया। मैंने कहा—इस गाँव मे, इस महल्ले के भीतर किस साहस से तुम घुसीं ? तुम क्या समझती हो कि गाँव का कोई आदमी तुम्हे पहचान न सकेगा ?

राजलक्ष्मी ने सहज भाव से ही कहा—तुम भी ख़ूब हो। यहीं मैं पली, बड़ी हुई, और यहाँ का कोई मुझे पहचान न सकेगा ? जो देखेगा, वही पहचान लेगा।

मैंने कहा—फिर ?

राजलक्ष्मी ने कहा—तुम्हीं बताओ, इसके लिए क्या करूँ ? मेरी तकदीर ! नहीं तो तुम यहाँ आकर बीमार ही क्यो पड़ते ?

मैंने कहा—तो तुम आईं क्यों ? रुपये मैंने माँगे थे, भेज देतीं।

राजलक्ष्मी ने कहा—यह भी भला कही हो सकता था ? इतना बीमार सुनकर क्या केवल रुपये भेजकर ही मुझसे स्थिर रहा जा सकता था ?

मैंने कहा—ख़ैर, तुम तो स्थिर होगईं, लेकिन मुझे तो बहुत ही अस्थिर कर दिया ! अभी सब लोग आ पड़ेंगे, तब तुम्हीं किस तरह मुँह दिखाओगी और मैं ही क्या जवाब दूँगा ?

इसके उत्तर मे राजलक्ष्मी ने केवल एक बार अपने ललाट पर हाथ रखकर कहा—जवाब और क्या दोगे—मेरा भाग्य !

उसकी इस उपेक्षा और उदासीनता से अत्यन्त असहिष्णु

होकर मैंने कहा—भाग्य अवश्य है! लेकिन लज्जा-शर्म कुछ भी नहीं रही क्या? यहाँ मुँह दिखाते भी तुम्हें कुछ हिचकिचाहट न हुई?

राजलक्ष्मी ने वैसे ही उदास स्वर से कहा—मेरी सब लज्जा-शर्म जो कुछ है वह इस समय तुम्हीं हो।

इस पर अब मैं और क्या कहता सुनता। आँखें मूँदकर चुपचाप पड़ रहा।

दम भर बाद पूछा—बंकु का ब्याह कुशलपूर्वक होगया?

राजलक्ष्मी—हाँ।

मैं—इस समय कहाँ से आ रही हो? कलकत्ते से?

राजलक्ष्मी—नहीं, पटने से। वहीं तुम्हारी चिट्ठी मिली थी।

मैं—मुझे कहाँ ले जाओगी? पटने?

राजलक्ष्मी ने ज़रा सोचकर कहा—एक बार वहाँ तो तुम्हे जाना ही होगा। पहले चलो कलकत्ते चलें, वहाँ डाक्टरों को दिखा-सुनाकर अच्छे होने पर फिर—

मैंने प्रश्न किया—लेकिन उसके बाद ही मुझे पटने क्यों जाना होगा?

राजलक्ष्मी ने कहा—दानपत्र की तो वहीं रजिस्ट्री करनी होगी। लिख-पढ़ तो एक तरह से सब आई ही हूँ; लेकिन तुम्हारे हुक्म के बिना तो कुछ हो नहीं सकता।

मैंने बहुत ही विस्मित होकर पूछा—काहे का दानपत्र? किसे क्या दिया?

राजलक्ष्मी ने कहा—दोनों घर तो बंकु को ही दिये हैं। केवल काशीवाला मकान गुरुदेव को देने का विचार करती हूँ। और प्रामिसरी नोट, गहना वगैरह का हिस्सा-बाँट तो अपनी समझ के माफ़िक एक तरह से कर ही आई हूँ, अब केवल तुम्हारे कहने भर की देर है।

मेरे विस्मय की सीमा न रही। मैंने कहा—तो फिर तुम्हारा अपना क्या रहा? बंकु अगर तुम्हारा भार न ले? अब उसकी अपनी जोरू, अपनी गिरस्ती होगई है, अन्त को अगर वह तुम्हीं को खाने-पहनने के लिए न दे?

राजलक्ष्मी ने कहा—तो क्या मैं बकु से खाने-पहनने का ख़र्च चाहती हूँ? अपना सब दान करके अन्त को क्या उसी का हाथ उठाकर दिया हुआ खाऊँगी? तुम तो ख़ूब आदमी हो।

अधैर्य को अब अधिक न सँभाल पाने के कारण मै जोश के मारे उठ बैठा और क्रुद्ध स्वर से कह उठा—हरिश्चन्द्र की तरह यह दुर्बुद्धि तुम्हें किसने दी? खाओगी क्या? बुढ़ापे मे किसका गलग्रह होने जाओगी?

राजलक्ष्मी ने कहा—तुम्हारे क्रोध करने की ज़रूरत नहीं है, तुम सोओ। मुझे जिसने यह बुद्धि दी है, वही खाने को भी देगा। मेरे हज़ार बूढ़े होने पर भी वह कभी मुझे गलग्रह न समझेगा। तुम बेकार माथा न गरम करो, स्थिर होकर सोओ।

स्थिर होकर लेट रहा। सामने की खुली हुई खिड़की से अस्त होने जा रहे सूर्य की किरणों से रजित आकाश देख

पड़ा। स्वप्नाविष्ट की तरह निर्निमेष दृष्टि से उसी ओर देखकर जान पड़ने लगा, इसी तरह की अद्भुत शोभा और सौन्दर्य से सारा विश्व जैसे भर गया है। त्रिलोकी में कहीं रोग-शोक, अभाव-अभियोग, ईर्ष्या-द्वेष कुछ भी नहीं है।

इस निर्वाक् निस्तब्धता में मग्न होकर हम दोनों ने कितना समय बिता दिया, इसका किसी को ख़याल न था। सहसा दरवाज़े के बाहर आदमी की आवाज़ सुनकर हम दोनों चौंक उठे। राजलक्ष्मी के पलँग से उठने के पहले ही डाक्टर बाबू प्रसन्न नाना को साथ लेकर घुस आये।

किन्तु सहसा राजलक्ष्मी पर नज़र पड़ते ही वह ठिठककर खड़े हो गये। नाना साहब जब दिन को आराम कर रहे थे तब यह ख़बर उनके कानों तक पहुँची अवश्य थी कि कोई मित्र गाड़ी करके कलकत्ते से मेरे पास आया है; किन्तु वह मित्र कोई स्त्री हो सकती है, यह शायद वह कल्पना भी नहीं कर पाये थे। जान पड़ता है, इसी कारण अब तक घर की स्त्रियों में से कोई बैठक मे नही आई थी।

नाना जी अत्यन्त चतुर पुरुष थे। उन्होंने कुछ देर तक एकटक राजलक्ष्मी के झुके हुए मुख की ओर निहार कर कहा—यह स्त्री कौन है श्रीकान्त! जान पड़ता है, इसे मैं पहचानता हूँ।

डाक्टर बाबू भी उनके साथ ही कह उठे—प्रसन्न काका, मुझे भी जैसे जान पड़ता है, इसे कहीं देखा है।

मैंने तिर्छी नज़र से देखा, राजलक्ष्मी के चेहरे पर एकदम मुर्दनी-सी छा गई है। उसी घड़ी जैसे कोई मेरे हृदय के भीतर कह उठा—अरे श्रीकान्त, इस सर्वत्यागी स्त्री ने केवल तेरे ही लिए अपनी इच्छा से—जान-बूझ कर यह दुःख, यह ग्लानि अपने सिर पर ले ली है।

एक बार मेरे सारे शरीर के रोएँ खड़े हो उठे। मैंने मन मे कहा, मुझे सत्य की ज़रूरत नहीं; मैं मिथ्या को शिरोधार्य करूँगा। इसके बाद ही मैंने राजलक्ष्मी के हाथ को ज़रा दबा कर कहा—तुम स्वामी की सेवा करने आई हो, इसमें लज्जा की क्या बात है राजलक्ष्मी! यह नानाजी हैं; यह डाक्टर बाबू हैं, इन्हे प्रणाम करो।

पल भर के लिए हम दोनों की चार आँखें हुईं। उसके बाद राजलक्ष्मी ने उठकर भूमिष्ठ होकर दोनों वृद्धों को प्रणाम किया।

